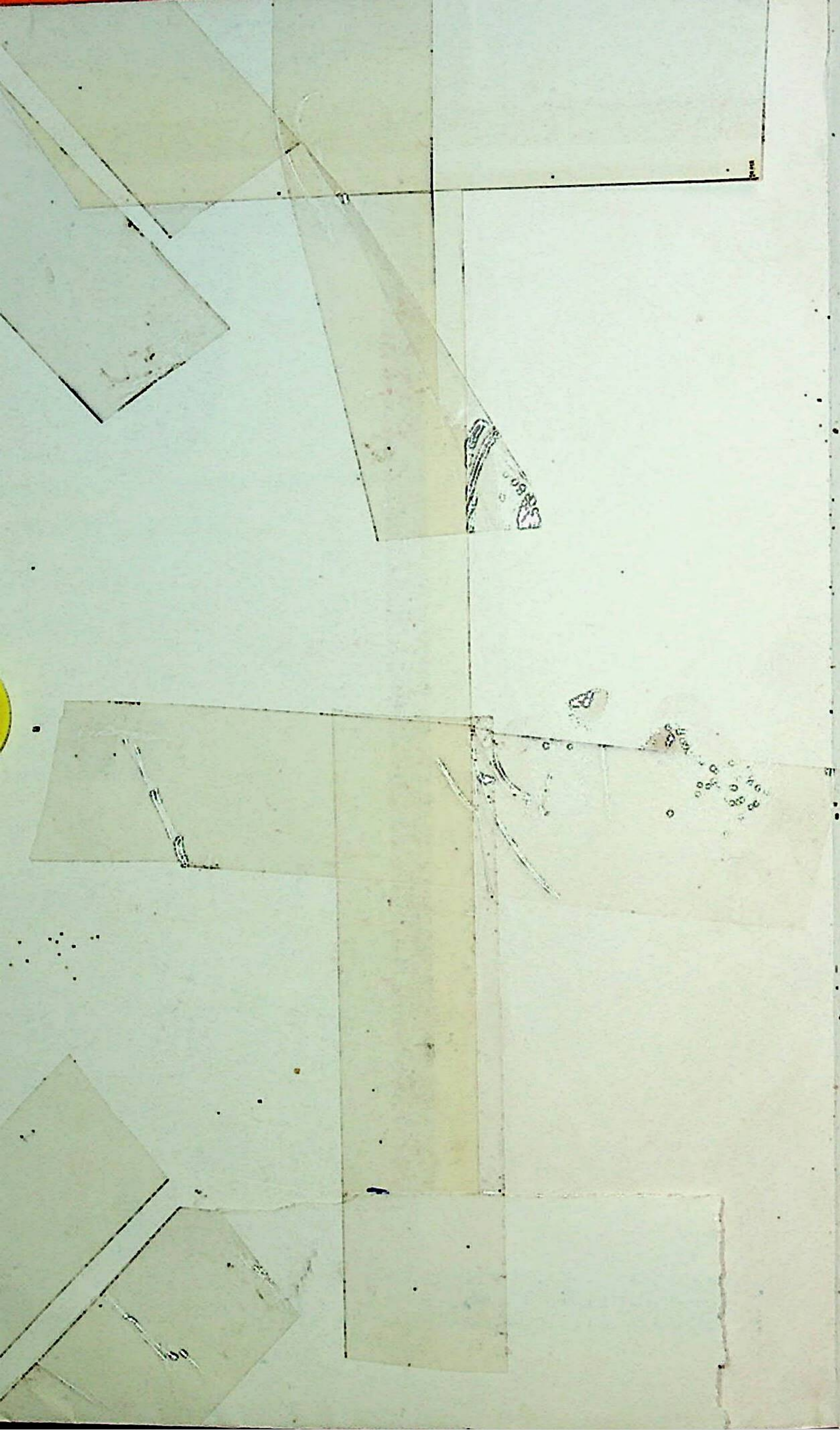




[illegible]

([illegible])

[illegible]

[illegible]

डा. विजय कुमार जैन

[illegible]

प्रकाशक

[illegible]



सामवेदीयब्राह्मणानि

(ताण्ड्यदेवताध्यायछान्दोग्यब्राह्मणोपनिषदात्मकः)

प्रेरणा एवं शुभाशीर्वाद

उत्तराम्नाय ज्योतिष्पीठाधीश्वर एवं पश्चिमाम्नाय

द्वारका शारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शङ्कराचार्य

स्वामी श्री स्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज

मार्गदर्शक

दण्डी स्वामी सदानन्द सरस्वती जी

दण्डी 'स्वामिश्रीः' अविमुक्तेश्वरानन्दः सरस्वती

सम्पादक

डॉ. विजय कुमार शर्मा

सामवेदाध्यापक

श्री पट्टाभिरामशास्त्री वेद मीमांसा अनुसन्धान केन्द्र

हनुमानघाट, वाराणसी

प्रकाशक

विद्याश्री धर्मार्थ न्यास, काशी

सामवेदीयब्राह्मणानि
(ताण्ड्यदेवताध्यायछान्दोग्यब्राह्मणोपनिषदात्मकः)

प्रेरणा एवं शुभाशीर्वाद
उत्तराम्नाय ज्योतिष्पीठाधीश्वर एवं पश्चिमाम्नाय
द्वारका शारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शङ्कराचार्य
स्वामी श्री स्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज

मार्गदर्शन
दण्डी स्वामी सदानन्द सरस्वती जी
दण्डी 'स्वामिश्रीः' अविमुक्तेश्वरानन्दः सरस्वती

सम्पादक
डॉ. विजय कुमार शर्मा
श्री पट्टाभिरामशास्त्री वेद मीमांसा अनुसन्धान केन्द्र
हनुमानघाट, वाराणसी

आई.एस.बी.एन. - 978-93-83786-01-5

प्रथम संस्करण १००० प्रतियाँ

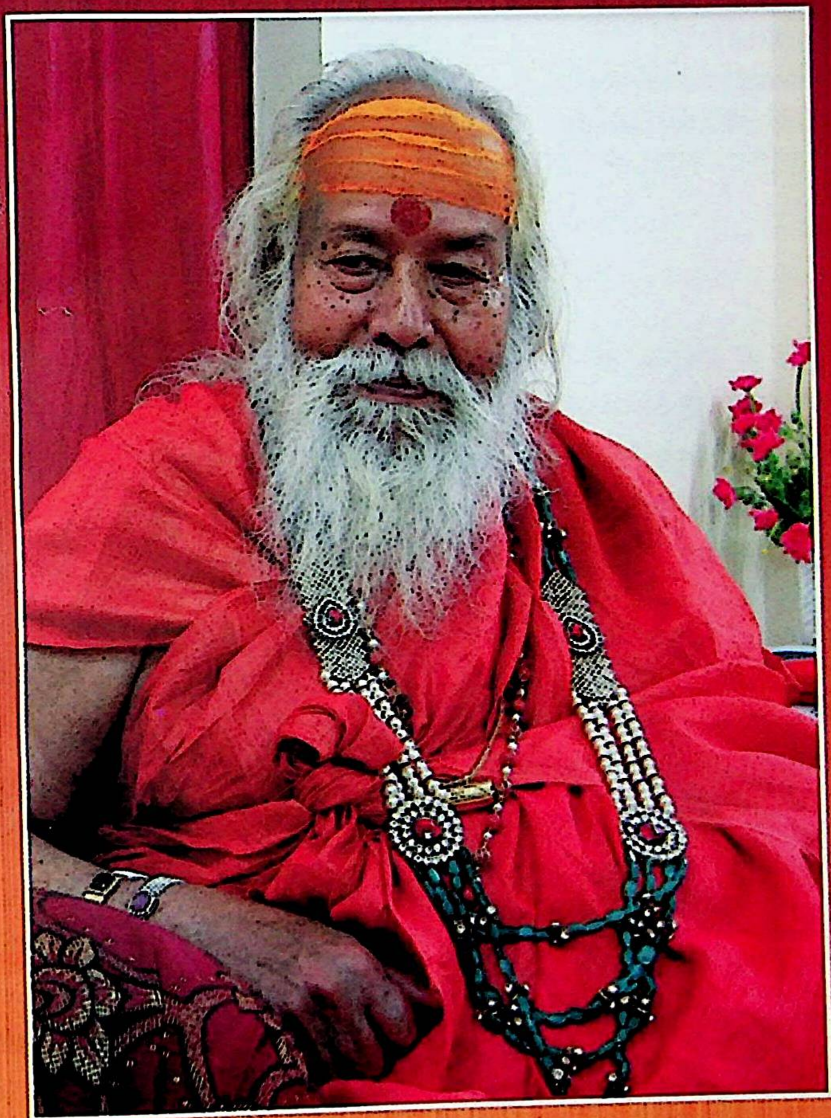
शारदीय नवरात्रि संवत् २०७१ विक्रमी

प्रकाशक
विद्याश्री धर्मार्थ न्यास
विद्याश्री निलयम्, केदारघाट, वाराणसी-२२१००१ (उत्तर प्रदेश)

मूल्य शतत्रयम् ३००/- रुपये मात्र

मुद्रक
श्रीजी प्रिण्टर्स, नाटी इमली, वाराणसी-०१
फोन नं : ०५४२-२२०११०४, ई-मेल : shrijeeprint@gmail.com

समर्पण



पूज्यपाद ज्योतिष्पीठाधीश्वर एवं द्वारका शारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शङ्कराचार्य

स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज



प्रो. हृदयरंजन शर्मा
आचार्य एवं पूर्व अध्यक्ष
वेद-विभाग
संस्कृतविद्या धर्मविज्ञान सङ्काय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी-२२१००५, भारत



Prof. Hridaya Ranjan Sharma
Professor & Ex-Head
Dept. of Veda
Faculty of Sanskrit Learning & Theology
Banaras Hindu University
Varanasi-221005, India

शुभाशंसन

ऋच्यद्ध्यूढं सामगीयते उपनिषद् की इस उक्ति के अनुसार ऋचाओं पर आधारित सामवेद का वैदिक वाङ्मय में सर्वाधिक महत्त्व सर्वमान्य रहा है। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने भी **'वेदानां सामवेदोऽस्मि'** अपने इस वचन से सामवेद के महत्त्व को प्रदर्शित किया है। छान्दोग्य उपनिषद् के **'सामान्येव मधुकृतः सामवेद एव पुष्पम्'** इस कथन में सामश्रुतियों को मधुररूपता तथा सामवेदविहित कर्मों की पुष्परूपता बताया गया है।

सहस्रवर्त्मा सामवेदः महर्षि पतञ्जलि के इस वाक्य के अनुसार सामवेद एक हजार शाखाओं से संवलित था, परन्तु आज के पाश्चात्यवादी भौतिक युग में हमारी प्राचीन संस्कृति का संरक्षण अत्यन्त ही दुष्कर हो गया है। कतिपय स्थानों को छोड़ दिया जाय तो शेष में मात्र पाश्चात्य संस्कृति ही दृष्टिगत होती है। इस कठिन परिस्थिति में प्राच्य-विद्या के ग्रन्थों का सम्पादन एवं प्रकाशन सुखद अनुभव कराता है। इसी उपक्रम में **डॉ. विजय कुमार शर्मा** (सामवेदाध्यापक, श्री पट्टाभिरामशास्त्री वेद मीमांसा अनुसन्धान केन्द्र, वाराणसी) के द्वारा किये जा रहे सामवेद के ग्रन्थों का सम्पादन कार्य अति प्रशंसनीय है। 'राणायनीयशाखीयं सामगानम्' के सम्पादन के पश्चात् इस संस्करण में ताण्ड्य, देवताध्याय, छान्दोग्यब्राह्मण तथा उपनिषद् के साथ ताण्ड्यमहाब्राह्मण तथा

देवताध्यायब्राह्मण की 'श्रुत्यनुक्रमणिका' का लेखन भी किया गया है जो कि अति दुरुह है। इस ग्रन्थ से अध्योताओं एवं अनुसन्धाताओं को अवश्य लाभ होगा। इस पुनीत कार्य के लिये मैं डॉ. शर्मा को साधुवाद देता हूँ। साथ ही प्राच्य विद्या के प्रति अगाध श्रद्धा तथा उदारतापूर्वक इन ग्रन्थों का प्रकाशन कराने वाले अनन्तश्री विभूषित ज्योतिष एवं द्वारका शारदा पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य पूज्य स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज के पावन चरणों में श्रद्धा सुमन अर्पित करता हूँ तथा उनके इस धर्मध्वजरूपी पीठों के स्तम्भद्वय दण्डी स्वामी श्री सदानन्द सरस्वती जी महाराज एवं स्वामीश्रीः अविमुक्तेश्वरानन्द सरस्वती जी महाराज के प्रति भी मैं आभारी हूँ, जो इस भौतिकवादी युग में इन प्राच्य विद्याओं के संरक्षण हेतु प्रतिबद्ध हैं।

(हृदयरंजन शर्मा)

ॐ

शुभाशंसा

हिन्दुओं की धार्मिक व्यवस्था और आचारादि के सम्बन्ध में जो नीति-नियम और विविध व्यवस्थाएँ हैं उनका विस्तार निरूपण करने वाले आदि ग्रन्थों में ब्राह्मण-ग्रन्थों का नाम प्रमुख है। इस दृष्टि से ब्राह्मण-ग्रन्थ न केवल हिन्दू धर्म के आदि श्रोत हैं अपितु मानव जाति के प्रथम धर्म ग्रन्थ भी हैं। प्राचीनता की दृष्टि से उनका स्थान वैदिक संहिताओं के बाद है परन्तु मान्यता एवं महत्त्व की दृष्टि से उनका स्थान वेदों के समकक्ष ही है। वेदभाष्यकार ऋषियों ने मन्त्र संहिताओं और ब्राह्मण-ग्रन्थ दोनों को वेद कहकर अभिहित किया है; क्योंकि दोनों ही यज्ञ के प्रमाण रूप हैं— **'मन्त्रब्राह्मणो यज्ञस्य प्रमाणम्'** अथवा **'मन्त्रब्राह्मणात्मको वेदः'** (आपस्तम्ब)।

वर्तमान कलिकाल में उपेक्षा का दंश झेल रही इन वैदिक परम्पराओं को अपने प्राच्य स्वरूप में अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रिय वेदविद्या प्रतिष्ठान के पाठ्यक्रम में ब्राह्मण-ग्रन्थों का समावेश किया गया है। इसी क्रम में हमारे आचार्य श्री पट्टाभिरामशास्त्री वेद मीमांसा अनुसन्धान केन्द्र के सामवेद राणायनीय शाखा के प्राध्यापक **डॉ. विजय कुमार शर्मा** के द्वारा भविष्णु वैदिक छात्रों को सहजता से अष्ट ब्राह्मण-ग्रन्थ उपलब्ध हों, इस हेतु अथक परिश्रम से **'सावेदीयब्राह्मणानि'** नामक ईस ग्रन्थ के प्रथम भाग पर कार्य सम्पादन किया है। इसके लिये मैं श्री विजय जी का वर्धापन करता हूँ। इनके द्वारा किया गया यह प्रशंसनीय

प्रयास विफल नहीं होगा ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है। पुनः एक बार **'सर्वं वेदमयं जगत्'** का प्रादुर्भाव होगा।

अनन्त श्री विभूषित जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्री स्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज के द्वारा इस ग्रन्थ का प्रकाशन स्वागत योग्य है, ऐसे अनुपलब्ध ग्रन्थों के प्रकाशन की परम्परा बनी रहे। एतदर्थ मैं इन महान् विभूतियों की दीर्घायुष्याभिवृद्धि के लिए बाबा विश्वनाथ व माँ अन्नपूर्णा से कामना करता हूँ।

गगन कुमार चट्टोपाध्याय

गगन कुमार चट्टोपाध्याय
(सामवेदाचार्य)
प्रधानाध्यापक
श्री प.शा. वेद मीमांसा अनुसन्धान केन्द्र
हनुमान घाट, काशी

आत्म-निवेदन

सस्तस्वरैः समस्तंयो जगदेतच्चराचरम्।
संजीवयति विश्वात्मा स मे विष्णुः प्रसीदतु॥

वैदिक वाङ्मय में ऋग्वेदादि चारो संहिताओं के पश्चात् जिस साहित्य की रचना हुई, उसे ब्राह्मण-ग्रन्थों के नाम से जाना जाता है—

मन्त्रश्च ब्राह्मणश्चेति द्वौ भागौ तेन मन्त्रतः।
अन्यद् ब्राह्मणमित्येतद् भवेद् ब्राह्मण लक्षणम्॥

(जैमिनीयन्यायमालासविस्तरा २.१.८)

अवशिष्टो वेदभागो ब्राह्मणम्। (ऋग्वेदभाष्यभूमिका, पृ. ३७)

शेषे ब्राह्मणशब्दः। (मीमांसासूत्र २.१.३३)

अर्थात् मन्त्र-भाग से अतिरिक्त शेष वेद-भाग ब्राह्मण कहलाता है। वैदिक मन्त्रों के व्याख्यान स्वरूप निर्मित ये ब्राह्मण-ग्रन्थ मन्त्रों, कर्मों और विनियोगों की विशद् व्याख्या प्रस्तुत करते हैं—

'ब्राह्मणं नाम कर्मणस्तन्मन्त्राणां च व्याख्यानग्रन्थः'।

(भट्टभास्कर, तै.सं. १.५.१ पर भाष्य)

ब्राह्मण-ग्रन्थ सर्वथा गद्यात्मक हैं जिनकी विषय-वस्तु को 'विधि' एवं 'अर्थवाद' इन दो रूपों में बाँटा जा सकता है। इनमें से विधि ही ब्राह्मण-ग्रन्थों का प्रधान विषय है। प्रत्येक संहिता के वेदशाखानुसार भिन्न-भिन्न ब्राह्मण-ग्रन्थ होते हैं। इन संहिताओं के मन्त्रों व मन्त्रांशों की यज्ञपरक व्याख्या एवं उद्देश्य पर विचार हेतु निर्मित ब्राह्मण-ग्रन्थों में से वर्तमान में इन ग्रन्थों की संख्या निम्न है—

ऋग्वेद—१. ऐतरेय ब्राह्मण, २. शांखायन ब्राह्मण (कौषीतकि)।

शुक्लयजुर्वेद—शतपथ ब्राह्मण (माध्यन्दिन एवं काण्व)।

कृष्णयजुर्वेद—१. तैत्तिरीय ब्राह्मण, २. मैत्रायणी ब्राह्मण, ३. कठ ब्राह्मण, ४. कपिष्ठल ब्राह्मण।

अथर्ववेद—गोपथ ब्राह्मण। सामवेद—आठ ब्राह्मण—

अष्टौ हि ब्राह्मणग्रन्थाः प्रौढं ब्राह्मणमादिदम् ।
षड्विंशाख्यं द्वितीयं स्यात् ततः सामविधिर्भवेत् ॥
आर्षेयं देवताध्यायो भवेदुपनिषत् ततः ।
संहितोपनिषद् वंशो ग्रन्था अष्टावितीरताः ॥

सायणाचार्य के इस कथन के अनुसार सामवेद के आठ ब्राह्मण-ग्रन्थों की मान्यता सुदीर्घ काल से है। इन अष्टब्राह्मण-ग्रन्थों का प्रमुख विषय सोमयागों, अभिचारयागों, अन्य अनुष्ठानों और उनके विधि-विधानों के साथ ही विभिन्न उपासना पद्धतियों का विस्तार तथा सामवेद और उसकी गान प्रक्रिया से सम्बद्ध सूक्ष्मातिसूक्ष्म सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक दृष्टि से सांस्कृतिक तथा दार्शनिक वैशिष्ट्यता का प्रतिपादन है।

यद्यपि सामवेदीयब्राह्मण-ग्रन्थों का क्रम निम्न प्रकार से है—१. ताण्ड्यमहाब्राह्मण, २. षड्विंशब्राह्मण, ३. सामविधानब्राह्मण, ४. आर्षेयब्राह्मण, ५. देवताध्यायब्राह्मण, ६. छान्दोग्योपनिषद् ब्राह्मण, ७. संहितोपनिषद् ब्राह्मण, ८. वंशब्राह्मण। जिनमें ताण्ड्यमहाब्राह्मण को प्रौढब्राह्मण, पञ्चविंशब्राह्मण तथा छान्दोग्योपनिषद् ब्राह्मण को मन्त्रब्राह्मण भी कहा जाता है। परन्तु ग्रन्थ की अत्यधिक आवश्यकता को दृष्टिगत करते हुए इस ग्रन्थ के प्रथम भाग में ताण्ड्यमहाब्राह्मण, देवताध्यायब्राह्मण, छान्दोग्यब्राह्मण तथा उपनिषद् इन तीन का संग्रह किया गया है। विशेषरूप से अन्य ब्राह्मणों के साथ ताण्ड्यमहाब्राह्मण एवं देवताध्याय ब्राह्मण के मन्त्रों की 'अकारादि श्रुत्यनुक्रमणिका' का संकलन भी प्रथमतः इस ग्रन्थ में किया गया है जो कि अद्यतन अप्रकाशित थी।

इस पुण्य कार्य की प्रारम्भिकता, पूर्णता तथा सफलता के लिए मैं श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य वैदिकधर्मप्रचारपरायण अखण्डभूमण्डला-

चार्य सत्यसनातनधर्म के संवाहक प्रातः स्मरणीय अनन्तश्री विभूषित उत्तराम्नाय ज्योतिष्पीठाधीश्वर एवं पश्चिमाम्नाय द्वारका-शारदा-पीठाधीश्वर **जगद्गुरु शङ्कराचार्य स्वामी श्रीस्वरूपानन्द सरस्वतीजी महाराज** के श्रीचरणों में कोटि-कोटि प्रणाम अर्पित करता हूँ, जिनके स्मरण मात्र से दिव्यशक्तिस्वरूपा प्रेरणा के द्वारा कोई भी कार्य स्वतः पूर्णता की ओर अग्रसर हो जाता है। ग्रन्थ की साफल्यता हेतु शुभाशंसा के द्वारा मङ्गलकामना एवं मन्त्रों की शुद्धता हेतु मार्गदर्शन करने वाले वैदिक वाङ्मय के विश्रुत मनीषी पूज्य गुरुवर **प्रो. युगलकिशोर मिश्र** (पूर्व कुलपति, जगद्गुरु रामानन्दाचार्य राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर), **प्रो. हृदयरंजन शर्मा** (पूर्व अध्यक्ष, वेद-विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी), **प्रो. रूपकिशोर शास्त्री** (सचिव, महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रिय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन), **पं. गगन कुमार चट्टोपाध्याय** (प्रधानाध्यापक, श्री पट्टाभिरामशास्त्री वेद मीमांसा अनुसन्धान केन्द्र, वाराणसी) एवं **पं. परमेश्वर गणपति भट्ट** (सलक्षण रहस्यान्त विद्वान्, कर्नाटक) के चरणकमलों में प्रणतिपूर्वक कृतज्ञताञ्जलि निवेदित करता हूँ।

इनके अतिरिक्त गुरुसेवाधुरीण भक्तवत्सल द्वारकापीठ के तपोनिष्ठ मन्त्री **स्वामी श्री सदानन्द सरस्वती जी महाराज** एवं त्रिपथगामिनि भगवती माँ गंगा के अविरल निर्मल प्रवाह हेतु तत्पर 'गङ्गासेवा अभियानम्' के सार्वभौम संयोजक **'स्वामिश्रीः' अविमुक्तेश्वरानन्दः सरस्वती जी महाराज** जिन्होंने चातुर्मास्य की पुण्यवेला में मुझे इस पुण्य कार्य के सम्पदान हेतु प्रेरित किया। उन्हीं के अविस्मरणीय उस क्षण के प्रेरणास्पद आशीर्वचनों से यह कार्य सम्पन्न हो सका है। मैं इन दोनों विभूतियों के चरणारविन्दों में कोटिशः नमन करता हूँ। जगदम्बास्वरूपा **देवी पूर्णाम्बा** एवं **देवी शारदाम्बा** दीदी जिनसे मुझे संगणक की तकनीकि तथा ग्रन्थ की अन्य

विशेषताओं की जानकारी प्राप्त होती रही है, उनके प्रति भी सादर आभार है एवं श्रीजी प्रिण्टर्स के संचालक **श्री अनूप कुमार नागर** जी का भी मैं आभारी हूँ, जिन्होंने स्वामीजी के एक बार दूरभाष पर कहने मात्र से इस ग्रन्थ के प्रकाशन को प्राथमिकता देकर पूर्ण करवाया।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन में ताण्ड्यमहाब्राह्मणम् सायणाचार्यकृतभाष्य, कुम्भकोणम् से प्रकाशित छान्दोग्यब्राह्मणम् के प्रथम एवं द्वितीय भाग तथा विशिष्ट आचार्यों के सहयोग से शुद्धता का पूरा प्रयत्न किया गया है, परन्तु पाठभेदादि के कारण कुछ अशुद्धियाँ रह गई हो तो विद्वज्जन क्षमा करते हुए उन्हें अवगत कराने की कृपा करेंगे।

विजय कुमार शर्मा

विजय कुमार शर्मा

विषयानुक्रमणिका

॥श्रीः॥

ॐ नमः सामवेदाय

अष्टब्राह्मणेषु प्रथमम्

ताण्ड्यमहाब्राह्मणम्

प्रथमोऽध्यायः

प्रथमः खण्डः

महन्मे वोचो भर्गो मे वोचो यशो मे वोचः स्तोमं मे वोचो भुक्तिं मे वोचःसर्वं मे वोचस्तन्मावतु तन्माविशतु तेन भुक्षिषीय ॥१॥ देवो देवमेतु सोमः सोममेत्वृतस्य पथा ॥२॥ विहाय दौष्कृत्यम् ॥३॥ बद्धानामासि सृतिः सोमसरणी सोमं गमेयम् ॥४॥ पितरो भूः पितरो भूः पितरो भूः ॥५॥ नृमण ऊर्द्ध्वर्वभरसं त्वोर्द्ध्वर्वभरा दृशेयम् ॥६॥ मृदा शिथिरा देवानां तीर्थं वेदिरसि मा मा हिंसीः ॥७॥ विष्णोः शिरोसि यशोधा यशो मयि धेहि ॥८॥ इषऊर्ज्ज आयुषे वर्च्चसे च ॥९॥

द्वितीयः खण्डः

युनज्मि ते पृथिवीमग्निना सह युनज्मि वाचंसह सूर्य्येण युक्तो वातोन्तरिक्षेण ते सह युक्तास्तिस्रो विभृजः सूर्य्यस्य ॥१॥ ऋतस्य सदने सीदामि ॥२॥ ऋतपात्रमसि ॥३॥ वानस्पत्योसि बार्हस्पत्योसि प्राजापत्योसि प्रजापतेर्मूर्द्धास्यत्यायु पात्रमसीदमहं मां प्राञ्चं प्रोहामि तेजसे ब्रह्मवर्च्चसाय ॥४॥ मरुतो नपातोऽ– पाङ्क्षयाः पर्व्वतानाङ्ककुभः श्येना अजिरा एन्द्रं वग्नुना वहत घोषेणामीवां चातयध्वं युक्तास्थ वहत ॥५॥

इदमहममुं यजमानं पशुष्वध्यूहामि पशुषु च मां ब्रह्मवर्चसे च ।। ६।। वसवस्त्वा गायत्रेण छन्दसा संमृजन्तु रुद्रास्त्वा त्रैष्टुभेन छन्दसा सम्मृजन्त्वादित्यास्त्वा जागतेन छन्दसा संमृजन्तु ।। ७।। पवित्रन्ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्य्येषि विश्वतः अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तः सन्तदाशत ।। ८।। प्र शुक्रैतु देवी मनीषास्मद्रथः सुतष्टो न वाज्यायुषे मे पवस्व वर्चसे मे पवस्व विदुः पृथिव्या दिवो जनित्राच्छृण्वन्त्वापोधः क्षरन्तीः सोमेहोद्गाय ममायुषे मम ब्रह्मवर्चसाय यजमानस्यर्द्ध्यां अमुष्य राज्याय ।। ९।।

तृतीयः खण्डः

बेकुरा नामासि जुष्टा देवेभ्यो नमो वाचे नमो वाचस्पतये देवि वाग्यत्ते वाचो मधुमत्तस्मिन्माधाः सरस्वत्यै स्वाहा ।। १।। सूर्य्यो मा दिव्याभ्यो नाष्ट्राभ्यः पातु वायुरन्तरिक्षाभ्योग्निः पार्थिवाभ्यः स्वाहा ।। २।। योऽद्य सौम्यो वधोघायूनामुदीरते विषूकुहस्य धन्वनाप तान् वरुणोऽधमत् ।। ३।। यो म आत्मा या मे प्रजा ये मे पशवस्तैरहं मनो वाचं प्रसीदामि ।। ४।। अग्नेस्तेजसेन्द्रस्येन्द्रियेण सूर्य्यस्य वर्च्चसा बृहस्पतिस्त्वा युनक्तु देवेभ्यः प्राणायाग्निर्य्युनक्तु तपसास्तोमं यज्ञाय वोढवे दधात्विन्द्र इन्द्रियꣳसत्याः कामा यजमानस्य सन्तु ।। ५।। अन्नं करिष्याम्यन्नं प्रविष्याम्यन्नञ्जनयिष्यामि ।। ६।। अन्नमकरमन्नमभूदन्नमजीजनम् ।। ७।। श्येनोऽसि गायत्रछन्दा अनुत्वारभे स्वस्ति मा सम्पारयामास्तोत्रस्य स्तोत्रं गम्यादिन्द्रवन्तो वनेमहि भक्षीमहि प्रजामिषम् ।। ८।। संवर्चसा पयसा सन्तपोभिरगन्महि मनसा सꣳशिवेन संविज्ञानेन मनसश्च सत्यैर्यथावोऽहं चारुतमं वदानीन्द्रो वो दृशे भूयासं सूर्यश्चक्षुषे वातः प्राणाय सोमो गन्धाय ब्रह्म क्षत्राय ।। ९।। नमो गन्धर्वाय विष्वग्वादिने वर्चोधा असि वर्चो मयि धेहि ।।१०।।

चतुर्थः खण्डः

अध्वनामध्वपते स्वस्ति मेऽद्यास्मिन् देवयाने पथि भूयात् ।।१।। सम्म्राडसि कृशानुः ।। २।। तुथोसि जनधायो प्रतक्वाऽसंमृष्टोसि हव्यसूदनः ।। ३।। विभुरसि प्रवाहणः ।।४।। वह्निरसि हव्य–वाहनः ।।५।। श्वात्रोसि प्रचेताः ।।६।। तुथोसि विश्ववेदा उशिगसि कविरङ्घारिरसि बम्भारिरवस्युरसि दुवस्वान् ।।७।। शुन्ध्युरसि मार्जालीयः ।।८।। ऋतधामासि स्वर्ज्योतिः ।।९।। समुद्रोसि विश्वव्यचाः ।।१०।। अहिरसि बुध्न्यः ।।११।। अजोस्येकपात् ।।१२।। सगरा असि बुध्न्यः ।।१३।। कव्योसि कव्यवाहनः ।।१४।। पातमाग्नयो रौद्रेणानीकेन पिपृत मा नमो वोस्तु मा मा हिंसिष्ठ ।।१५।।

पञ्चमः खण्डः

ऋतस्य द्वारौस्थो मा मा सन्ताप्तम् ।।१।। नमः सखिभ्यः पूर्वसद्भ्यो नमोऽपरसद्भ्यः ।। २।। श्येनो नृचक्षा अग्नेष्ट्वा चक्षुषावपश्यामि ।। ३।। इन्द्रविन्द्रपीतस्य त इन्द्रियावतो गायत्रछन्दसः सर्वगणस्य सर्वगण उपहूत उपहूतस्य भक्षयामि ।।४।। ऊद्ध्वर्वस्सप्तऋषीनुपतिष्ठस्वेन्द्रपीतो वाचस्पते सप्तर्त्विजोभ्युच्छ्रयस्व जुषस्व लोकम्मा वाङवगाः ।।५।। सोम रारन्धिनो हृदि पिता नोसि मम तन्मा माहिंसीः ।। ६।। सोम गीर्भिष्ट्वा वयं वर्द्धयामो वचोविदः सुमृडीको न आविश ।।७।। आप्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम्। भवा वाजस्य सङ्गथे ।।८।। अवमैस्त ऊर्वैस्ते काव्यैस्ते पितृभिर्भक्षितस्य मधुमतो नाराशंसस्य सर्वगणस्य सर्वगण उपहूत उपहूतस्य भक्षयामि ।। ९।।

दीक्षायै वर्णेन तपसो रूपेण मनसो महिम्ना वाचो विभूत्या प्रजापतिस्त्वा युनक्तु प्रजाभ्योऽपानाय ।।१०।। वायुर्युनक्तु मनसा स्तोमं यज्ञाय वोढवे दधात्विन्द्र इन्द्रियꣳसत्याः कामा यजमानस्य सन्तु ।।११।। वृषकोऽसि त्रिष्टुप्छन्दा अनुत्वारंभे स्वस्ति मासंपारयामास्तोत्रस्य स्तोत्रं गम्यादिन्द्रवन्तो वनेमहि भक्षीमहि प्रजामिषम् ।।१२।। इन्द्रविन्द्रपीतस्य त इन्द्रियावतस्त्रिष्टुप् छन्दसः सर्वगणस्य सर्वगण उपहूत उपहूतस्य भक्षयामि ।।१३।। सूर्य्यो युनक्तु वाचा स्तोमं यज्ञाय वोढवे दधात्विन्द्र इन्द्रियꣳसत्याः कामा यजमानस्य सन्तु ।।१४।। स्वरोसि गयोसि जगच्छन्दा अनुत्वारभे स्वस्ति मासंपारयामास्तोत्रस्य स्तोत्रं गँम्यादिन्द्रवन्तो वनेमहि भक्षीमहि प्रजामिषम् ।।१५।। इन्द्रविन्द्रपीतस्य त इन्द्रियावतो जगच्छन्दसः सर्वगणस्य सर्वगण उपहूत उपहूतस्य भक्षयामि ।।१६।। आयुर्मे प्राणो मनसि मे प्राण आयु पत्न्यामृचि यन्मे मनोयमं गतं यद्वा मे अपरागतꣳराज्ञा सोमेन तद्वयं पुनरस्मासु दध्मसि ।।१७।। यन्मे यमं वैवस्वतं मनो जगाम दूरगास्तन्मआवर्त्तया पुनर्जीवातवेन मर्त्तवेऽथो अरिष्टतातये ।।१८।। येनाह्याजिमजयद्विचक्ष्य येन श्येनꣳशकुनꣳसुपर्णं यदाहुश्चक्षुरदितावनन्तꣳसोमो नृचक्षा मयि तद्दधातु ।।१९।।

षष्ठः खण्डः

ऐन्द्रꣳसहोऽसर्ज्जि तस्य त इन्द्रविन्द्रपीतस्येन्द्रियावतोनुष्टुप् छन्दसो हरिवतः सर्वगणस्य सर्वगण उपहूत उपहूतस्य भक्षयामि ।।१।। इन्द्रविन्द्रपीतस्य त इन्द्रियावतोऽनुष्टुप् छन्दसः सर्वगणस्य सर्वगण उपहूत उपहूतस्य भक्षयामि ।।२।। स्तुतस्य स्तुतमस्यूर्ज—स्वत्पयस्वदामास्तोत्रस्य स्तोत्रं गम्यादिन्द्रवन्तोवनेमहि भक्षीमहि प्रजामिषम् ।।३।।

इष्टयजुषस्ते देव सोम स्तुतस्तोमस्य शस्तोक्थस्य तिरोह्नयस्य योश्वसनिर्गोसनिर्भक्षस्तस्योपहूत उपहूतस्य भक्षयामि ।।४।। ऋतस्य त्वा देव स्तोम पदे विष्णोर्द्धामनि विमुञ्चाम्येतत्त्वं देव स्तोमानवकरमगन्नशीमहि वयं प्रतिष्ठाम् ।।५।। सोमेह्यनुमेहि सोम सहसदस इन्द्रियेण ।।६।। सुभूरसि श्रेष्ठो रश्मिर्देवानाꣳसꣳसद्देवानां यातुर्य्यया तन्वा ब्रह्म जिन्वसि तया मा जिन्व तया मा जनय प्रकाशं मा कुरु ।।७।। अपां पुष्पमस्योषधीनाꣳरस इन्द्रस्य प्रियतमꣳहविः स्वाहा ।।८।। हारियोजनस्य ते देव सोमेष्टयजुषः स्तुतस्तोमस्य शस्तोक्थस्य योश्वसनिर्गोसनिर्भक्षस्तस्योपहूत उपहूतस्य भक्षयामि ।।९।। देवकृतस्यैनसोऽवयजनमसि पितृकृतस्यै-नसोऽवयजनमसि मनुष्यकृतस्यैनसोऽवयजनमस्यस्मत्कृत-स्यैनसोऽवयजनमसि यद्दिवा च नक्तं चैनश्चकृम तस्यावयजनमसि यत् स्वपन्तश्च जागृतश्चैनश्चकृम तस्यावयजनमसि यद्विद्वाꣳसश्चाविद्वाꣳ-सश्चैनश्चकृम तस्यावयजनमस्येनसएनसोऽवयजनमसि ।।१०।। अप्सु धौतस्य ते देव सोम नृभिः सुतस्य ।।११।। मधुमन्तं भक्षं करोमि ।।१२।। शमद्भ्य ओषधीभ्यः ।।१३।। काम कामं म आवर्त्तय ।।१४।। ऊर्गस्यूर्जम्मयि धेहि ।।१५।। प्राण सोमपीथे मे जागृहि ।।१६।। दधिक्राव्णो अकारिषञ्जिष्णोरश्वस्य वाजिनः। सुरभि नो मुखा करत्प्रन आयूꣳषि तारिषत् ।।१७।।

सप्तमः खण्डः

अश्वोस्यत्योसि मयोसि हयोसि वाज्यसि सप्तिरर्वागसि वृषासि ।।१।। आदित्यानां पत्मान्विहि नमस्तेऽस्तु मा मा हिꣳसीः ।।२।। वायोष्ट्वा तेजसा प्रतिगृह्णामि नक्षत्राणां त्वां रूपेण प्रतिगृह्णामि सूर्य्यस्य त्वा वर्चसा प्रतिगृह्णामि ।।३।।

रथन्तरमसि वामदेव्यमसि बृहदसि ।।४।। अङ्कान्यङ्कूअभितो रथ यौ ध्वान्तं वाताग्रमभिसञ्चरन्तौ दूरे हेतिरिन्द्रियवान् पतत्री ते नोग्नयः पप्रयः पारयन्तु ।।५।। वैश्वानरः प्रत्नथा नाकमारुह दिवः पृष्ठे मन्दमानः सुमन्मभिः सपूर्ववज्जनयञ्जन्तवे धनꣳसमानमय्मन् पर्य्येति जागृविः ।।६।। गिदैष ते रथ एष वामश्विना रथोरिष्टो विश्वभेषजः ।।७।। कृशानो सव्यानायच्छ ।।८।। दासनो दक्षिणानवगृहाण ।।९।।

अष्टमः खण्डः

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रतिगृह्णामि ।।१।। वरुणस्त्वा नयतु देवि दक्षिणे वरुणायाश्वं तेनामृतत्वमशीय वयो दात्रे भूयान्मयो मह्यं प्रतिगृहीत्रे ।।२।। वरुणस्त्वा नयतु देवि दक्षिणे रुद्राय गां तयामृतत्वमशीय वयो दात्रे भूयान्मयो मह्यं प्रतिगृहीत्रे ।।३।। वरुणस्त्वा नयतु देवि दक्षिणेऽग्नयेऽजम् ।।४।। अग्नये हिरण्यम् ।।५।। अग्नीषोमाभ्या–मजान्तयामृतत्वमशीय वयो दात्रे भूयान्मयो मह्यं प्रतिगृहीत्रे ।।६।। अन्नस्यान्नपतिः प्रादादनमीवस्य शुष्मिणो नमो विश्वजनस्य क्षामाय भुञ्जति मा मा हिꣳसीः ।।७।। वरुणस्त्वा नयतु देवि दक्षिणे त्वष्ट्रेऽविं तयाऽमृतत्वमशीय वयो दात्रे भूयान्मयो मह्यं प्रतिगृहीत्रे ।।८।। ग्नास्त्वाकृन्तन्नपसोऽतन्वत वयित्र्योऽवयन् ।।९।। वरुणस्त्वा नयतु देवि दक्षिणे बृहस्पतये वासस्तेनामृतत्वमशीय वयो दात्रे भूयान्मयो मह्यं प्रतिगृहीत्रे ।।१०।। वरुणस्त्वा नयतु देवि दक्षिणे उत्तानायाङ्गिरसायाप्राणत् तेनामृतत्वमशीय वयो दात्रे भूयान्मयो मह्यं प्रतिगृहीत्रे ।।११।। वरुणस्त्वा नयतु देवि दक्षिणे पूष्ण उष्ट्रम् ।।१२।।

वायवे मृगं तेनामृतत्वमशीय वयो दात्रे भूयान्मयो मह्यं प्रतिगृहीत्रे ।।१३।। वरुणस्त्वा नयतु देवि दक्षिणे प्रजापतये पुरुषं, प्रजापतये हस्तिनं, प्रजापतये वराहं, प्रजापतये व्रीहियवाꣳ-स्तैरमृतत्वमशीय वयो दात्रे भूयान्मयो मह्यं प्रतिगृहीत्रे ।।१४।। वरुणस्त्वा नयतु देवि दक्षिणे क्षेत्रपतये तिलमाषाꣳस्तैरमृतत्वमशीय वयो दात्रे भूयान्मयो मह्यं प्रतिगृहीत्रे ।।१५।। वरुणस्त्वा नयतु देवि दक्षिणे सवित्रेऽश्वतरं वाऽश्वतरीं वा तयाऽमृतत्वमशीय वयो दात्रे भूयान्मयो मह्यं प्रतिगृहीत्रे ।।१६।। क इदं कस्मा अदात्कामः कामायादात्कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामः समुद्रमाविशत्कामेन त्वा प्रतिगृह्णामि कामैतत्ते ।।१७।।

नवमः खण्डः

रश्मिरसि क्षयाय त्वा क्षयं जिन्व सवितृप्रसूता बृहस्पतये स्तुत ।।१।। प्रेतिरसि धर्म्मणे त्वा धर्म्मं जिन्व सवितृप्रसूता बृहस्पतये स्तुत ।।२।। अन्वितिरसि दिवे त्वा दिवं जिन्व सवितृप्रसूता बृहस्पतये स्तुत ।।३।। सन्धिरस्यन्तरिक्षाय त्वान्तरिक्षं जिन्व सवितृ-प्रसूता बृहस्पतये स्तुत ।।४।। प्रतिधिरसि पृथिव्यै त्वा पृथिवीञ्जिन्व सवितृप्रसूता बृहस्पतये स्तुत ।।५।। विष्टम्भोसि वृष्ट्यै त्वा वृष्टिं जिन्व सवितृप्रसूता बृहस्पतये स्तुत ।।६।। प्राचोस्यह्ने त्वाहर्जिन्व सवितृप्रसूता बृहस्पतये स्तुत ।।७।। अन्वासि रात्र्यै त्वा रात्रिञ्जिन्व सवितृप्रसूता बृहस्पतये स्तुत ।।८।। उशिगसि वसुभ्यस्त्वा वसून् जिन्व सवितृप्रसूता बृहस्पतये स्तुत ।।९।। प्रकेतोसि रुद्रेभ्यस्त्वा रुद्राञ्जिन्व सवितृप्रसूता बृहस्पतये स्तुत ।।१०।। सुदीतिरस्यादि-त्येस्त्वादित्याञ्जिन्व सवितृप्रसूता बृहस्पतये स्तुत ।।११।। ओजोसि पितृभ्यस्त्वा पितृञ्जिन्व सवितृप्रसूता बृहस्पतये स्तुत ।।१२।।

दशमः खण्डः

तन्तुरसि प्रजाभ्यस्त्वा प्रजा जिन्व सवितृप्रसूता बृहस्पतये स्तुत ॥१॥ रेवदस्योषधीभ्यस्त्वौषधीर्ज्जिन्व सवितृप्रसूता बृहस्पतये स्तुत ॥२॥ पृतनाषाड़सि पशुभ्यस्त्वा पशूञ्जिन्व सवितृप्रसूता बृहस्पतये स्तुत ॥३॥ अभिजिदसि युक्तग्रावेन्द्राय त्वेन्द्रञ्जिन्व सवितृप्रसूता बृहस्पतये स्तुत ॥४॥ अधिपतिरसि प्राणाय त्वा प्राणाञ्जिन्व सवितृप्रसूता बृहस्पतये स्तुत ॥५॥ धरुणोस्यपानाय त्वाऽपानञ्जिन्व सवितृप्रसूता बृहस्पतये स्तुत ॥६॥ सꣳसर्पोसि चक्षुषे त्वा चक्षुर्जिन्व सवितृप्रसूता बृहस्पतये स्तुत ॥७॥ वयोधा असि श्रोत्राय त्वा श्रोत्रं जिन्व सवितृप्रसूता बृहस्पतये स्तुत ॥८॥ त्रिवृदसि त्रिवृते त्वा सवृदसि सवृते त्वा प्रवृदसि प्रवृते त्वाऽनुवृदस्यनुवृते त्वा सवितृप्रसूता बृहस्पतये स्तुत ॥९॥ निरोहोस निरोहाय त्वा सꣳरोहोसि सꣳरोहाय त्वा प्ररोहोसि प्ररोहाय त्वाऽनुरोहोऽस्यनुरोहाय त्वा सवितृप्रसूता बृहस्पतये स्तुत ॥१०॥ वसुकोऽसि वस्यष्टिरसि वेषश्रीरसि सवितृप्रसूता बृहस्पतये स्तुत ॥११॥ आक्रमोस्याक्रमाय त्वा संक्रमोसि संक्रमाय त्वोत्क्रमोस्युत्क्रमायत्वोत्क्रान्तिरस्युत्क्रान्त्यै त्वा सवितृप्रसूता बृहस्पतये स्तुत ॥१२॥

॥इति प्रथमोऽध्यायः॥



द्वितीयोऽध्यायः

प्रथमः खण्डः

तिसृभ्यो हिङ्करोति स प्रथमया तिसृभ्यो हिङ्करोति समध्यमया तिसृभ्यो हिङ्करोति स उत्तमयोद्यती त्रिवृतो विष्टुतिः ॥१॥ ज्येष्ठो ज्यैष्ठिनेयस्तुवीत ॥२॥ अग्रादग्रꣳरोहत्यभिक्रामन्ती विष्टुतिरभिक्रान्त्या एवाभिक्रान्तेन हि यज्ञस्यर्ध्नोति तस्मादेतया स्तोतव्य मृध्या एव ॥३॥ पापवसीयसो विष्टुतिर्विपाप्मना वर्त्तते य एतया स्तुते नावगतोऽपरुध्यते नापरुद्धोऽवगच्छति न श्रेयाँसं पापीयानभ्यारोहति न जनता जनतामभ्येति नान्योन्यस्य प्रजा आददते यथा क्षेत्रं कल्पन्तेऽवर्षुकस्तु पर्ज्जन्यो भवतीमे हि लोकास्तृचस्तान् हिङ्कारेण व्येति ॥४॥ एषा वै प्रतिष्ठिता त्रिवृतो विष्टुतिः प्रतितिष्ठति य एतया स्तुते ॥५॥

द्वितीयः खण्डः

तिसृभ्यो हिङ्करोति सपराचीभिस्तिसृभ्यो हिङ्करोति सपराचीभिस्तिसृभ्यो हिङ्करोति सपराचीभिः परिवर्त्तिनी त्रिविष्टुतिः ॥१॥ प्रपरीवर्त्तमाप्नोति य एतया स्तुते सन्तता विष्टुतिः प्राणोऽपानो व्यानस्त ऋच स्तान् हिङ्कारेण सन्तनोति सर्व्वमायुरेति न पुरायुषः प्रमीयते य एतया स्तुते वर्षुकः पर्ज्जन्यो भवतीमे हि लोकास्तृचस्तान् हिङ्कारेण सन्दधाति ॥२॥ श्लक्ष्णेव तु वा ईश्वरा पशून्निर्मृजः सैषा च पराचोत श्रेयान् भवत्युत यादृङ्ङेव तादृङ्नेतु पापीयान् ॥३॥ तामेताम्भाल्लवय उपासते तस्मात्ते प्रतिगृह्णन्तः परीवर्त्तान्न च्यवन्ते ॥४॥

तृतीयः खण्डः

तिसृभ्यो हिङ्करोति सपराचीभिस्तिसृभ्यो हिङ्करोति यामध्यमा सा प्रथमा योत्तमा सा मध्यमा या प्रथमा सोत्तमा तिसृभ्यो हिङ्करोति योत्तमा सा प्रथमा या प्रथमा सा मध्यमा या मध्यमा सोत्तमा कुलायिनी त्रिवृतो विष्टुतिः ।।१।। प्रजाकामो वा पशुकामो वा स्तुवीत प्रजा वै कुलायम्पशवः कुलायङ्कुलायमेव भवति ।।२।। एतामेवानुजावराय कुर्य्यादेतासामेवाग्रं परियतीनां प्रजानाम–ग्रम्पर्य्येति ।।३।। एतामेव बहुभ्यो यजमानेभ्यः कुर्य्यात् यत्सर्व्वा अग्रिया भवन्ति सर्व्वा मध्ये सर्व्वा उत्तमाः सर्व्वानेवैनान् समावद्भाजः करोति नान्योन्यमपघ्नते सर्वे समावदिन्द्रिया भवन्ति ।।४।। वर्षुकः पर्ज्जन्यो भवतीमे हि लोकास्तृचस्तान् हिङ्कारेण व्यतिषजति ।।५।। पापवसीयसन्तु भवति ।।६।। अधरोत्तरमपावगतो रुध्यतेऽव–गच्छत्यपरुद्धः पापीयान् श्रेयाꣳसमभ्यारोहति जनता जनतामभ्ये–त्यन्योन्यस्य प्रजा आददते न यथा क्षेत्रं कल्पन्ते ।।७।।

चतुर्थः खण्डः

पञ्चभ्यो हिङ्करोति स तिसृभिस्स एकया स एकया, पञ्चभ्यो हिङ्करोति स एकया स तिसृभिस्स एकया, पञ्चभ्यो हिङ्करोति स एकया स एकया स तिसृभिः, पञ्चपञ्चिनी पञ्चपञ्चदशस्य विष्टुतिः ।।१।। पाङ्क्तः पुरुषः पाङ्क्ताः पशवस्तया पुरुषञ्च पशूँश्चाप्नोति वज्रो वै पञ्चदशो यत्पञ्चपञ्च व्यूहति वज्रमेव तद्व्यूहति शान्त्या एषा वै प्रतिष्ठिता पञ्चदशस्य विष्टुतिः प्रतितिष्ठति य एतया स्तुते ।।२।।

पञ्चमः खण्डः

पञ्चभ्यो हिङ्करोति स तिसृभिस्स एकया स एकया, तिसृभ्यो हिङ्करोति स पराचीभिस्सप्तभ्यो हिङ्करोति स एकया स तिसृभिः स तिसृभिः ।।१।। त्रीन् स्तोमान् प्रति विहिता ब्रह्मवर्च्चसकामः स्तुवीत ।।२।। पञ्चभिः पञ्चदशं तिसृभिस्त्रिवृतं सप्तभिः सप्तदशम् ।।३।। वीर्य्यं वै स्तोमा वीर्य्यमेव तदेकधा समूहते ब्रह्मवर्चसस्यावरुध्यै तेजस्वी बह्मवर्चसी भवति य ए एतया स्तुते ।।४।।

षष्ठः खण्डः

तिसृभ्यो हिङ्करोति सपराचीभिः, पञ्चभ्यो हिङ्करोति स एकया स तिसृभिस्स एकया, सप्तभ्यो हिङ्करोति स तिसृभिस्स एकया स तिसृभिरुद्यती पञ्चदशस्य विष्टुतिः ।।१।। एतया वै देवाः स्वर्ग लोकमायन् स्वर्गकामः स्तुवीत स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै स्वर्गाल्लोकान्न च्यवते तुष्टुवानः ।। २।। अभिक्रामन्ती विष्टुतिरभि– क्रान्त्या एवाभिक्रान्तेन हि यज्ञस्यर्ध्नोति तस्मादेतया स्तोतव्यमृध्या एव ।।३।।

सप्तमः खण्डः

पञ्चभ्यो हिङ्करोति स तिसृभिः स एकया स एकया, पञ्चभ्यो हिङ्करोति स एकया तिसृभिः स एकया, सप्तभ्यो हिङ्करोति स एकया स तिसृभिः स तिसृभिर्द्दशसप्ता सप्तदशस्य विष्टुतिः ।।१।। एतया वै देवा असुरानत्यक्रामन्नति पाप्मानं भ्रातृव्यं क्रामति य एतया स्तुते ।। २।। अभिक्रामन्ती विष्टुतिरभिक्रान्त्या एवाभिक्रान्तेन यज्ञस्यर्ध्नोति तस्मादेतया स्तोतव्यमृध्या एव ।। ३।।

गर्भिणी विष्टुतिः प्रप्रजया प्रपशुभिर्ज्जायते य एतया स्तुते ।।४।। विड्वै सप्तदशस्तस्या राजा गर्भो विश एव तद्राजानङ्गर्भङ्करोति ।।५।। नावगतोपरुध्यते नापरुद्धोऽवगच्छति ।।६।। अन्नं वै सप्तदशो यत्सप्तमध्ये भवन्ति पञ्चपञ्चाभितोऽन्नमेव तन्मध्यतो धीयतेऽनशनायुको यजमानो भवत्यनशनयुकाः प्रजाः ।।७।। वैराजो वै पुरुषः सप्त ग्राम्याः पशवो यद्दशपुर्व्वा भवन्ति सप्तोत्तमा यजमानमेव तत् पशुषु प्रतिष्ठापयति ।।८।। एषा वै प्रतिष्ठिता सप्तदशस्य विष्टुतिः प्रतितिष्ठति य एतया स्तुते ।।९।।

अष्टमः खण्डः

एष एव व्यूहः सप्तैकमध्या ।।१।। ब्रह्मणो वा आयतनं प्रथमा क्षत्रस्य मध्यमा विंश उत्तमा, यत्प्रथमा भूयिष्ठा भाजयति ब्रह्मण्येव तदोजोवीर्य्यन्दधाति ब्रह्मण एव तत् क्षत्रञ्च विशञ्चानुगे करोति क्षत्रस्येवास्य प्रकाशो भवति य एतया स्तुते ।।२।। तामेतान्त्रिखर्व्वा उपासते तस्मात्ते स्पर्द्धमाना न व्लीयन्ते ।।३।।

नवमः खण्डः

सप्तभ्यो हिङ्करोति स तिसृभिस्स तिसृभिस्स एकया, तिसृभ्यो हिङ्करोति स पराचीभिस्सप्तभ्यो हिङ्करोति स एकया स तिसृभिस्स तिसृभिस्सप्तास्थिता ।।१।। भ्रातृव्ययाँस्तुवीत यथा सप्तास्थितेन मत्येन समीकरोत्येवं पाप्मानं भ्रातृव्यं प्ररुजति ।।२।। एतामेव बहुभ्यो यजमानेभ्यः कुर्य्याद्यः प्रथमो हिङ्कारः स प्रथमाया यत्ताँ सप्तभ्यो हिङ्करोति तेन सा सप्त भजते यत्सप्तैव मध्ये सम्पद्यन्ते

तेन सा सप्त भजते य उत्तमो हिङ्कारः स उत्तमाया यत्ताँ सप्तभ्यो हिङ्करोति तेन सा सप्त भजते सर्व्वानेवैनान् समावद्धाजः करोति नान्योन्यमपघ्नते सर्वे समावदिन्द्रिया भवन्ति ।। ३ ।। तामेतामाभि- प्रतारिण उपासते तस्मात्त ओजिष्ठास्वानाम् ।। ४ ।।

दशमः खण्डः

एष एव व्यूह उभयस्सप्तैकमध्या निर्म्मध्या ।। १ ।। आनुजावरस्तुवीतालोको वा एष यदानुजावरो यत् सप्त- प्रथमास्सप्तोत्तमास्तिस्रो मध्ये त्र्यक्षरः पुरुषो लोकमेवास्मै तन्मध्यतः करोति तस्मिँल्लोके प्रतितिष्ठति ।। २ ।। एतामेव प्रजाकामाय कुर्य्यान्मध्यतो वा एष सँरूढो यः प्रजान्न विन्दते लोकमैवास्मै तं मध्यतः करोति तं लोकं प्रजया च पशुभिश्चानु- प्रजायते ।। ३ ।। एतामेवापरुद्धराजन्याय कुर्य्याद्विड्वै सप्तदशस्तस्या राजा गर्भो विश एव तद्राजानन्निर्हन्त्यपावगतो रुध्यतेव गच्छत्यपरुद्धः ।। ४ ।। एतामेवाभिचर्य्यमाणाय कुर्य्यात्प्रजापतिर्वै सप्तदशः प्रजापतिमेव मध्यतः प्रविशस्तृत्यै ।। ५ ।।

एकादशः खण्डः

पञ्चभ्यो हिङ्करोति स तिसृभिः स एकया स एकया, तिसृभ्यो हिङ्करोति स पराचीभिर्नवभ्यो हिङ्करोति स तिसृभिः स तिसृभिः स तिसृभिः ।। १ ।। चतुरस्तोमान् प्रतिविहिता ब्रह्मवर्च्चसकामः स्तुवीत पञ्चभिः पञ्चदशं तिसृभिस्त्रिवृतन्नवभिस्त्रिणवꣳस्वयꣳसप्तदशः सम्पन्नो वीर्य्यं वै स्तोमावीर्य्यमेव तदेकधा समूहते ब्रह्मवर्चसस्या- वरुध्यै तेजस्वी ब्रह्मवर्च्चसी भवति य एतया स्तुते ।। २ ।।

द्वादशः खण्डः

तिसृभ्यो हिङ्करोति स पराचीभिः पञ्चभ्यो हिङ्करोति स एकया स तिसृभिः स एकया नवभ्यो हिङ्करोति स तिसृभिस्स तिसृभस्स तिसृभिरुद्यती सप्तदशस्य विष्टुतिः ।।१।। एतया वै देवाः स्वर्गं लोकमायंस्स्वर्गकामः स्तुवीत स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै स्वर्गाल्लोकान्न च्यवते तुष्टुवानोऽभिक्रामन्ती विष्टुतिरभिक्रान्त्या एवाभिक्रान्तेन हि यज्ञस्यर्ध्नोति तस्मादेतया स्तोतव्यमृध्या एव ।। २।।

त्रयोदशः खण्डः

सप्तभ्यो हिङ्करोति स तिसृभिस्स तिसृभिस्स एकया पञ्चभ्यो हिङ्करोति स एकया तिसृभिस्स एकया पञ्चभ्यो हिङ्करोति स एकया स एकया स तिसृभिर्भस्त्रावाचीनविला ।।१।। यं द्विष्यात्तस्य कुर्य्याद्यथावाचीनविलया भस्त्रया प्रधूनुयादेवं यजमानस्य पशून् प्रधूनोत्यपक्रामन्ती विष्टुतिस्तया यजमानस्य पशवोऽपक्रामन्ति पापीयान् भवति य एतया स्तुते ।। २।।

चतुर्दशः खण्डः

सप्तभ्यो हिङ्करोति स तिसृभिस्स तिसृभिस्स एकया सप्तभ्यो हिङ्करोति स एकया तिसृभिस्स तिसृभिस्सप्तभ्यो हिङ्करोति स तिसृभिस्स एकया स तिसृभिः सप्तसप्तिन्येकविंशस्य विष्टुतिः ।।१।। सप्त ग्राम्याः पशवस्तानेतया स्पृणोति सप्त शिरसि प्राणाः प्राणा इन्द्रियाणीन्द्रियाण्येवैतयाप्नोति ।। २।। एषा वै प्रतिष्ठितैकविंशस्य विष्टुतिः प्रतितिष्ठति य एतया स्तुते ।। ३।।

पञ्चदशः खण्डः

पञ्चभ्यो हिङ्करोति स तिसृभिः स एकया स एकया सप्तभ्यो हिङ्करोति स एकया स तिसृभिस्स तिसृभिर्न्नवभ्यो हिङ्करोति स तिसृभिः स तिसृभिः स तिसृभिरुद्यत्येकविंशस्य विष्टुतिः ॥१॥ एतया वै देवाः स्वर्गं लोकमायन् स्वर्गकामः स्तुवीत स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै स्वर्गाल्लोकान्न च्यवते तुष्टुवानोऽभिक्रामन्ती विष्टुतिरभिक्रामन्त्या एवाभिक्रान्तेन हि यज्ञस्यर्ध्नोति तस्मादेतया स्तोतव्यमृद्ध्याएव ॥२॥ सैषा त्रिवृत्प्रायणा त्रिवृदुदयना यत्त्रिवृद्बहिष्पवमानं भवति नवैता एकविंशस्योत्तमा भवन्ति प्राणा वै त्रिवृत्प्राणानेव तदुभयतो दधाति तस्मादयमर्द्धभागवाक्प्राण उत्तरेषां प्राणानां सर्व्वमायुरेति न पुरायुषः प्रमीयते य एतया स्तुते ॥३॥ तामेताङ्करद्विष उपासते तस्मात्ते सर्व्वमायुर्यन्ति ॥४॥

षोडशः खण्डः

नवभ्यो हिङ्करोति स तिसृभिः स तिसृभिः स तिसृभिः, पञ्चभ्यो हिङ्करोति स एकया स तिसृभिः स एकया, सप्तभ्यो हिङ्करोति स तिसृभिः स एकया स तिसृभिः प्रतिष्टुतिः ॥१॥ नवभिस्त्रिवृतं प्रतिष्टौति पञ्चभिः पञ्चदशं सप्तभिः सप्तदशं स्वयमेकविंशः सम्पन्नः ॥२॥ य एव स्तोमा यज्ञं वहन्ति तानुत्तमे स्तोत्रे सन्तर्पयति यथाऽनडुहो वाश्वान्वाश्वतरान्वोहुषः सन्तर्पयेदेव–मेतदुत्तमे स्तोत्रे स्तोमान् सन्तर्पयति तृप्यति प्रजया पशुभिर्य एतया स्तुते ॥३॥ एतामेव पुरोधाकामाय कुर्य्याद् ब्रह्म वै त्रिवृत् क्षत्रमेकविंशो यत्त्रिवृतैकविंशं प्रतिपद्यते ब्रह्म तत् क्षत्रस्य पुरस्तान्निदधाति गच्छति पुरोधान्न पुरोधायाश्च्यवते य एतया स्तुते ॥४॥

तामेतां प्रावाहण्य उपासते तस्मात्ते पुरोधाया न च्यवन्ते ।।५।।

सप्तदशः खण्डः

नवभ्यो हिङ्करोति स तिसृभिः स तिसृभिः स तिसृभिस्तिसृभ्यो हिङ्करोति सपराचीभिर्नवभ्यो हिङ्करोति स तिसृभिः स तिसृभिः स तिसृभिः सूर्म्युभयत आदीप्ता ।।१।। ब्रह्मवर्च्चसकामः स्तुवीत तेजो वै त्रिवृत् त्र्यक्षरः पुरुषो यत् त्रिवृंतावभितो भवतस्तिस्रो मध्ये यथा हिरण्यं निष्टपेदेवमेनं त्रिवृतौ निष्टपतस्तेजसे ब्रह्मवर्चसाय ।।२।। अपशव्येव तु वा ईश्वरा पशून्निर्द्दहः किलासत्त्वान्नुभयमति हि निष्टपतः ।।३।। एतामेवाभिशस्यमानाय कुर्य्याच्छमलं वा एतमृच्छतिं यमश्लीला वागृच्छति यैवैनमसावश्लीलं वाग्वदति तामस्य त्रिवृतौ निष्टपतस्तेजस्वी भवति य एतया स्तुते ।।४।।

।।इति द्वितीयोऽध्यायः।।



तृतीयोऽध्याय:

प्रथम: खण्ड:

नवभ्यो हिङ्करोति स तिसृभि: स पञ्चभि: स एकया, नवभ्यो हिङ्करोति स एकया स तिसृभि: स पञ्चभिर्नवभ्यो हिङ्करोति स पञ्चभि: स एकया स तिसृभि: ।।१।। वज्रो वै त्रिणवो वज्रमेव तद्व्यूहति शान्त्यै ।। २।। पञ्चभिर्विहितैका परिचरा पाङ्क्ता: पशवो यजमान: परिचरा यत्पञ्चभिर्विदधात्येका परिचरा भवति यजमानमेव तत्पशुषु प्रतिष्ठापयत्येषा वै प्रतिष्ठिता त्रिणवस्य विष्टुति: प्रतितिष्ठति य एतया स्तुते ।। ३।।

द्वितीय:खण्ड:

सप्तभ्यो हिङ्करोति स तिसृभिस्स तिसृभिस्स एकया नवभ्यो हिङ्करोति स एकया स तिसृभिस्स पञ्चभिरेकादशभ्यो हिङ्करोति स पञ्चभि: स तिसृभि: स तिसृभिरुद्यती त्रिणवस्य विष्टुति: ।।१।। एतया वै देवा: स्वर्गं लोकमायन् स्वर्गकाम: स्तुवीत स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै स्वर्गाल्लोकान्न च्यवते तुष्टुवानोऽभिक्रामन्ती विष्टुतिरभिक्रान्त्या एवाभिक्रान्तेन हि यज्ञस्यर्ध्नोति तस्मादेतया स्तोतव्यमृध्या एव ।। २।।

तृतीय: खण्ड:

एकादशभ्यो हिङ्करोति स तिसृभिस्स सप्तभि: स एकयैका-दशभ्यो हिङ्करोति स एकया स तिसृभि: स सप्तभिरेकादशभ्यो हिङ्करोति स सप्तभिस्स एकया स तिसृभि: ।।१।।

अन्तो वै त्रयस्त्रिंꣳशः परमो वै त्रयस्त्रिंꣳशस्तोमानाꣳ—सप्तभिर्विहितैका परिचरा सप्त ग्राम्याः पशवो यजमानः परिचरा यत्सप्तभिर्विदधात्येका परिचरा भवति यजमानमेव तदन्ततः पशुषु प्रतिष्ठापयत्येषा वै प्रतिष्ठिता त्रयस्त्रिंꣳशस्य विष्टुतिः प्रतितिष्ठति य एतया स्तुते ।। २।।

चतुर्थः खण्डः

एकादशभ्यो हिङ्करोति स तिसृभिः स पञ्चभिः स तिसृभिरेकादशभ्यो हिङ्करोति स तिसृभिः स तिसृभिः स पञ्चभिरेकादशभ्यो हिङ्करोति स पञ्चभिः स तिसृभिः स तिसृभिर्नेदीयः संक्रमा ।।१।। अन्तो वै त्रयस्त्रिंꣳशो यथा महावृक्षस्याग्रꣳसृप्त्वा नेदीयः संक्रमात् संक्रामत्येवमेतन्नेदीयः संक्रमया नेदीयः संक्रमात् संक्रामति ।। २।। पञ्चभिर्विहितास्तिस्रः परिचराः पाङ्क्ताः पशव एतावान् पुरुषो यदात्मा प्रजा जाया यत्पञ्चभिर्विदधाति तिस्रः परिचरा भवन्ति यजमानमेव तत्पशुषु प्रतिष्ठापयति पशुमान् भवति य एतया स्तुते ।। ३।।

पञ्चमः खण्डः

नवभ्यो हिङ्करोति स तिसृभिः स पञ्चभिः स एकयैकादशभ्यो हिङ्करोति स एकया स तिसृभिः स सप्तभिस्त्रयोदशभ्यो हिङ्करोति स सप्तभिः स तिसृभिस्स तिसृभिरुद्यती त्रयस्त्रिंꣳशस्य विष्टुतिः ।।१।। एतया वै देवाः स्वर्गं लोकमायन् स्वर्गकामः स्तुवीत स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै स्वर्गाल्लोकान्न च्यवते तुष्टुवानोऽग्रादग्रꣳरोहत्यभिक्रामन्ती विष्टुतिरभिक्रान्त्या एवाभिक्रान्तेन हि यज्ञस्यर्ध्नोति तस्मादेतया स्तोतव्यमृद्ध्या एव ।। २।।

षष्ठः खण्डः

त्रयोदशभ्यो हिङ्करोति स तिसृभिः स पञ्चभिः स पञ्चभिरेकादशभ्यो हिङ्करोति स पञ्चभिः स तिसृभिः स तिसृभिर्नवभ्यो हिङ्करोति स तिसृभिः स तिसृभिः स तिसृभिः प्रत्यवरोहिणी त्रयस्त्रिंशस्य विष्टुतिः ।।१।। यथा महावृक्षस्याग्रंसृप्त्वा शाखायाः शाखामालम्भमुपावरोहेदेवमेतयेमं लोकमुपावरोहति प्रतिष्ठायै ।। २।। त्रिवृता प्रैति त्रिवृतोदेति प्राणो वै त्रिवृत् प्राणोनैव प्रैति प्राणमभ्युदेति सर्वमायुरेति न पुरायुषः प्रमीयते य एतया स्तुते ।। ३।। तामेताङ्करद्विष उपासते तस्मात्ते सर्व्वमायुर्य्यन्ति ।।४।।

सप्तमः खण्डः

पञ्चदशभ्यो हिङ्करोति स तिसृभिः स सप्तभिः स पञ्चभिरेकादशभ्यो हिङ्करोति स पञ्चभिः स तिसृभिः स तिसृभिस्सप्तभ्यो हिङ्करोति स तिसृभिः स एकया स तिसृभिः ।।१।। यो वै त्रयस्त्रिंशमेकविंशे प्रतिष्ठितं वेद प्रतितिष्ठति प्रतिष्ठा वा एकविंशः स्तोमानां यदेताः सप्त त्रयस्त्रिंशस्योत्तमा भवन्ति सप्तविधैकविंशस्य विष्टुतिरेकविंश एव तत् त्रयस्त्रिंशं प्रतिष्ठापयति प्रतितिष्ठति य एतया स्तुते ।। २।।

अष्टमः खण्डः

अष्टाभ्यो हिङ्करोति स तिसृभिः स चतसृभिः स एकयाऽष्टाभ्यो हिङ्करोति स एकया स तिसृभिः स चतसृभिरष्टाभ्यो हिङ्करोति स चतसृभिस्स एकया स तिसृभिः ।।१।। पशवो वै छन्दोमा यदष्टाभ्योऽष्टाभ्यो हिङ्करोति अष्टाशफाः पशवः शफशस्तत्—पशूनाप्नोति ।। २।।

चतसृभिर्विंहितैका परिचरा चतुष्पादाः पशवो यजमानः परिचरा यच्चतसृभिर्विदधात्येका परिचरा भवति यजमानमेव तत्पशुषु प्रतिष्ठापयत्येषा वै प्रतिष्ठिता चतुर्विंशस्य विष्टुतिः प्रतितिष्ठति य एतया स्तुते ।।३।।

नवमः खण्डः

पञ्चदशभ्यो हिङ्करोति स तिसृभिः स एकादशभिः स एकया, चतुर्दशभ्यो हिङ्करोति स एकया स तिसृभिः स दशभिः, पञ्चदशभ्यो हिङ्करोति स एकादशभिः स एकया स तिसृभिः ।।१।। ब्रह्मणो वा आयतनं प्रथमा क्षत्रस्य मध्यमा विंश उत्तमा यत् पञ्चदशिन्यौ पूर्वे भवतश्चतुर्दशोत्तमा ब्रह्मणि चैव तत् क्षत्रे चौजो वीर्य्यं दधाति ब्रह्मणे चैव तत्क्षत्राय च विशमनुगां करोति क्षत्रस्येवास्य प्रकाशो भवति य एतया स्तुते ।।२।। अस्तोमा वा एते यछन्दोमा अयुजो हि स्तोमा युग्मन्ति छन्दाँसि यदेषा युजिनी चतुश्चत्वारिंशस्य विष्टुतिस्तेन स्तोमाः ।।३।। एषा वै प्रतिष्ठिता चतुश्चत्वारिंशस्य विष्टुतिः प्रतितिष्ठति य एतया स्तुते ।।४।।

दशमः खण्डः

चतुर्दशभ्यो हिङ्करोति स तिसृभिः स दशभिः स एकया, पञ्चदशभ्यो हिङ्करोति स एकया स तिसृभिः स एकादशभिः, पञ्चदशभ्यो हिङ्करोति स एकादशभिस्स एकया स तिसृभि-र्निर्मध्या ।।१।। अस्तीव वा अयं लोकोस्तीवासौ छिद्रमिवेदमन्तरिक्षं यदेषा निर्मध्या भवती मानेव लोकाननु प्रजायते प्रप्रजया प्रपशुभिर्जायते य एतया स्तुते ।।२।।

एकादशः खण्डः

पञ्चदशभ्यो हिङ्करोति स तिसृभिः स एकादशभिस्स एकया, पञ्चदशभ्यो हिङ्करोति स एकया स तिसृभिस्स एकादशभिश्चतुर्दशभ्यो हिङ्करोति स दशभिः स एकया स तिसृभिः ।।१।। आज्यानां प्रथमा पृष्ठानां द्वितीयोक्थानां तृतीया ।। २।। याज्यानाꣳसा होतुर्य्या पृष्ठानाꣳसा मैत्रावरुणस्य योक्थानाꣳसा ब्राह्मणाच्छꣳसिनो यैव होतुः साच्छावाकस्य या पृष्ठानाꣳसा होतुर्य्योक्थानाꣳसा मैत्रावरुणस्य याज्यानाꣳसा ब्राह्मणाच्छꣳसिनो यैव होतुः साच्छावाकस्य योक्थानाꣳसा होतुर्य्याज्यानाꣳसा मैत्रावरुणस्य या पृष्ठानाꣳसा ब्राह्मणाच्छꣳसिनो यैव होतुः साच्छावाकस्य, सर्वा आज्येषु सर्वाः पृष्ठेषु सर्व्वा उक्थेषु ।। ३।। पशवो वै समीषन्ती यदेषा सर्वाणि सवनान्यनुसञ्चरत्यनुसवनमेवैनं पशुभिः समर्द्धयति पशुमान् भवति य एतया स्तुते ।।४।।

द्वादशः खण्डः

षोडशभ्यो हिङ्करोति स तिसृभिः स द्वादशभिः स एकया, षोडशभ्यो हिङ्करोति स एकया स तिसृभिः स द्वादशभिः, षोडशभ्यो हिङ्करोति स द्वादशभिः स एकया स तिसृभिः ।।१।। अन्तो वा अष्टाचत्वारिꣳशः पशवश्छन्दोमा यत् षोडशभ्यः षोडशभ्यो हिङ्करोति षोडशकलाः पशवः कलाशस्तत् पशूनाप्नोति ।। २।। द्वादशभिर्विहितैका परिचरा द्वादशमासास्सम्वत्सरो यजमानः परिचरा यद्द्वादशभिर्विदधात्येका परिचरा भवति यजमानमेव तदन्ततस्सम्वत्सरे पशुषु प्रतिष्ठापयत्येषा वै प्रतिष्ठिताष्टा-चत्वारिꣳशस्य विष्टुतिः प्रतितिष्ठति य एतया स्तुते ।। ३।।

त्रयोदशः खण्डः

षोडशभ्यो हिङ्करोति स तिसृभिः स दशभिः स तिसृभिः, षोडशभ्यो हिङ्करोति स तिसृभिः स तिसृभिः स दशभिः, षोडशभ्यो हिङ्करोति स दशभिः स तिसृभिः स तिसृभिर्न्नेदीयः संक्रमाः ॥१॥ अन्तो वा अष्टाचत्वारिंशो यथा महावृक्षस्याग्रं सृप्त्वा नेदीयः संक्रमात् संक्रामत्येवमेतन्नेदीयः संक्रमया नेदीयः संक्रमात् संक्रामति ॥ २॥ दशभिर्विहिता तिस्रः परिचरा दशाक्षरा विराडेतावान् पुरुषो यदात्मा प्रजा जाया यद्दशभिर्विदधाति तिस्रः परिचरा भवन्ति यजमानमेव तत् विराज्यन्नाद्येऽन्ततः प्रतिष्ठापयत्यन्नादो भवति य एतया स्तुते ॥ ३॥

॥इति तृतीयोऽध्यायः॥



चतुर्थोऽध्यायः

प्रथमः खण्डः

गावो वा एतत् सत्रमासत ताषां दशसु मास्सु शृङ्गाण्यजायन्त ता अब्रुवन्नरास्मोत्तिष्ठामोपशा नोऽज्ञतेति ता उदतिष्ठन् ॥१॥ तासान्त्वेवाब्रुन्नासामहा एवेमौ द्वादशौ मासौ सँ सम्वत्सरमापयामेति तासान्द्वादशसु माःसु शृङ्गाणि प्रावर्त्तन्त ताः सर्वमन्नाद्यमाप्नुवꣳस्ता एतास्तूपरा स्तस्मात्ताः सर्व्वान्द्वादशमासः प्रेरते सर्वꣳहि ता अन्नाद्यमाप्नुवन् ॥२॥ सर्वमन्नाद्यमाप्नोति य एवं वेद ॥३॥ प्रजापतिर्वा इदमेक आसीत् सोकामयत बहुस्यां प्रजायेयेति स एतमतिरात्रमपश्यत्तमाहरत्तेनाहोरात्रे प्राजनयत् ॥४॥ यदेषोऽतिरात्रो–भवत्यहोरात्रे एव प्रजनयन्त्यहोरात्रयोः प्रतितिष्ठन्त्येतावान् वाव सम्वत्सरो यदहश्च रात्रिश्चाहोरात्राभ्यामेव तत्सम्वत्सरमाप्नुवन्ति ॥५॥ यज्ज्योतिष्टोमो भवति यज्ञ मुखन्तदृध्नुवन्ति यदुक्थो यज्ञ–क्रतोरनन्तरयाय यद्रात्रिः सर्वस्याप्त्यै ॥६॥ स एतान् स्तोमानपश्यत् ज्योतिर्गौरायुरितीमे वै लोका एते स्तोमा अयमेव ज्योति–रयम्मध्यमो गौरसावुत्तम आयुः ॥७॥ यदेते स्तोमा भवन्तीमानेव लोकान् प्रजनयन्त्येषु लोकेषु प्रतितिष्ठन्ति ॥८॥ स एतन्त्र्यहं पुनः प्रायुङ्क्त तेन षडहेन षड्तून् प्राजनयत् ॥९॥ यदेष षडहो भवति ऋतूनेव प्रजनयन्ति ऋतुषु प्रतितिष्ठन्ति ॥१०॥ स एतꣳषडहं पुनः प्रायुङ्क्तताभ्यां द्वाभ्याꣳषडहाभ्यां द्वादशमासः प्राजनयत् ॥११॥ यदेतौ द्वौ षडहौ भवतो मासानेव प्रजनयन्ति मासेषु प्रतितिष्ठन्ति ॥१२॥ स एतौ द्वौ षडहौ पुनः प्रायुङ्क्त तैश्चतुर्भिः षडहैश्चतुर्विंꣳशतिरर्द्धमासान् प्राजनयत् ॥१३॥

यदेते चत्वार: षडहा भवन्त्यर्द्धमासानेव प्राजनयन्त्यर्द्धमासेषु प्रतितिष्ठन्ति ।।१४।। स इदं भुवनं प्रजनयित्वा पृष्ठ्येन षडहेन वीर्य्यमात्मन्यधत्त ।।१५।। यदेष पृष्ठ्य: षडहो भवति वीर्य्य एवान्तत: प्रतितिष्ठन्ति ।।१६।। तेन मासान् संवत्सरं प्राजनयद्यदेष मासो भवति सम्वत्सरमेव प्रजनयन्ति सम्वत्सरे प्रतितिष्ठन्ति ।।१७।।

द्वितीय: खण्ड:

प्रायणीयमेतदहर्भवति ।।१।। प्रायणीयेन वा अह्ना देवा: स्वर्गं लोकं प्रायन्यत् प्रायंस्तत्प्रायणीयस्य प्रायणीयत्वम् ।।२।। तस्मात्प्रायणीयस्याह्न ऋत्विजा भवतिव्यमेतद्धि स्वर्गस्य लोकस्य नेदिष्ठं य एतस्यर्त्विङ् न भवति हीयते स्वर्गाल्लोकात् ।।३।। चतुर्विंशं भवति ।।४।। चतुर्विंशत्यक्षरा गायत्री तेजो ब्रह्मवर्चसङ्गायत्री तेजएव ब्रह्मवर्चसमारभ्य प्रयन्ति ।।५।। चतुर्विंशं भवति चतुर्विंशो वै सम्वत्सर: साक्षादेव सम्वत्सरमारभन्ते ।।६।। यावत्यश्चतुर्विंशस्योक्थस्य स्तोत्रीयास्तावत्य: सम्वत्सरस्य रात्रय: स्तोत्रीयाभिरेव तत् सम्वत्सरमाप्नुवन्ति ।।७।। पञ्चदश स्तोत्राणि भवन्ति पञ्चदशार्द्धमासस्य रात्रयोऽर्द्धमासश एव तत् सम्वत्सरमाप्नुवन्ति ।।८।। पञ्चदश स्तोत्राणि भवन्ति पञ्चदश शस्त्राणि स मासो मासश एव तत् सम्वत्सरमसप्नुववन्ति ।।९।। तदाहुरीर्म्म इव वां एषा होत्रा यदच्छावाक्या यदच्छावाकमनुसन्तिष्ठत ईश्वरेर्म्मा भवितोरिति यद्युक्थंस्मात्रैककुभश्चोद्वंशीयञ्चान्तत: प्रतिष्ठाप्ये वीर्य्यं वा एते सामनी वीर्य्य एवान्तत: प्रतितिष्ठन्ति ।।१०।। अथो खल्वाहुरग्निष्टोममेव कार्यमेष वै यज्ञ: स्वर्ग्यो यदग्निष्टोम ऊर्द्ध्वोंहि होतारमनु सन्तिष्ठते ।।११।।

द्वादश स्तोत्राण्यग्निष्टोमो द्वादश मासाः सम्वत्सरस्तेन सम्वत्सरसम्मितो द्वादश स्तोत्राणि द्वादश शस्त्राणि तच्चतुर्विंꣳ—शतिश्चतुर्विंꣳशतिरर्द्धमासाः संवत्सरस्तेन सम्वत्सरसम्मितः ॥१२॥ अथो खल्वाहुरुक्थमेव कार्य्यमह्नः समृद्ध्यै ॥१३॥ सर्व्वाणि रूपाणि क्रियन्ते सर्व्वꣳह्येतेनाह्वाप्यते ॥१४॥ पवन्ते वाजसातये सोमाः सहस्रपाजस इति सहस्रवती प्रतिपत्कार्य्या ॥१५॥ सम्वत्सरस्य रूपꣳसर्व्वानिवैनानेतया पुनाति सर्व्वानभि वदति ॥१६॥ अथो खल्वाहुः पवस्व वाचो अग्रिय इत्येव कार्या मुखं वा एतत् संवत्सरस्य यद्वाचोग्रम्मुखतएव तत् संवत्सरमारभन्ते ॥१७॥ मिथुनमिव वा एषा व्याहृतिः पवस्वेति पुꣳसो रूपं वाच इति स्त्रियाः सोमेति पुꣳसो रूपञ्चित्राभिरिति स्त्रिया मिथुनमेवैभ्यो यज्ञमुखे दधाति प्रजननाय ॥१८॥ अग्ने युङ्क्ष्वा हि ये तवेति जराबोधीयमग्निष्टोम साम कार्य्यं युक्तेनैव संवत्सरेण प्रयन्ति चतुर्विंꣳशत्यक्षरासु भवति चतुर्विंꣳशस्य रूपम् ॥१९॥ अथो खल्वाहुर्य्यज्ञायज्ञीयमेव कार्य्यम् ॥२०॥ पन्था वै यज्ञायज्ञीयं पथ एव तन्नयन्ति ॥२१॥

तृतीयः खण्डः

अभीवर्त्तो ब्रह्मसाम भवति ॥१॥ अभीवर्त्तेन वै देवाः स्वर्गं लोकमभ्यवर्त्तन्त यदभीवर्त्तो ब्रह्मसाम भवति स्वर्गस्य लोकस्याभिवृत्यै ॥२॥ एकाक्षरणिधनो भवत्येकाक्षरा वै वाग्वाचैव तदारभ्य स्वर्गं लोकं यन्ति ॥३॥ साम्नेतो यन्त्यृचा पुनरायन्ति ॥४॥ साम वा असौ लोको ऋगयं यदितः साम्ना यन्ति स्वर्ग लोकमारभ्य यन्ति यदृचा पुनरायन्त्यस्मिन् लोके प्रतितिष्ठन्ति ॥५॥

यत्सामावसृजेयुरव स्वर्गाल्लोकात्पद्येरन्यद्व्यमनुसृजेयुर्न्नश्येयुर–स्माल्लोकात् ।।६।। समानꣳसाम भवत्यन्योन्य: प्रागाथोऽन्यदन्यद्धि चित्रमध्वानमवगच्छन्नेति ।।७।। वृषा वा एष रेतोधा यदभीवर्त्त: प्रगाथेषु रेतो दधदेति यदित: समानꣳसाम भवत्यन्योऽन्य: प्रगाथो रेत एव तद्दधति यत्परस्तात् समान: प्रगाथो भवत्यन्यदन्यत्साम रेत एव तद्धितं प्रजनयन्ति ।।८।। साम्नेत: प्रगाथां दुग्धे प्रगाथेन परस्तात्सामानि दुग्धे सलोमत्वाय ।।९।। ये वा अध्वानं पुनर्निवर्त्तयन्ति नैनं ते गच्छन्ति येऽपुनर्निवर्त्तं यन्ति ते गच्छन्ति ।।१०।। य आस्तुतं कुर्वते यथा दुग्धामुपसीदे देवन्तत् ।।११।। ये नास्तुतं यं कामं कामयन्ते तमभ्यश्नुवते ।।१२।। ब्रह्मवादिनो वदन्ति यातयामा: संवत्सरा ३ अयातयाम ३ इति ते नायातयामेति वक्तव्यं पुनरन्यानि स्तोत्राणि निवर्त्तन्त ऊर्द्ध्वमेव ब्रह्मसामैति ।।१३।।

चतुर्थ: खण्ड:

पञ्चसु मा:सु बार्हता: प्रगाथा आप्यन्ते ।।१।। तेष्वाप्तेषु छन्दसी संयुज्यैतव्यम् ।।२।। तिस्र उष्णिह: स्युरेका गायत्री तास्तिस्रोबृहत्यो भवन्ति ।।३।। तदाहु: सꣳशर इव वा एषच्छन्दसां यत् द्वे छन्दसी संयुञ्जन्तीति ।।४।। चतुरुत्तरैरेव छन्दोभि–रेतव्यम् ।।५।। पशवो वै चतुरुत्तराणि छन्दाꣳसि पशुभिरेव तत् स्वर्गं लोकमाक्रममानयन्ति ।।६।। एकाङ्गायत्रीमेकाहमुपेयुरेका–मुष्णिहमेकाहमेकामनुष्टुभमेकाहं बृहत्या पञ्चमास इयु: पङ्क्तिमेकाहमुपेयुस्त्रिष्टुभा षष्ठं मासमियु: श्वो विषुवान् भवितेति जगतीमुपेयु: ।।७।।

तदाहुरनवक्लृप्तानि वा एतानि छन्दांऽसि मध्यन्दिने बृहत्या चैव त्रिष्टुभा चैतव्यम् ॥८॥ एते वै छन्दसी वीर्य्यवती एते प्रत्यक्षं मध्यन्दिनस्य रूपम् ॥९॥ राथन्तरेऽहनि बृहती कार्यैतद्वै रथन्तरस्य स्वमायतनं यद्बृहती स्व एव तदायतने रथन्तरं प्रतितिष्ठति बार्हतेऽहनि त्रिष्टुप् कार्यैतद्वै बृहतः स्वमायतनं यत् त्रिष्टुप् स्व एव तदायतने बृहद्रथन्तरे प्रतितिष्ठन्ती इतः ॥१०॥ त्रयस्त्रिंऽशता प्रगाथैरेतव्यं त्रयस्त्रिंऽशद्देवता देवतास्वेव प्रतितिष्ठन्तोयन्ति, चतुर्विंऽशत्यैतव्यं चतुर्विंऽशतिरर्द्धमासाः संवत्सरः संवत्सर एव प्रतितिष्ठन्तोयन्ति, द्वादशभिरेतव्यं द्वादशमासाः संवत्सरः संवत्सर एव प्रतितिष्ठन्तोयन्ति, षड्भिरेवतव्यंऽषड्ऋतव ऋतुष्वेव प्रतितिष्ठन्तोयन्ति, चतुर्भिरितव्यश्चतुष्पादाः पशवः पशुष्वेव प्रतितिष्ठन्तोयन्ति, त्रिभिरेतव्यन्त्रय इमे लोका एष्वेव लोकेषु प्रतितिष्ठन्तोयन्ति द्वाभ्यामेतव्यन्द्विपाद्यजमानः स्वर्गस्य लोकस्या– क्रान्त्या अन्येनान्येन हि पदा पुरुषः प्रतितिष्ठन्नेति ॥११॥

पञ्चमः खण्डः

स्वरसामान एते भवन्ति ॥१॥ स्वर्भानुर्वा आसुर आदित्यन्तमसाऽविध्यत्तं देवाः स्वरैरस्पृण्वन्यत् स्वर सामानो भवन्त्यादित्यस्य स्पृत्यै ॥२॥ परवैं देवा आदित्यंऽस्वर्गं लोकमपारयन्यदपारयंऽस्तत्पराणां परत्वम् ॥३॥ पारयन्त्येनं पराणि य एवं वेद ॥४॥ सप्तदशा भवन्ति ॥५॥ प्रजापतिर्वै सप्तदशः प्रजापतिमेवोपयन्ति ॥६॥ अनुष्टुप् छन्दसो भवन्त्यानुष्टुभो वै प्रजापतिः साक्षादेव प्रजापतिमारभन्ते ॥७॥ त्रयः पुरस्तात् त्रयः परस्ताद्भवन्ति ॥८॥

देवा वा आदित्यस्य स्वर्गाल्लोकादवपादादविभयुस्तमेतैः स्तोमैः सप्तदशैरदृंहन्यदेते स्तोमाभवन्त्यादित्यस्य धृत्यै ॥ ९॥ चतुस्त्रिंशा भवन्ति वर्ष्म वै चतुस्त्रिंशो वर्ष्मणैवैनंसम्मिमते ॥१०॥ तस्य पराचीनातिपादादविभयुस्तंसर्व्वैः स्तोमैः पर्य्यारिषन्विश्वजिदभिजिद्भ्यां वीर्यं वा एतौ स्तोमौ वीर्य्येणैव तदादित्यं पर्य्युषन्ति धृत्यै ॥११॥ अनवपादायानतिपादाय ॥१२॥ तदाहुः कर्त्तप्रस्कन्द इव वा एष यत् त्रयस्त्रिंशत सप्तदशमुपयन्तीति पृष्ठ्योन्तरः कार्य्यः ॥१३॥ तस्य यत्सप्तदशमहस्तदुत्तमं कार्यंसलोमत्वाय ॥१४॥ तदाहुरुदरं वा एषः स्तोमानां यत् सप्तदशो यत् सप्तदशम्मध्यतो निर्हरेयु–रशनायवः प्रजाः स्युरशनायवः सत्रिण इति ॥१५॥ त्रयस्त्रिंशादेव सप्तदश उपेत्यो वर्ष्म वै त्रयस्त्रिंशो वर्ष्म सप्तदशो वर्ष्मण एव तद्वर्ष्माभिसंक्रामन्ति ॥१६॥ तानाहुरुक्थाः कार्य्या ३ अग्निष्टोमा ३ इति यद्युक्थाः स्युः ॥१७॥ पशवो वा उक्थानि शान्तिः पशवः शान्तेनैव तद्विषुवन्तमुपयन्ति ॥१८॥ तदाहुर्विवीवधमिव वा एतद्यग्निष्टोमोविषुवानग्निष्टोमौ विश्वजिदभिजितावथेतर उक्थाः स्युरिति ॥१९॥ अग्निष्टोमा एव सर्व्वे कार्य्याः ॥२०॥ वीर्य्यं वा अग्निष्टोमो वीर्य्य एव मध्यतः प्रतितिष्ठन्ति नव संस्तुता भवन्ति नव प्राणाः प्राणेष्वेव प्रतितिष्ठन्ति ॥ २१॥

षष्ठः खण्डः

विषुवानेष भवति ॥१॥ देवलोका वा एष यद्विषुवान्देवलोकमेव तदभ्यारोहन्ति ॥ २॥ एकविंशो भवत्येकविंशो वा अस्य भुवनस्यादित्य आदित्यलोकमेव तदभ्यारोहन्ति ॥ ३॥ द्वादशमासाः पञ्चवर्त्तवस्त्रय इमे लोका असावादित्य एकविंशः ॥४॥

मध्यत एव यज्ञस्य प्रतितिष्ठन्ति ॥५॥ वायो शुक्रो अयामित इति शुक्रवती प्रतिपद्भवत्यादित्यस्य रूपम् ॥६॥ वायुर्व्वा एतन्देवतानामानशेऽनुष्टुप् छन्दसां यदतोन्या प्रतिपत्स्यात्प्रदहेत् ॥७॥ यन्ति वा एते प्राणादित्याहुर्य्ये गायत्र्याः प्रतिपदो यन्तीति यद्वायव्या भवन्ति तेन प्राणान्नयन्ति प्राणोहि वायुः ॥८॥ अथो शमयन्त्येवैनमेतया शान्तिर्हि वायुः ॥९॥ आयाहि सोमपीतय इति सौमी पावमानी ॥१०॥ नियुत्वती भवति पशवो वै नियुतः शान्तिः पशवः शान्तेनैव तदादित्यमुपयन्ति ॥११॥ दिवाकीर्त्यसामा भवति ॥१२॥ स्वर्भानुर्व्वा आसुर आदित्यन्तमसाविध्यत्तस्य देवा दिवाकीर्त्यैस्तमोऽपाघ्नन्यद्दिवाकीर्त्यानि भवन्ति तम एवास्मादपघ्नन्ति रश्मयो वा एत आदित्यस्य यद्दिवाकीर्त्यानि रश्मिभिरेव तदादित्यं साक्षादारभन्ते ॥१३॥ भ्राजाभ्राजे पवमानमुखे भवतो मुखत एवास्य ताभ्यां तमोऽपघ्नन्ति ॥१४॥ महादिवाकीर्त्यञ्च विकर्णञ्च मध्यतो भवतो मध्यत एवास्य ताभ्यां तमोऽपघ्नन्ति ॥१५॥ दशस्तोभं भवति दशाक्षरा विराड् विराज्येव प्रतितिष्ठन्ति ॥१६॥ यत्वित्याहुः षड्भिरितो मासरध्वानं यन्ति षड्भिः पुनरायन्ति क्व तर्हि स्वर्गोलोको यस्य कामाय सत्रमासत इति ॥१७॥ मूर्द्धानन्दिव इति स्वर्गं लोकमारभन्ते ॥१८॥ अरतिं पृथिव्या इत्यस्मिन् लोके प्रतितिष्ठन्ति ॥१९॥ वैश्वानर मृत आजातमग्निमिति विषुवत एव तद्रूपं क्रियते ॥२०॥ कविंस्सम्राजमतिथिञ्जनानामित्यन्ना- द्यमेवोऽपयन्ति ॥२१॥ आसन्नः पात्रञ्जनयन्त देवा इति जायन्त एव ॥२२॥ तत्त्रिष्टुब् जगतीषु भवति त्रैष्टुब्जागतो वा आदित्यो यदतोऽन्यासु स्यादव स्वर्गाल्लोकात्पद्येरन् ॥२३॥ सम्राड्वतीषु भवति साम्राज्यं वै स्वर्गो लोकः स्वर्गएव लोके प्रतितिष्ठन्ति ॥२४॥

सप्तमः खण्डः

आत्मा वा एष संवत्सरस्य यद्विषुवान् पक्षावेतावभितो भवतो येन चेतोऽभीवर्त्तेन यन्ति यश्च परस्तात् प्रगाथो भवति तावुभौ विषुवति कार्य्यौं पक्षावेव तद्यज्ञस्यात्मन् प्रतिदधति स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै ॥ १ ॥ 'इन्द्रक्रतुन्न आभरे'ति प्रगाथो भवति ॥ २ ॥ वसिष्ठो वा एतं पुत्रहतोऽपश्यत् सप्रजया पशुभिः प्राजायत यदेष प्रगाथो भवति प्रजात्यै ॥ ३ ॥ जीवा ज्योतिरशीमहीति ये वै स्वस्ति संवत्सरꣳसन्तरन्ति ते जीवा ज्योतिरश्नुवते ॥ ४ ॥ मानो अज्ञाता वृजना दुराध्यो मा शिवासोऽवक्रमुरिति ये वै स्तेना रिपवस्ते दुराध्यस्तानेव तदतिक्रामन्ति ॥ ५ ॥ त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपोऽस्ति शूरतरामसीति संवत्सरो वै प्रवतः शश्वतीरपस्तमेव तत्तरन्ति ॥ ६ ॥ अद्याद्याश्वः श्वस्त्वामिदा ह्यो नरो वयमेनमिदाह्य इति सन्तनयः प्रगाथा भवन्ति तेषामेकः कार्य्यः समलोमत्वाय श्वस्तनमेवाभि-सन्तवन्ति ॥ ७ ॥ अथो खल्वाहुरिन्द्र क्रतुन्न आभरेत्येव कार्य्यꣳसमृद्ध्यै ॥ ८ ॥ प्रत्यवरोहिणो मासा भवन्ति ॥ ९ ॥ यथा वा इतो वृक्षꣳरोहन्त्येवमेनं प्रत्यवरोहन्ति स्वर्गमेव तल्लोकꣳ-रूढ्वास्मिल्लोके प्रतितिष्ठन्ति ॥ १० ॥

अष्टमः खण्डः

गौश्चायुश्च स्तोमौ भवतः ॥ १ ॥ द्विपाद्यजमानः प्रतिष्ठित्यै ॥ २ ॥ ऊनातिरिक्तौ भवत ऊनातिरिक्तं वा अनु प्रजाः प्रजायन्ते प्रजात्यै ॥ ३ ॥ वैराजौ भवतोऽन्नं विराडन्नाद्य एव प्रतितिष्ठन्ति ॥ ४ ॥ द्वादशाहस्य दशाहानि भवन्ति ॥ ५ ॥ विराड्वा एषा समृद्धा यद्दशाहानि विराज्येव समृद्धायां प्रतितिष्ठन्ति ॥ ६ ॥

पृष्ठानि भवन्ति वीर्यं वै पृष्ठानि वीर्यएव प्रतितिष्ठन्ति छन्दोमा भवन्ति पशवो वै छन्दोमाः पशुष्वेव प्रतितिष्ठन्त्यथैतद्दशम–महराप्तस्तोममाप्तछन्दआप्तविभक्तिकमनिरुक्तं प्राजापत्यम् ।।७।। यदध्याहुरति तद्रेचयन्ति तस्मान्न व्युच्यम् ।।८।। परोक्षमनुष्टुभ–मुपयन्ति प्रजापतिर्वा अनुष्टुप् यत् प्रत्यक्षमुपेयुः प्रजापति–मृछेयुः ।।९।। यो वै सत्रस्य सद्वेद सद्भवति वामदेव्यं वै साम्नाꣳसदग्निर्देवतानां विराट् छन्दसान्त्रयस्त्रिꣳशः स्तोमानां तान्येव तदेकधा संभृत्योत्तिष्ठन्ति ।।१०।। ब्रह्मवादिनो वदन्ति यतः सत्रादुदस्थाता ३ स्थिता ३ दिति ।।११।। ये रथन्तरेण स्तुत्वोत्तिष्ठन्ति ते यत उत्तिष्ठन्ति तान् ब्रूयादप्रतिष्ठाना भविष्यन्तीति ये बृहता स्तुत्योत्तिष्ठन्ति ते स्थितादुत्तिष्ठन्ति तान् ब्रूयात् स्थायुकैषाꣳश्रीर्भविष्यति न वसीयाꣳसो भविष्यन्तीति ।।१२।। ये वामदेव्येन स्तुत्वोत्तिष्ठन्ति ते सतः सदभ्युत्तिष्ठन्ति पूर्णात्पूर्णमा–यतनादायतनमन्तरिक्षायतना हि प्रजा ।।१३।। त्रयस्त्रिꣳशदक्षरासु भवति त्रयस्त्रिꣳशद्देवतास्वेव प्रतिष्ठायोत्तिष्ठन्ति ।।१४।। प्राजापत्यं वै वामदेव्यं प्रजापतावेव प्रतिष्ठायोत्तिष्ठन्ति पशवो वै वामदेव्यं पशुष्वेव प्रतिष्ठायोत्तिष्ठन्ति ।।१५।।

नवमः खण्डः

पत्नीः संयाज्य प्राञ्च उदेत्यायꣳसहस्रमानव इत्यतिछन्द–साऽऽहवनीयमुपतिष्ठन्ते ।।१।। इमे वै लोका अतिछन्दा एष्वेव लोकेषु प्रतितिष्ठन्ति ।।२।। गोरिति निधनं भवति विराजो वा एतद्रूपं यद्गौर्विराज्येव प्रतितिष्ठन्ति ।। ३।। प्रत्यञ्चः प्रपद्य सार्पराज्ञ्या ऋग्भिः स्तुवन्ति ।।४।। अर्बुदः सर्प एताभिर्मृतान्त्वचमपाहत मृतामेवैताभिस्त्वचमपघ्नते ।।५।।

इयं वै सार्पराज्ञ्यस्यामेव प्रतितिष्ठन्ति ।। ६ ।। तिसृभिः स्तुवन्ति त्रय इमे लोका एष्वेव लोकेषु प्रतितिष्ठन्ति ।। ७ ।। मनसोपावर्त्तयति ।। ८ ।। मनसा हिङ्करोति मनसा प्रस्तौति मनसोद्गायति मनसा प्रतिहरति मनसा निधनमुपयन्त्यसमाप्तस्य समाप्त्यै ।। ९ ।। यद्वै वाचा न समाप्नुवन्ति मनसा तत्समापयन्ति ।। १० ।। परिश्रिते स्तुवन्ति ब्रह्मणः प्ररिगृहीत्यै ।। ११ ।। ब्रह्मोद्यं वदन्ति ब्रह्मवर्च्चसं एव प्रतितिष्ठन्ति ।। १२ ।। चतुर्होतारꣳहोता व्याचष्टे स्तुतमेव तदनुशꣳसति नहि तत् स्तुतं यदननुशस्तम् ।। १३ ।। प्रजापतिं परिवदन्त्याप्त्वैवैनं तद्व्याचक्षते तावदापामैनमिति ।। १४ ।। गृहपति–रौदुम्बरीं धारयति गृहपतिर्व्वा ऊर्ज्जो यन्तोर्जमेवैभ्यो यच्छति ।। १५ ।। वाचं यच्छन्ति ।। १६ ।। दुग्धानीव वै तर्हि छन्दाँसि यातया–मान्यन्तगतानि तान्येव तद्रसेनाप्याययन्ति ।। १७ ।। अथो श्वस्तनमेवाभिसन्तन्वन्ति ।। १८ ।। आत्मदक्षिणं वा एतद्यत्सत्रम् ।। १९ ।। यदा वै पुरुष आत्मनोऽवद्यति यं कामं कामयते तमभ्यश्नुते ।। २० ।। द्वाभ्यां लोमावद्यति द्वाभ्यां त्वचं द्वाभ्यां माँसं द्वाभ्यामस्थि द्वाभ्यां मज्जानं द्वाभ्यां पीवश्च लोहितञ्च ।। २१ ।। शिखा अनु प्रवपन्ते पाप्मानमेव तदपघ्नते लघीयाꣳसः स्वर्गꣳलोकमयामेति ।। २२ ।। अथो गवामेवानुरूपा भवन्ति सर्वस्यान्नाद्यस्यावरुध्यै ।। २३ ।।

दशमः खण्डः

प्रजापतिः प्रजा असृजत सोऽरिच्यत सोऽपद्यत तं देवा अभिसमगच्छन्त तेऽब्रुवन्महदस्मै व्रतꣳसंभराम यदिमन्धिनवदिति तस्मै यत्संवत्सरमन्नं पच्यते तत्समभरꣳस्तदस्मै प्रायछꣳस्तदव्रजयत्तदेन मधिनोन्महन्मर्य्या व्रतं यदिममधिन्वीदिति तन्महाव्रतस्य महाव्रत–त्वम् ।। १ ।।

प्रजापतिर्वाव महाँस्तस्यैतद्व्रतमन्नमेव ।। २।। तदाहुर्मध्यतः संवत्सरस्योपेत्यं मध्यतो वा अन्नं जग्धं धिनोति ।। ३।। तदाहुर्यन्-मध्यत उपयन्त्यर्द्धमन्नाद्यस्याप्नुवन्त्यर्द्धं संवट्कुर्वन्तीत्युपरिष्टादेव संवत्सरस्योपेत्यँसंवत्सरे वा अन्नँसर्वं पच्यते ।।४।। चतुर्विँशं भवति चतुर्विँशो वै संवत्सरोऽन्नं पञ्चविँशम् ।। ५।। यद्वा अदश्च-तुर्विँशं प्रायणीयन्तदेतदुदयनीयम् ।। ६।। यत् संवत्सरमन्नँसंभरन्ति सैषा पञ्चविँश्युपजायते ।।७।।

।। इति चतुर्थोऽध्यायः।।



पञ्चमोऽध्यायः

प्रथमः खण्डः

वामदेव्यं महाव्रतं कार्य्यम् ।।१।। त्रिवृच्छिरो भवति ।।२।। त्रिवृद्ध्येव शिरोलोमत्वगस्थि ।।३।। पाङ्क्त इतर आत्मा लोम त्वङ्माँसमस्थि मज्जा ।।४।। सकृद्धिङ्कृतेन शिरसा पराचा स्तुवते ।।५।। तस्माच्छिरोऽङ्गानि मेद्यन्ति नानुमेद्यति न कृश्यन्त्यनु–कृश्यति ।।६।। पुनरभ्यावर्त्तमितरेणात्मना स्तुवते तस्मादितर आत्मा मेद्यति च कृश्यति च ।।७।। अर्कवतीषु गायत्रीषु शिरो भवति ।।८।। अन्नं वा अर्को ब्रह्मवर्चसं गायत्र्यन्नाद्यं चैवैभ्यो ब्रह्मवर्चसञ्च मुखतो दधाति ।।९।। पञ्चदशसप्तदशौ पक्षौ भवतः पक्षाभ्यां वै यजमानो वयो भूत्वा स्वर्गं लोकमेति ।।१०।। तावाहुः समौ कार्य्यौ पञ्चदशौ वा सप्तदशौ वा सवीवधत्वाय ।।११।। तद्वाहुर्य्यत्समौ भवत एकवीर्य्यौ तर्हि भवत इति पञ्चदशसप्तदशावेव कार्य्यौ साचीव वै वयः पक्षौ कृत्वा पतीयः पतति ।।१२।। दक्षिणतो बृहत्कार्य्यं दक्षिणोवा अर्द्ध आत्मनो वीर्य्यवत्तरः ।।१३।। अथो खल्वाहुरुत्तरत एव कार्य्यं ब्राह्मणाच्छꣳसिनोऽर्द्धात् त्रैष्टुभं वै बृहत्त्रैष्टुभो ब्राह्मणाच्छꣳसी त्रैष्टुभः पञ्चदशस्तोमः ।।१४।। दक्षिणतो रथन्तरं कार्य्यम्मैत्रावरुणस्यार्द्धाद्गायत्रं वै रथन्तरं गायत्री मैत्रावरुणो गायत्रः सप्तदशस्तोमः ।।१५।। एकविꣳशं पुच्छं भवति ।।१६।। एकविꣳशो वै स्तोमानां प्रतिष्ठा तस्माद्वयः पुच्छेन प्रतिष्ठायोत्पतति पुच्छेन प्रतिष्ठाय निषीदति ।।१७।। यज्ञायज्ञीयं पुच्छं कार्य्यं यज्ञायज्ञीयꣳह्येव महाव्रतस्य पुच्छम् ।।१८।। अथो खल्वाहुरतिशयं वै द्विपदां यज्ञायज्ञीयं भद्रमेव कार्य्यꣳसमृद्ध्यै ।।१९।।

द्वितीयः खण्डः

वामदेव्यम्महाव्रतं कार्य्यन्तस्य गायत्रꣳशिरोबृहद्रथन्तरे पक्षौ यज्ञायज्ञीयं पुच्छम् ।।१।। यो वै महाव्रते सहस्रं प्रोतं वेद प्र सहस्रं पशूनाप्नोति ।।२।। तस्य प्राची दिक् शिरस्तच्छन्दोभिः साहस्रमसावन्यतरः पक्षः सनक्षत्रैः साहस्रोऽयमन्यतरः पक्षः स ओषधिभिश्च वनस्पतिभिश्च साहस्रोऽन्तरिक्षमात्मा तद्वयोभिः साहस्रं प्रतीची दिक् पुच्छन्तदग्निभिश्च रश्मिभिश्च साहस्रं प्र सहस्रं पशूनाप्नोति य एवं वेद ।।३।। तदाहुरपृष्ठं वै वामदेव्यमनिधनꣳहीति ।।४।। अनायतनं वा एतत् साम यदनिधनम् ।।५।। राजनम्महाव्रतं कार्य्यम् ।।६।। एतद्वै साक्षादन्नं यद्राजनं पञ्चविधं भवति पाङ्क्तꣳह्यन्नम् ।।७।। हिङ्कारवद्भवति तेन वामदेव्यस्य रूपम् ।।८।। निधनवद्भवति तेन पृष्ठस्य रूपम् ।।९।। अतिछन्दःसु पञ्चनिधनं वामदेव्यं ब्रह्मसाम कार्य्यम् ।।१०।। अति वा एषाऽन्यानि छन्दाँसि यदतिछन्दा अत्येतदन्यान्यहान्यहर्य्यन्महाव्रतम् ।।११।। ब्रह्मसाम्नैव तदन्यान्यहान्यतिमेदयति ।।१२।। पञ्चनिधनं भवति पाङ्क्तꣳ–ह्यन्नम् ।।१३।।

तृतीयः खण्डः

इलान्दमग्निष्टोम साम कार्य्यम् ।।१।। एतद्वै साक्षादन्नं यदिलान्दमिरान्नं वा एतदिरायामेवान्नाद्येऽन्ततः प्रतितिष्ठन्ति ।।२।। समुद्रो वा एतच्छन्दः सलिलं लोमशꣳसमुद्रइव खलु वै स भवति सलिल इव लोमश इव यो भवति ।।३।। तस्मादेतासु कार्य्यं समृद्ध्यै ।।४।। व्रतमिति निधनं भवति महाव्रतस्यैव तद्रूपं क्रियते स्वरिति भवति स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै शकुन इति भवति शकुन इव वै यजमानो वयो भूत्वा स्वर्गꣳल्लोकमेति ।।५।।

यज्ञायज्ञीयमग्निष्टोमसाम कार्य्यम् ।।६।। यद्वा अन्या वाङ्नाति वदेत्तदग्निष्टोम साम कार्यन्न वै वाग्वाचमिति वदति वाग्यज्ञायज्ञीयं वाच्येवान्ततः प्रतितिष्ठन्ति ।।७।। वारवन्तीयमग्निष्टोमसाम कार्यम् ।।८।। अग्निर्वा इदं वैश्वानरो दहन्नैत्तस्माद्देवा अविभयुस्तं वरणशाखयाऽवारयन्त यदवारयन्त तस्माद्वारवन्तीयम् ।।९।। तस्माद्वरणोभिषज्य एतेन हि देवा आत्मानमत्रायन्त ।।१०।। तस्माद्ब्राह्मणो वारणेन न पिबेद् वैश्वानरन्नेच्छमया इति ।।११।। पशवो वै वारवन्तीयꣳशान्तिः पशवः शान्तादेव तत्संवत्सरा–दुत्तिष्ठन्ति ।।१२।।

चतुर्थः खण्डः

प्राणेन पुरस्तादाहवनीयमुपतिष्ठन्ते प्राणमेव तज्जयन्ति ।।१।। अपानेन पश्चात्पुच्छमुपतिष्ठन्ते अपानमेव तज्जयन्ति ।। २।। व्रत–पक्षाभ्यां पक्षावुपतिष्ठन्ते दिश एव तज्जयन्ति ।। ३।। प्रजापते–र्हृदयेनापिकक्षमुपतिष्ठन्ते ज्यैष्ठ्यमेव तज्जयन्ति ।।४।। वसिष्ठस्य निहवेन चात्वालमुपतिष्ठन्ते स्वर्गमेव तल्लोकमाप्त्वा श्रियं वदन्ते ।।५।। वैश्वदेव्यामृचि भवति विश्वरूपं वै पशूनाꣳरूपं पशूनेव तज्जयन्ति ।।६।। सत्रस्यर्द्ध्याग्नीध्रमुपतिष्ठन्त ऋद्धावेव प्रतितिष्ठन्ति ।।७।। चतुरक्षरणिधनं भवति चतुष्पादाः पशवः पशुष्वेव प्रतितिष्ठन्ति ।।८।। आतमितोर्निधनमुपयन्त्यायुरेव सर्वमाप्नुवन्ति ।।९।। श्लोकानुश्लोकाभ्यां हविर्द्धाने उपतिष्ठन्ते कीर्त्तिमेव तज्जयन्ति ।।१०।। यामेन मार्ज्जालीयमुपतिष्ठन्ते पितृलोकमेव तज्जयन्ति ।।११।। आयुर्नवस्तोभाभ्याꣳसद उपतिष्ठन्ते ब्रह्म चैव तत् क्षत्रञ्च जयन्ति ।।१२।। ऋश्यस्य साम्ना गार्हपत्यमुपतिष्ठन्ते ।।१३।।

इद्रंꣳसर्वाणि भूतान्यस्तुवꣳस्तस्यशर्य एकमङ्गमस्तुतमचायत्तद-स्यैतेनास्तौत्तेनास्य प्रियं धामोपागच्छत्प्रियमेवास्यैतेन धामोप-गच्छन्ति ।।१४।। यत् परोक्षं निधनमुपेयुर्ह्वीतमुखं प्रतिमुञ्चेरन् प्रत्यक्षमुपयन्ति ह्वीतमुखमेवापजयन्ति ।।१५।।

पञ्चमः खण्डः

आसन्दीमारुह्योद्गायति देवसाक्ष्य एव तदुपरिषद्यं जयति ।।१।। औदुम्बरी भवत्यूर्गुदुम्बर ऊर्ज्जमेवावरुन्धे ।।२।। प्रादेशमात्री भवत्यस्य लोकस्यानुद्धानाय ।।३।। छन्दोभिरारोहति स्वर्गमेव तल्लोकमारोहति ।।४।। छन्दोभिरुपावरोहत्यस्मिँल्लोके प्रति-तिष्ठति ।।५।। सर्वेणात्मना समुद्धृत्योद्गेयमेषु लोकेषु नेह्याहितोऽसानीति ।।६।। एकस्याꣳस्तोत्रीयायामस्तुतायां पादावुपावहरति ।।७।। सह निधनेन प्रतिष्ठामुपयन्त्येष्वेव लोकेषु प्रतितिष्ठन्ति ।।८।। प्रेङ्खमारुह्य होता शꣳसति महस एव तद्रूपं क्रियते ।।९।। यदा वै प्रजा मह आविशति प्रेङ्खास्तर्ह्यारोहन्ति ।।१०।। फलकमारुह्याध्वर्युः प्रतिगृणाति ।।११।। कूर्च्चानितरेऽध्यासत ऊर्ध्वा एव तदुत्क्रामन्तो यन्ति ।।१२।। अभिगरापगरौ भवतो निन्दत्येनानन्यः प्रान्यः शꣳसति य एनान्निन्दति पाप्मानमेषाꣳसोऽपहन्ति यः प्रशꣳसति यदेवैषां सुष्टुतꣳसुशस्तं तत् सोऽभिगृणाति ।।१३।। शूद्रार्य्यौ चर्म्मणि व्यायच्छेते तयोरार्य्यं वर्णमुपज्जायन्ति ।।१४।। देवाश्च वा असुराश्चादित्ये व्यायच्छन्तस्तान्देवा अभ्यजयꣳस्ततो देवा अभवन्। परासुरा अभवन्नात्मना परास्य भ्रातृव्यो भवति य एवं वेद ।।१५।। यदार्य्यं वर्णमुज्जापयन्त्यात्मानमेव तदुज्जा-पयन्ति ।।१६।। परिमण्डलञ्चर्म भवत्यादित्यस्यैव तद्रूपं क्रियते ।।१७।।

सर्वासु स्रक्तिषु दुन्दुभयो वदन्ति या वनस्पतिषु वाक्तामेव तज्जयन्ति ।।१८।। भूमिदुन्दुभिर्भवति या पृथिव्यां वाक्तामेव तज्जयन्ति ।।१९।। सर्वा वाचो वदन्ति येषु लोकेषु वाक्तामेव तज्जयन्ति ।।२०।। सन्नद्धाः कवचिनः परियन्तीन्द्रियस्यैव तद्रूपं क्रियतेऽथो महाव्रतमेव महयन्ति ।।२१।।

षष्ठः खण्डः

सर्वे सहर्त्विजो महाव्रतेन स्तुवीरन् ।।१।। अध्वर्युः शिरसोद्गायेन्मैत्रावरुणो दक्षिणेन पक्षेण ब्राह्मणाच्छंस्युत्तरेण गृहपतिः पुच्छेनोद्गातात्मना ।।२।। तद्यद्येवं कुर्य्युरेकैकया स्तोत्रीययाऽस्तुत-योद्गातारमभिसमेयुः ।।३।। तिसृभिरुद्गाताऽऽत्मन उद्गीयाथ या शिरसः स्तोत्रीया तां दध्यादपराभिस्तिसृभिरुद्गीयाथ या दक्षिणस्य पक्षस्य स्तोत्रीया तान्दध्यादपराभिस्तिसृभिरुद्गीयाथ योत्तरस्य पक्षस्य स्तोत्रीया तान्दध्यात्तिसृभिर्वैकया वा स्तुतंस्यादथ या पुच्छस्य स्तोत्रीया तान्दध्यात् ।।४।। आत्मन्येव तदङ्गानि प्रतिदधति स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै ।।५।। अथो खल्वाहुः कथमध्वर्य्युर्बह्वृचः साम गायेदित्युद्गातैव सर्वेणोद्गायेत्तदेव समृद्धंसमृद्धावेव प्रति-तिष्ठन्ति ।।६।। हविर्द्धाने शिरसा स्तुत्वा संरब्धाः प्रत्यञ्च एयुस्ते दक्षिणेन धिष्ण्यान् परीत्य पश्चान्मैत्रावरुणस्य धिष्ण्यस्योपविश्य रथन्तरेण पञ्चदशेन स्तुवीरंस्त उदञ्चः संसर्पेयुर्जघनेन होतुर्धिष्ण्यं पश्चाद्ब्राह्मणाच्छंसिनो धिष्ण्यस्योपविश्य बृहता सप्तदशेन स्तुवीरंस्ते येनैव प्रसर्पेयुस्तेन पुनर्निः सृप्योत्तरेणाग्नीध्रं परीत्य पश्चाद्गार्हपत्यस्योपविश्य पुच्छेनैकविंशेन स्तुवीरंस्ते येनैव निःसर्पेयुस्ते पुनः प्रसृप्य यथायतनमुपविश्यासन्दीमारुह्योद्गा-तात्मनोद्गायति ।।७।।

तं पत्न्योऽपघाटिलाभिरुपगायन्त्यार्त्विज्यमेव तत्पत्न्यः कुर्वन्ति सह स्वर्गँल्लोक मयामेति ।।८।। कुले कुलेऽन्नं क्रियते तद्यत्पृच्छेयुः किमिदं कुर्वन्तीतीमे यजमाना अन्नमत्स्यन्तीति ब्रूयुः ।।९।। यो वै दीक्षितानां पापं कीर्त्तयति तृतीयमेषाꣳस पाप्मनोहरत्यन्नादस्तृतीयं पिपीलिकास्तृतीयम् ।।१०।। परिमाद्भिश्चरन्ति त्वक्च वा एतल्लोम च महाव्रतस्य यत् परिमादस्त्वचञ्चैव तल्लोम च महाव्रतस्याप्त्वा–वरुन्धते ।।११।। वाणं वितन्वन्त्यन्तो वै वाणोऽन्तो महाव्रतमन्तेनैव तदन्तमभिवादयन्ति ।।१२।। शततन्त्रीको भवति शतायुर्व्वै पुरुषः शतवीर्य्यः ।।१३।। तमुल्लिखेत्प्राणाय त्वाऽपानाय त्वा व्यानाय त्वेति प्राणापानव्यानानेव तदाप्त्वाऽवरुन्धते ।।१४।। परिकुम्भिन्यो मार्ज्जालीयं 'यन्तीदं मध्विदम्मध्वि'ति सघोषा एव तद्वयो भूत्वा सह स्वर्गꣳल्लोकं यन्ति ।।१५।।

सप्तमः खण्डः

देवा वै वाचं व्यभजन्त तस्या यो रसोऽत्यरिच्यत तद्गौरीवितमभवदनुष्टुभमनु परिप्लवते वागनुष्टुब्वाचो रसो–गौरीवितम् ।।१।। यद्गौरीवितेनान्वहꣳस्तुवते वाच्येव तद्वाचा रसन्दधति ।।२।। रसवद्वाचा वदति य एवं वेदेति ।।३।। द्व्युदासम्भवति स्वर्गस्य वा एतौ लोकस्यावसानदेशौ पूर्वेणैव पूर्वमहः सँस्थापयन्त्युत्तरेणोत्तरमहरभ्यति वदन्ति ।।४।। एतद्वै यज्ञस्य श्वस्तनं यद्गौरीवितं यद्गौरीवितमनुसृजेयुरश्वस्तना अप्रजसः स्युः ।।५।। सं वा अन्यो यज्ञस्तिष्ठत इत्याहुर्व्वागेव न सन्तिष्ठत इति यद्गौरीवितमन्वहं भवति वाचमेव तत्पुनः प्रयुञ्जते ।।६।। स्वर्णिर्ण–धनसन्वहं भवति ।।७।।

देवक्षेत्रं वा एतेऽभ्यारोहन्ति ये स्वर्णिधनमुपयन्ति स उ वै सत्रिणः सत्रमुपनयेदित्याहुर्य्य एनान्देवक्षेत्रमभ्यारोहयेदिति न वै देवक्षेत्र आसीन आर्त्तिमार्च्छति यत् स्वर्णिधनमन्वहं भवति नैव काञ्चनार्त्तिमार्च्छन्ति ॥८॥ च्यवन्ते वा एतेऽस्माल्लोकादित्याहुर्ये स्वर्णिधनमुपयन्तीति यद्वा स्वरूपं यन्त्यस्मिँल्लोके प्रतितिष्ठन्ति यदेकारोऽन्तरिक्षे यत्साम्ना मुष्मिन्त्सर्वेषु लोकेषु प्रति तिष्ठन्ति स्वर्णिधनेन तुष्टुवानाः ॥९॥ सुज्ञानं भवति ॥१०॥ देवा वै स्वर्गंल्लोकं यन्तोऽज्ञानादविभयुस्त एतत् सुज्ञानमपश्यंस्ते ज्ञात्रमगच्छन्यत् सुज्ञानमन्वहं भवति ज्ञात्रमेव गच्छन्ति ॥११॥

अष्टमः खण्डः

ये वै वाचमन्नमादयन्त्यन्नादा भवन्ति ये वितर्षयन्ति रूक्षा भवन्ति ॥१॥ गौरीवितंश्यावाश्वन्निहव एतानि वै सामानि वाचोऽन्नमेतेषां वागन्नं यदेतानि न च्यवन्ते वाचमेव तदन्नमादयन्ति तेन सर्व्वेऽन्नादा भवन्ति ॥२॥ अभिक्रान्तापक्रान्तानि भवन्त्यभि–क्रान्तापक्रान्तं वै वाचो रूपम् ॥३॥ प्लवोऽन्वहं भवति ॥४॥ समुद्रं वा एते प्रस्नान्ति ये संवत्सरमुपयन्ति यो वा अप्लवः समुद्रं प्रस्नाति न स तत उदेति यत्प्लवो भवति स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै ॥५॥ अति विश्वानि दुरिता तरेमेति यदेवैषां दुष्टुतं दुःशस्तं तदेतेन तरन्ति ॥६॥ ओकोनिधनंषडहमुखे भवति ॥७॥ परां वा एते परावतं गच्छन्ति ये षडहस्यान्तं गच्छन्ति यदोकोनिधनंषडहमुखे भवति प्रज्ञात्यै ॥८॥ यदा वै पुरुषः स्वमोक आगच्छति सर्वं तर्हि प्रजानाति सर्वमस्मै दिवा भवति ॥९॥

नवमः खण्डः

एकाष्टकायां दीक्षेरन् ।।१।। एषा वै संवत्सरस्य पत्नी यदेकाष्टकैतस्यां वा गतां रात्रिं वसति साक्षादेव तत् संवत्सरमारभ्य दीक्षन्ते ।।२।। तस्य सानिर्य्या यदपोऽनभिनन्दन्तोऽभ्यवयन्ति ।।३।। विच्छिन्नं वा एते संवत्सरस्याभिदीक्षन्ते य एकाष्टकायां दीक्षन्तेऽन्तनामानावृतू भवतः ।।४।। आर्त्तं वा एते संवत्सर–स्याभिदीक्षन्ते येऽन्तनामानावृतू अभिदीक्षन्ते ।।५।। तस्मादे–काष्टकायान्नं दीक्ष्यम् ।।६।। फाल्गुने दीक्षेरन् ।।७।। मुखं वा एतत्संवत्सरस्य यत् फाल्गुनो मुखत एव तत्संवत्सरमारभ्य दीक्षन्ते ।।८।। तस्य सानिर्य्या यत्सम्मेधे विषुवान् सम्पद्यते ।।९।। चित्रापूर्णमासे दीक्षेरन् ।।१०।। चक्षुर्वा एतत्संवत्सरस्य यच्चित्रापूर्णमासो मुखतो वै चक्षुर्मुखत एव तत्संवत्सरमारभ्य दीक्षन्ते तस्य न निर्य्यास्ति ।।११।। चतुरहे पुरस्तात् पौर्णमास्या दीक्षेरन् ।।१२।। तेषामेकाष्टकायां क्रयः सम्पद्यते तेनैकाष्टकान्न संवट् कुर्वन्ति ।।१३।। तेषां पूर्वपक्षे सुत्या सम्पद्यते पूर्वपक्षे मासाः सन्तिष्ठमाना यन्ति पूर्वपक्ष उत्तिष्ठन्ति तानुत्तिष्ठतः पशव ओषधयोऽनूत्तिष्ठन्ति तान्कल्याणी वागभिवदत्यरात्सुरिमे सत्रिण इति ते राध्नुवन्ति ।।१४।।

दशमः खण्डः

आ वा एते संवत्सरं प्याययन्ति य उत्सृजन्ति ।।१।। यथा वै दृतिराध्मात एवꣳसंवत्सरोऽनुत्सृष्टोयन्नोत्सृजेयुरमेहेन प्रमायुकाः स्युः ।।२।। प्राणो वै संवत्सर उदाना मासा यदुत्सृजन्ति प्राण एवोदानान्दधति यो दीक्षितः प्रमीयते या संवत्सरस्यानुत्सृष्टस्य शुक्ला तमृच्छति ।।३।।

तदाहरुत्सृज्या ३ न्नोत्सृज्या ३ मिति ॥४॥ यद्युत्सृजेयु–रुक्थान्युत्सृजेयुस्तदेवोत्सृष्टं तदनुत्सृष्टम् ॥५॥ अथो खल्वाहुरेकत्रिकं कार्य्यन्तदेव साक्षादुत्सृष्टमभ्युत्षुण्वन्ति ॥६॥ छिद्रो वा एतेषां संवत्सर इत्याहुर्य्ये स्तोममुत्सृजन्तीति ॥७॥ पशुमालभन्ते स्तोममेव तदालभन्ते स्तोमो हि पशुः ॥८॥ श्व उत्सृष्टाः स्म इति वत्सानपा कुर्वन्ति प्रातः पशुमालभन्ते तस्य वपया प्रचरन्ति ततस्सवनीयेनाष्टाकपालेन तत आग्नेयेनाष्टाकपालेन ततोदध्नैन्द्रेण ततश्चरुणा वैश्वदेवेन तत्प्रातः सवनं सन्तिष्ठते ॥९॥ ततः पशुपुरोडाशेनैकादशकपालेन ततः सवनीयेनैकादशकपालेन ततो मरुत्वतीयेनैकादशकपालेन ततश्चरुणैन्द्रेण तन्माध्यन्दिनꣳसवनं सन्तिष्ठते ॥१०॥ पशुना प्रचरन्ति ततः सवनीयेन द्वादशकपालेन ततो वैश्वदेवेन द्वादशकपालेन ततश्चरुणाऽऽग्निमारुतेन तत्तृतीयसवनꣳ–सन्तिष्ठते ॥११॥ पृषदाज्येन प्रचर्य्य पत्नीस्संयाजयन्ति ॥१२॥

॥ इति पञ्चमोऽध्यायः॥



षष्ठोऽध्यायः

प्रथमः खण्डः

प्रजापतिरकामयत बहु स्यां प्रजायेयेति स एतमग्निष्टो-ममपश्यत्तमाहरत्तेनेमाः प्रजा असृजत् ।।१।। एकादशेन च वै सता स्तोत्रेणाग्निष्टोमस्यासृजतैकादशेन च मासा संवत्सरस्य ता द्वादशेन च स्तोत्रेणाग्निष्टोमस्य पर्य्यगृह्णात् द्वादशेन च मासा संवत्सरस्य ।।२।। तस्मात्प्रजा दशमासो गर्भं भृत्वैकादशमनु प्रजायन्ते तस्माद्द्वादशन्नाभ्यतिहरन्ति द्वादशेन हि परिगृहीतास्तद्य एवं वेद परिजाताः प्रजा गृह्णाति प्रजाता जनयन्ति ।।३।। तासां परिगृहीतानामश्वतर्य्यत्पक्रामत्तस्या अनुहाय रेत आदत्त तद्वडवा-यान्न्यमाड्यस्माद्वडवाद्विरेतास्तस्मादश्वतर्य्य प्रजा आत्तरेता हि ।।४।। तस्माद्वदक्षिणीयाति हि सा यज्ञमरिच्यतातिरिक्तस्य दक्षिणा स्यात्सलोमत्वाय षोडशिनः स्तोत्रे देयाऽतिरिक्तो वै षोडश्यतिरिक्त एवातिरिक्तां ददाति ।।५।। सोऽकामयत यज्ञंःसृजेयेति स मुखत एव त्रिवृतमसृजत तं गायत्रीच्छन्दोऽन्वसृज्यताग्निर्द्देवता ब्राह्मणो मनुष्यो वसन्त ऋतुस्तस्मात्त्रिवृत् स्तोमानां मुखं गायत्री छन्दसामग्निर्देवतानां ब्राह्मणो मनुष्याणां वसन्त ऋतूनां तस्माद्ब्राह्मणो मुखेन वीर्य्यङ्करोति मुखतो हि सृष्टः ।।६।। करोति मुखेन वीर्य्यं य एवं वेद ।।७।। स उरस्त एव बाहुभ्यां पञ्चदशमसृजत तं त्रिष्टुप्छन्दोऽन्वसृज्यतेन्द्रो देवता राजन्यो मनुष्यो ग्रीष्म ऋतुस्तस्माद्राजन्यस्य पञ्चदश स्तोमस्त्रिष्टुप्छन्द इन्द्रोदेवता ग्रीष्म ऋतुस्तस्मादु बाहुवीर्य्यो बाहुभ्याःहि सृष्टः ।।८।।

करोति बाहुभ्यां वीर्य्यं य एवं वेद ॥९॥ स मध्यत एव प्रजननात्सप्तदशमसृजत तञ्जगतीच्छन्दोऽन्वसृज्यत विश्वे देवा देवता वैश्योमनुष्यो वर्षा ऋतुस्तस्माद्वैश्योऽद्यमानो न क्षीयते प्रजननाद्धि सृष्टस्तस्मादु बहु पशुर्वैश्वदेवो हि जागतो वर्षा ह्यस्यर्त्तुस्तस्माद्–ब्राह्मणस्य च राजन्यस्य चाद्योऽधरो हि सृष्टः ॥१०॥ स पत्त एव प्रतिष्ठाया एकविंशमसृजत तमनुष्टुप्छन्दोऽन्वसृज्यत न काचन देवता शूद्रो मनुष्यस्तस्माच्छूद्र उत बहुपशुरयज्ञियो विदेवो हि न हि तं काचन देवताऽन्वसृज्यत तस्मात्पादावनेज्यन्नाति वर्द्धते पत्तो हि सृष्टस्तस्मादेकविंशस्तोमानां प्रतिष्ठा प्रतिष्ठाया हि सृष्टस्तस्मादनुष्टुभं छन्दांसि नानु व्यूहन्ति ॥११॥ पापवसीयसो विधृत्यै ॥१२॥ विधृतिः पापवसीयसो भवति य एवं वेद ॥१३॥

द्वितीयः खण्डः

यो वै स्तोमानुपदेशनवतो वेदोपदेशनवान् भवति ॥१॥ प्राणो वै त्रिवृदर्द्धमासः पञ्चदशः संवत्सरः सप्तदश आदित्य एकविंश एते वै स्तोमा उपदेशनवन्त उपदेशनवान् भवति य एवं वेद ॥२॥ इमे वै लोकास्त्रिणवस्त्रिणवस्य वै ब्राह्मणेनेमे लोकास्त्रिष्पुनर्न्नवा भवन्ति ॥३॥ एषु लोकेषु प्रतितिष्ठति य एवं वेद ॥४॥ देवता वाव त्रयस्त्रिंशोऽष्टौ वसव एकादश रुद्रा द्वादशादित्याः प्रजापतिश्च वषट्कारश्च त्रयस्त्रिंशौ ॥५॥ स देवेन यज्ञेन यजते य एवं वेद ॥६॥ यो वा अधिपतिं वेदाधिपतिर्भवति त्रयस्त्रिंशो वै स्तोमानामधिपतिः पुरुषः पशूनाम् ॥७॥ तस्मात्यञ्चोऽन्ये पशवोऽदन्त्यूर्ध्वः पुरुषोऽधिपतिर्हि सः ॥८॥ अधिपतिः समानानां भवति य एवं वेद ॥९॥

तृतीयः खण्डः

एष वाव यज्ञो यदग्निष्टोमः ॥१॥ एकस्मा अन्यो यज्ञः कामायाह्रियते सर्व्वेभ्योऽग्निष्टोमः ॥ २॥ द्वादशस्तोत्राण्यग्निष्टोमो द्वादशमासाः संवत्सरः संवत्सरं पशवोऽनु प्रजायन्ते तेन पशव्यः समृद्धः ॥ ३॥ द्वादश स्तोत्राणि द्वादश शस्त्राणि तच्चतुर्विंश्शतिश्चतुर्विंश्शतिरर्द्धमासाः संवत्सरः संवत्सरं पशवोऽनु प्रजायन्ते तेन पशव्यः समृद्धः ॥४॥ अग्नौ स्तोत्रमग्नौ शस्त्रं प्रतितिष्ठति तेन ब्रह्मवर्च्चस्यः ॥५॥ किं ज्योतिष्टोमस्य ज्योतिष्टोमत्वमित्याहुर्विराजश्संस्तुतः सम्पद्यते विराड्वै छन्दसां ज्योतिः ॥६॥ ज्योतिः समानानां भवति य एवं वेद ॥७॥ ज्येष्ठयज्ञो वा एष यदग्निष्टोमः ॥८॥ प्रजापतिः प्रजा असृजत ता अस्मै श्रैष्ठ्याय नातिष्ठन्त स एतमग्निष्टोममपश्यत्तमाहरत्ततोऽस्मै प्रजाः श्रैष्ठ्यायातिष्ठन्त ॥ ९॥ तिष्ठन्तेऽस्मै समानाः श्रैष्ठ्याय य एवं वेद ॥१०॥ यत्त्वित्याहुर्गायत्रं प्रातःसवनं त्रैष्टुभं माध्यन्दिनश्— सवनञ्जागतं तृतीयसवनं क्व तर्हि तुरीयं छन्दोऽनुष्टुबिति ॥११॥ छन्दसां वा अन्ववलुप्तिं यजमानोऽन्ववलुप्यते ॥१२॥ अष्टाक्षरा गायत्री हिङ्कारो नवम एकादशाक्षरा त्रिष्टुब्द्वादशाक्षरा जगती छन्दोभिरेवानुष्टुभमाप्नोति यजमानस्यानवलोपाय ॥१३॥ यो वा अनुष्टुभश्सर्वत्रापिँ सवनान्यन्वायत्तां वेद सर्व्वत्रास्यापि भवत्येषा वा अनुष्टुप् सर्व्वत्रापिः सवनान्यन्वायत्ता तद्य एवं वेद सर्व्वत्रास्यापि भवति ॥१४॥ यद्वै राजानोऽध्वानं धावयन्ति येऽश्वानां वीर्य्यवत्तमास्तान्युञ्जते त्रिवृत्पञ्चदशः सप्तदश एकविँश एते वै स्तोमानां वीर्य्यवत्तमास्तानेवयुङ्क्ते स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै ॥१५॥ चतुष्टोमो भवति प्रतिष्ठा वै चतुष्टोमः प्रतिष्ठित्यै ॥१६॥

चतुर्थः खण्डः

प्रजापतिर्देवेभ्य ऊर्ज्जं व्यभजत्तत उदुम्बरः समभवत्प्राजापत्यो वा उदुम्बरः प्राजापत्य उद्गाता यदुद्गातौदुम्बरीं प्रथमेन कर्म्मणान्वारभते स्वयैव तद्देवतयात्मानमार्त्विज्याय वृणीते ॥१॥ तामुच्छ्रयति 'द्युतानस्त्वा मारुत उच्छ्रयतूद्दिवꣳस्तभानान्तरिक्षं पृण दृꣳह पृथिवीम्' ॥२॥ तामन्वारभत 'आयोष्ट्वा सदने सादयाम्यव–तश्छायायाꣳसमुद्रस्य हृदय' इति ॥३॥ यज्ञो वा आयुस्तस्य तत्सदनं क्रियते ॥४॥ यज्ञो वा अवति तस्य सा च्छावा क्रियते ॥५॥ मध्यतो वा आत्मनो हृदयन्तस्मान्मध्ये सदस औदुम्बरी मीयते ॥६॥ 'नमः समुद्राय नमः समुद्रस्य चक्षुस' इत्याह वाग्वै समुद्रो मनः समुद्रस्य चक्षुस्ताभ्यामेव तन्नमस्करोति ॥७॥ 'मामा यूनर्व्वाहासीदि'त्याह साम वै यूनर्व्वा साम्न एव तन्नमस्करोत्यार्त्विज्यं करिष्यन् ॥८॥ यो वा एवं साम्ने नमस्कृत्य साम्नार्त्विज्यं करोति न साम्नो हीयते नैनं सामापहते ॥९॥ य एनमनुव्याहरति स आर्तिमार्च्छति ॥१०॥ 'ऊर्ग्गस्यूर्जोदा ऊर्ज्जं मे देह्यूर्ज्जं मे धेह्यन्नं मे देह्यन्नं मे धेहि' प्रजापतेर्व्वा एतदुदरं यत्सद ऊर्गुदुम्बरो यदौदुम्बरी मध्ये सदसोमीयते मध्यत एव तत्प्रजाभ्योऽन्नमूर्जन्दधाति ॥११॥ तस्माद्यत्रैषा यातयामा क्रियते तत् प्रजा अशनायवो भवन्ति ॥१२॥ साम देवानामन्नꣳसामन्येव तद्देवेभ्योऽन्न ऊर्ज्जन्दधाति स एव तदूर्ज्जि श्रितः प्रजाभ्य ऊर्ज्जं विभजति ॥१३॥ उदङ्ङासीन उद्गायत्युदी–चीन्तद्दिशमूर्ज्जा भाजयति प्रत्यङ्ङासीनः प्रस्तौति प्रतीचीन्तद्दिशमूर्ज्जा भाजयति दक्षिणासीनः प्रतिहरति दक्षिणान्तद्दिशमूर्ज्जा भाजयति प्राञ्चोऽन्य ऋत्विज आर्त्विज्यं कुर्वन्ति तस्मादेषा दिशां वीर्य्यवत्तमैताꣳहि भूयिष्ठाः प्रीणन्ति ॥१४॥

ब्रह्मवादिनो वदन्ति कस्मात्सत्यात्प्राञ्चोऽन्य ऋत्विज आर्त्विज्यं कुर्वन्तीति विपरिक्रभ्योद्गातार इति दिशामभीष्ट्यै दिशामभिप्रीत्या इति ब्रूयात्तस्मात्सर्व्वासु दिक्ष्वन्नं विद्यते सर्वा ह्यभीष्टाः प्रीताः ।।१५।।

पञ्चमः खण्डः

प्रजापतिरकामयत बहु स्यां प्रजायेयेति सोऽशोचत्तस्य शोचत आदित्यो मूर्ध्नोऽसृज्यत सोऽस्य मूर्द्धानमुदहन् स द्रोण कलशोऽभवत्तस्मिन् देवाः शूक्रमगृह्णत तां वै स आयुषार्त्ति-मत्यजीवत् ।।१।। आयुषार्त्तिमतिजीवति य एवं वेद ।।२।। तं प्रोहे 'द्वानस्पत्योऽसि बार्हस्पत्योऽसि प्राजापत्योसि प्रजापतेर्मूर्द्धा-स्पत्यायुपात्रमसीदमहम्मां प्राञ्चं प्रोहामि तेजसे ब्रह्मवर्चसाये'ति ।। ३।। यदाह वानस्पत्य इति सत्येनैवैनं तत्प्रोहति ।।४।। यदाह बार्हस्पत्य इति बृहस्पतिर्वै देवानामुद्गाता तमेव तद्युनक्ति ।।५।। यदाह प्राजापत्य इति प्राजापत्यो ह्येष देवतया यद्द्रोणकलशो यदाह प्रजापतेर्मूर्द्धेति प्रजापतेर्ह्येष मूर्ध्न उदहन्यत ।।६।। यदाहा'त्यायुपात्रमि'त्यति ह्येतदन्यानि पात्राणि यत् द्रोणकलशो देवपात्रं द्रोणकलशः ।।७।। देवपात्री भवति य एवं वेद ।।८।। ब्राह्मणं पात्रे न मीमाँसेत यं ब्राह्मणमिव मन्येत प्र देवपात्रमाप्नोति न मनुष्यपात्राच्छिद्यते ।।९।। वाग्वै देवेभ्योऽपक्रामत्सापः प्राविशत्तां देवाः पुनरयाचꣳस्ता अब्रुवन्यत्पुनर्दद्याम किन्नस्ततः स्यादिति यत्कामयध्व इत्यब्रुवꣳस्ता अब्रुवन्यदेवास्मासु मनुष्या अपूतं प्रवेशयाꣳस्तेनासꣳसृष्टा असामेति ।।१०।। शुद्धा अस्मा आपः पूता भवन्ति य एवं वेद ।।११।। सा पुनर्त्तात्यक्रामत् सा वनस्पतीन् प्राविशत्तान्देवाः पुनरयाचँस्तान्न पुनरददुस्तानशपन् स्वेन वः किष्कुणा वज्रेण वृश्चानिति तस्माद्वनस्पतीन् स्वेन किष्कुणा वज्रेण वृश्चन्ति देवशप्ता हि ।।१२।।

तां वनस्पतयश्चतुर्द्धा वाचं विन्यदधुर्दुन्दुभौ वीणायामक्षे तूणवे तस्मादेष वदिष्ठैषा वल्गुतमा वाग्या वनस्पतीनां देवानाꣳह्येषा वागासीत् ॥१३॥ अधोऽधोऽक्षं द्रोणकलशं प्रोहन्ति तस्या वाचोऽवरुध्या उपर्य्युपर्य्यक्षं पवित्रं प्रयच्छन्त्युभयत एव वाचं परिगृह्णन्ति ॥१४॥ यस्य कामयेतासुर्य्यमस्य यज्ञं कुर्य्यां वाचं वृञ्जीयति द्रोणकलशं प्रोहन्बाहुभ्यामक्षमुपस्पृशेदसुर्य्यमस्य यज्ञङ्करोति वाचं वृङ्क्ते योऽस्य प्रियः स्यादनुपस्पृशन्नक्षं प्रोहेत्प्राणा वै द्रोणकलशः प्राणानेवास्य कल्पयति ॥१५॥ यन्वित्याहुर्व्वा–चान्यानृत्त्विजो वृणते कस्मादुद्गातारोऽवृता आर्त्विज्यं कुर्वन्तीति ॥१६॥ यद्द्रोणकलशमुपसीदन्ति तेनोद्गातारो वृताः ॥१७॥ प्राजापत्या वा उद्गातारः प्राजापत्यो द्रोणकलशो द्रोणकलश एवैनानार्त्विज्याय वृणीते ॥१८॥ प्राञ्च उपसीदन्ति प्राञ्चो यज्ञस्याग्रे करवामेति ॥१९॥ अनभिजिता वा एषोद्गातृणां दिग्यत्प्राची यद्द्रोणकलशं प्राञ्चं प्रोहन्ति दिशोऽभिजित्यै ॥२०॥ यन्वित्याहुरन्तराश्वः प्रासेवौ युज्यतेऽन्तरा शम्य अनड्वान्क उद्गातृणां योगइति यत्द्रोणकलशमुपसीदन्ति स एषां योगस्तस्मा–द्युक्तैरवोपसद्यन्न ह्ययुक्तो वहति ॥२१॥

षष्ठः खण्डः

ग्राव्णः सꣳसाद्य द्रोणकलशमध्यूहन्ति विड्वै ग्रावाणोऽन्नꣳसोमो राष्ट्रं द्रोणकलशो यद्ग्रावसु द्रोणकलशमध्यूहन्ति विश्येव तद्राष्ट्र–मध्यूहन्ति ॥१॥ यं द्विष्याद्विमुखान् ग्राव्णः कृत्वेदमहम–मुष्यायणममुष्याः पुत्रममुष्याविशोऽमुष्मादन्नाद्यान्निरूहामीति निरूहेद्विश एवैनमन्नाद्यन्निरूहति ॥२॥

योऽस्य प्रियः स्यात्सम्मुखान् ग्राव्णः कृत्वेदमहममुष्या-यणममुष्याः पुत्रममुष्यां विश्यमुष्मिन्नन्नाद्येऽध्यूहामीत्यध्यूहेद्विश्ये वैनमन्नाद्येऽध्यूहति ।।३।। अथो तदुभयमनाद्यत्येदमहं मां तेजसि ब्रह्मवर्च्चसेऽध्यूहामीत्यध्यूहेत्तेजस्येव ब्रह्मवर्च्चस आत्मान-मध्यूहति ।।४।। यः कामयेत विशा राष्ट्रꣳहन्यामिति व्यूह्य ग्राव्णोऽधो द्रोणकलशꣳसादयित्वोपाꣳशुसवनमुपरिष्टादभि-निदध्यादिदमहममुया विशाऽदोराष्ट्रꣳहन्मीति विशैव तद्राष्ट्रꣳहन्ति ।।५।। यो वै दैवानि पवित्राणि वेद पूतो यज्ञियो भवति छन्दाँसि वै दैवानि पवित्राणि तैर्द्रोणकलशं पावयन्ति ।।६।। वसवस्त्वा गायत्रेण छन्दसा पुनन्तु रुद्रास्त्वा त्रैष्टुभेन छन्दसा पुनन्त्वादित्यास्त्वा जागतेन छन्दसा पुनन्त्वेतानि वै दैवानि पवित्राणि पूतो यज्ञियो भवति य एवं वेद ।।७।। स्वर्भानुर्व्वा आसुर आदित्यन्तमसाविध्यत्तं देवा न व्यजानꣳस्तेऽत्रिमुपाधावꣳस्त-स्यात्रिर्भासेन तमोपाहन्यत् प्रथममपाहन् सा कृष्णाविरभवद्य-द्वितीयꣳ सा रजता यत्तृतीयꣳसा लोहिनी यया वर्णमभ्यतृणत् सा शुक्लासीत् ।।८।। तस्माच्छुक्लं पवित्रँ शुक्रः सोमः स शुक्रत्वाय ।।९।। यं द्विष्यात्तस्यै तेषां वर्णानामपि पवित्रे कुर्य्यात्पाप्मनैवैनं तमसा विध्यति कृष्णमिव हि तमोयोऽस्य प्रियः स्यादासक्तिशुक्लं कुर्य्याज्ज्योतिर्वै हिरण्यं ज्योतिरेवा-स्मिन्दधाति ।।१०।। तस्मादात्रेयं चन्द्रेणेच्छन्त्यत्रिर्हि तस्य ज्योतिः ।।११।। अभ्यतृणत्पवित्रं विगृह्णन्ति हस्तकार्य्यमेव तद्यज्ञस्य क्रियत एतद्वा उद्गातृणाँ हस्तकार्य्यं यत्पवित्रस्य विग्रहणम् ।।१२।। न हस्तवेष्यान्निर्ऋच्छति य एवं वेद ।।१३।। योऽपि न विगृह्णाति प्राणादेनमन्तर्यन्ति ।।१४।।

तं ब्रूयाद्वेपमानः प्रमेष्यस इति वेपमान एव प्रमीयते ॥१५॥ प्र शुक्रैतु देवी मनीषास्मद्रथः सुतष्टोन वाजीत्युद्गाता धारामनुमन्त्रयते ॥१६॥ आयुषे मे पवस्व वर्च्चसे मे पवस्व विदुः पृथिव्यादिवो जनित्राच्छृण्वन्त्वापोऽधः क्षरन्तीः सोमेहोद्गायेत्याह मह्यं तेजसे ब्रह्मवर्चसायेति ॥१७॥ एष वै सोमस्योद्गीथो यत्पवते सोमोद्गीतमेव साम गायति ॥१८॥ अच्छिन्नं पावयन्ति यज्ञञ्चैव प्राणाँश्च सन्तन्वन्ति सन्ततं पावयन्ति यज्ञस्य सन्तत्यै ॥१९॥

सप्तमः खण्डः

बृहस्पतिर्वै देवानामुदगायत्तꣳरक्षाँस्यजिघाꣳसन् स य एषां लोकानामधिपतयस्तान् भागधेयेनोपाधावत् ॥१॥ सूर्य्योमा दिव्याभ्योनाष्ट्राभ्यः पातु, वायुरन्तरिक्षाभ्योऽग्निः पार्थिवाभ्यः स्वाहेति जुहोति ॥२॥ एते वा एषां लोकानामधिपतयस्तान् भागधेयेनो–पासरत् ॥३॥ करोति वाचा वीर्यन्न सदस्यामार्त्तिमार्च्छति य एवं वेद ॥४॥ वाग्वै देवेभ्योऽपाक्रामत्तां देवा अन्वमन्त्रयन्त साऽब्रवीदभागास्मि भागधेयम्मेऽस्त्विवति कस्ते भागधेयं कुर्य्यादित्युद्गातार इत्यब्रवीदुद्गातारो वै वाचे भागधेयं कुर्वन्ति ॥५॥ तस्यै जुहुयाद् बेकुरानामासि जुष्टा देवेभ्यो नमो वाचे नमो वाचस्पतये देवि वाग्यत्ते वाचो मधुमत्तस्मिन् माधाः सरस्वत्यै स्वाहेति ॥६॥ वाग्वै सरस्वती तामेव तद्भागधेयेनारभते ॥७॥ यं द्विष्यात्तस्यैतामाहुतिञ्जुहुयाद्वाचं मनसा ध्यायेद्वाचमेवास्य वृङ्क्ते ॥८॥ बहिष्पवमानꣳसर्पन्ति स्वर्गमेव तल्लोकꣳसर्पन्ति ॥९॥ प्रक्वाणाइव सर्पन्ति प्रतिकूलमिव हीतः स्वर्गो लोकः त्सरन्त इव सर्पन्ति मृगधर्म्मा वै यज्ञो यज्ञस्य शान्त्या अप्रत्रासाय ॥१०॥

वाचं यच्छन्ति यज्ञमेव तद्यच्छन्ति यद्व्यववदेयुर्यज्ञं निर्ब्रूयुस्तस्मान्न व्यववद्यम् ।।११।। पञ्चर्त्विजः सँरब्धाः सर्पन्ति पाङ्क्तो यज्ञो यावान् यज्ञस्तमेव सन्तन्वन्ति ।।१२।। यदि प्रस्तोताऽवच्छिद्यते यज्ञस्य शिरश्छिद्यते ब्रह्मणे वरन्दत्वा स एव पुनर्वर्त्तव्यश्छिन्नमेव तत्प्रतिदधाति ।।१३।। यद्युद्गातावच्छिद्यते यज्ञेन यजमानो वृध्यतेऽदक्षिणः स यज्ञक्रतुः संस्थाप्योऽथान्य आहृत्यस्तस्मिन्देयं यावद्दास्यन् स्यात् ।।१४।। यदि प्रतिहर्त्ताऽवच्छिद्यते पशुभिर्यजमानो वृध्यते पशवो वै प्रतिहर्त्ता सर्ववेदसन्देयं यदि सर्ववेदसन्न ददाति सर्वज्यानिञ्जीयते ।।१५।। अध्वर्युः प्रस्तरꣳहरति ।।१६।। यजमानो वै प्रस्तरो यजमानमेव तत् स्वर्गꣳल्लोकꣳहरति ।।१७।। यज्ञो वै देवेभ्योऽश्वोभूत्वापाक्रामत्तं देवाः प्रस्तरेणारमयँस्तस्मादश्वः प्रस्तरेण सम्मृज्यमान उपावरमते यदध्वर्य्युः प्रस्तरꣳहरति यज्ञस्य शान्त्या अप्रत्रासाय ।।१८।। प्रजापतिः पशूनसृजत तेऽस्मात् सृष्टा अशनायन्तोऽपाक्रमꣳस्तेभ्यः प्रस्तरमन्नं प्रायच्छत्त एनमुपावर्त्तन्त तस्मादध्वर्य्युणा प्रस्तर ईषदिव विधूयो विधूतमिव हि तृणं पशव उपावर्त्तन्ते ।।१९।। उपैनं पशव आवर्त्तन्ते य एवं वेद ।।२०।। प्रस्तरमासद्योद्गायेद्धविषोऽस्कन्दाय ।। २१।। यजमानन्तु स्वर्गाल्लोकादवगृह्णाति ।। २२।। अष्ठीवतोपस्पृशतोद्गेयन्तेनास्य हविरस्कन्नं भवति न यजमानꣳस्वर्गाल्लोकादवगृह्णाति ।। २३।। चात्वालमवेक्ष्य बहिष्पवमानꣳस्तवन्त्यत्र वा असावादित्य आसीत्तं देवा बहिष्पवमानेन स्वर्गꣳल्लोकंमहरन्यच्चात्वालमवेक्ष्य बहिष्पव–मानꣳस्तुवन्ति यजमानेव तत् स्वर्गँल्लोकꣳहरन्ति ।। २४।।

अष्टमः खण्डः

स तु वै यज्ञेन यजेतेत्याहुर्य्यस्य विराजं यज्ञमुखे दध्युरिति ।।१।।

नवभिः स्तुवन्ति हिङ्कारो दशमो दशाक्षराविराड्विराजमेवास्य यज्ञमुखे दधति ।।२।। नवभिः स्तुवन्ति नव प्राणाः प्राणैरेवैनंस्समर्द्धयन्ति हिङ्कारो दशमस्तन्नाभिरनवतृण्णा दशमा प्राणानाम् ।।३।। नवभिः स्तुवन्ति नवाध्वर्य्युः प्रातःसवने ग्रहान् गृह्णाति तानेव तत्पावयन्ति तेषां प्राणानुत्सृजन्ति ।।४।। प्रजापतिर्वै हिङ्कारस्त्रियो बहिष्पवमान्यो यद्धिङ्कृत्य प्रस्तौति मिथुनमेवास्य यज्ञमुखे दधाति प्रजननाय ।।५।। एष वै स्तोमस्य योगो यद्धिङ्कारो यद्धिङ्कृत्य प्रस्तौति युक्तेनैव स्तोमेन प्रस्तौति ।।६।। एष वै साम्नांरसो यद्धिङ्कारो यद्धिङ्कृत्य प्रस्तौति रसेनैवैता अभ्युद्य प्रस्तौति ।।७।। आरण्येभ्यो वा एतत् पशुभ्यः स्तुवन्ति यद्बहिष्पवमानमेकरूपाभिः स्तुवन्ति तस्मादेकरूपा आरण्याः पशवः ।।८।। पराचीभिः स्तुवन्ति तस्मात् पराञ्चः प्रजायन्ते पराञ्चो वितिष्ठन्ते ।।९।। अपरिश्रिते स्तुवन्ति तस्मादपरिगृहीता आरण्याः पशवः ।।१०।। बहिः स्तुवन्त्यन्तरनुशंसन्ति तस्माद्–ग्राममांहृतैर्भुञ्जते ।।११।। ग्राम्येभ्यो वा एतत् पशुभ्यः स्तुवन्ति यदाज्यैर्नानारूपैः स्तुवन्ति तस्मान्नानारूपा ग्राम्याः पशवः ।।१२।। पुनरभ्यावर्त्तंस्तुवन्ति तस्मात्प्रेत्वर्य्यः प्रेत्य पुनरायन्ति ।।१३।। परिश्रिते स्तुवन्ति तस्मात् परिगृहीता ग्राम्याः पशवः ।।१४।। अमुष्मै वा एतल्लोकाय स्तुवन्ति यद्बहिष्पवमानंसकृद्धिङ्कृताभिः पराचीभिः स्तुवन्ति सकृद्धीतोऽसौ पराँल्लोकः ।।१५।। अस्मै वा एतल्लोकाय स्तुवन्ति यदाज्यैः पुनरभ्यावर्त्तंस्तुवन्ति तस्मादयल्लोकः पुनः पुनः प्रजायते ।।१६।। पराञ्चो वा एतेषां प्राणा भवन्तीत्याहुर्य्ये पराचीभिर्बहिष्पवमानीभिः स्तुवत इत्यावतीमुत्तमां गायेत्प्राणा–नान्धृत्यै ।।१७।।

च्यवन्ते वा एतेऽस्माल्लोकादित्याहुर्य्ये पराचीभिर्बहिष्पवमानीभि: स्तुवत इति रथन्तरवर्णामुत्तमाङ्गायेदियं रथन्तरमस्यामेव प्रतितिष्ठति ।।१८।।

नवम: खण्ड:

'उपास्मै गायता नर' इति ग्रामकामाय प्रतिपदं कुर्य्यात् ।।१।। नरो वै देवानां ग्रामो ग्राममेवास्मा उपाक: ।।२।। उप वा अन्नमन्नमेवास्मा उपाक: ।। ३।। 'उपोषु जातमप्तुर'मिति प्रजाकामाय प्रतिपदं कुर्यात् ।।४।। उप वै प्रजा तां जातमित्येवाजीजनत् ।।५।। 'सन: पवस्व शङ्गव' इति प्रतिपदं कुर्यात् ।। ६।। याᳶसमां महादेव: पशून् हन्यात्'सन: पवस्व शङ्गव' इति चतुष्पदे भेषजं करोति ।।७।। 'शञ्जना'येति द्विपदे शमर्व्वत इत्येकशफाय ।।८।। विषेण व ताᳶसमामोषधयोऽक्ता भवन्ति याᳶसमाम्महादेव: पशून् हन्ति यच्छᳶराजन्नोषधीभ्य इत्याहौषधीरेवास्मै स्वदयत्युभयोऽस्मै स्वदिता: पच्यन्तेऽकृष्टपच्याश्च कृष्टपच्याश्च ।। ९।। 'पवस्व वाचो अग्रिय' इति प्रतिपदं कुर्य्याद्यं कामयेत समानानाᳶश्रेष्ठ: स्यादिति ।।१०।। 'पवस्व वाचो अग्रिय' इत्यग्रमेवैनं परिणयति ।।११।। श्रीर्व्वै वाचोऽग्रᳶश्रियमेवास्मिन् दधाति ।।१२।। 'एत असृग्रमिन्दव' इति बहुभ्य: प्रतिपदं कुर्य्यात् ।। ३।। एत इति सर्वानिवैनानृद्ध्यै भूत्या अभिवदति ।।१४।। एत इति वै प्रजापतिर्द्देवानसृजतासृग्रमिति मनुष्यानिन्दव इति पितॄँस्तिर: पवित्र इति ग्रहानाशव इति स्तोत्रं विश्वानीति शस्त्रमभि सौभगेत्यन्या: प्रजा: ।।१५।। यदेत इति तस्माद्यावन्त एवाग्रे देवा स्तावन्त इदानीम् ।।१६।। सर्व्वान्वृद्धि-मार्ध्नुवᳶस्थितेव ह्येषा व्याहृति: ।।१७।।

यदसृग्रमिति तस्मान्मनुष्याः श्वः श्वः सृज्यन्ते ।।१८।। यदिन्दव इतीन्दव इव हि पितरः ।।१९।। मनइव ।। २०।। यान्ताः प्रजाः सृष्टा ऋद्धिमार्ध्नुवंस्तामृध्नुवन्ति येषामेवं विद्वानेतां प्रतिपदं करोति ।। २१।। छन्दाँसि वै सोममाहरंस्तं गन्धर्व्वो विश्वावसुः पर्य्यमुष्णात्तेनापः प्राविशत्तं देवता अन्वैछंस्तं विष्णुरप्सु पर्य्यपश्यत् स व्यकाङ्क्षदयन्नू ३ ना ३ इति तं पदा प्रास्फुरत्तस्मात् पृथगिन्दवोऽसृज्यन्त स देवताभ्योऽभितस्तिष्ठन्तीभ्य एते असृग्रमिन्दव इति प्राब्रवीद्बहिष्पवमानेन वै यज्ञः सृज्यते यदेते असृग्रमिन्दव इति प्रस्तौति यज्ञमेव तत् सृष्टन्देवताभ्यः प्राह ।। २२।। व्यृद्धं वा एतदपशव्यं यत्प्रातःसवनमनिडंहि यदिडामस्मभ्यंसंयतमित्याह प्रातःसवनमेव तदिडावत्पशुमत्करोति ।। २३।। दविद्युतत्यारुचेति व्राताय प्रतिपदं कुर्य्यात् ।। २४।। दविद्युतत्यारुचेति वै गायत्र्या रूपं परिष्टोभन्त्येति त्रिष्टुभः कृपेत्यनुष्टुभः सोमाः शुक्रा गवाशिर इति जगत्याः सर्वेषां वा एषा छन्दसांरूपं छन्दाँसीव खलु वै व्रातोयदेषा प्रतिपद्भवति स्वेनैवैनांस्तद्रूपेण समर्द्धयति ।। २५।। वृद्धा वा एत इन्द्रियेण वीर्य्येण यद्व्रात इन्द्रियं वीर्य्यं छन्दाँसीन्द्रियेणैवैनान्वीर्य्येण समर्द्धयति ।। २६।।

दशमः खण्डः

अग्न आयूँषि पवस इति प्रतिपदं कुर्य्याद्येषां दीक्षितानां प्रमीयते ।।१।। अपूता इव वा येषां दीक्षितानां प्रमीयते यद्येषाऽग्निपावमानी प्रतिपद्भवत्यग्निरेवैनाग्निष्टपति पवमानः पुनाति ।। २।। यदायूँषीत्याह य एव जीवन्ति तेष्वायुर्द्धाति ।। ३।। आनो मित्रावरुणेति ज्योगामयाविने प्रतिपदं कुर्य्यात् ।।४।।

अपक्रान्तौ वा एतस्य प्राणापानौ यस्य ज्योगामयति प्राणापानौ मित्रावरुणौ प्राणापानावेवास्मिन्दधाति ।।५।। अपघ्नन्पवते मृधोपसोमो अराव्ण इत्यनृतमभिशस्यमानाय प्रतिपदं कुर्य्यात् ।।६।। अरावाणो वा एते येऽनृतमभि शँसन्ति तानेवास्मादपहन्ति ।।७।। गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतमिति पूतमेवैनं यज्ञियमिन्द्रस्य निष्कृतङ्गमयति ।।८।। वृषा पवस्व धारयेति राजन्याय प्रतिपदं कुर्य्याद्वृषा वै राजन्यो वृषाणमेवैनं करोति ।।९।। मरुत्वते च मत्सर इति मरुतो वै देवानां विशो विशमेवास्मा अनु नियुनक्त्यनपक्रामुकाऽस्माद्विड्भवति ।।१०।। विश्वा दधान ओजसेत्योजसैवास्मै वीर्य्येण विशं पुरस्तात्परि–गृह्णात्यनपक्रामुकास्माद्विड्भवति ।।११।। पवस्वेन्दो वृषासुत इति प्रतिपदं कुर्य्याद्यः कामयेत जनेम ऋध्येतेति ।।१२।। कृधी नो यशसो जनइति जनतायामेवास्मा ऋध्यते ।।१३।। युवꣳहि स्थः स्वः पती इति द्वाभ्यां प्रतिपदं कुर्य्यात्समावद्धाजावेवैनौ यज्ञस्य करोत्युभौ यज्ञयशसेनार्पयति ।।१४।। प्रास्य धारा अक्षरन्निति वृष्टिकामाय प्रतिपदं कुर्य्यात् ।।१५।। प्रास्य धारा अक्षरन्निति दिवो वृष्टिञ्च्यावयति वृष्णः सुतस्यौजस इत्यन्तरिक्षात् ।।१६।। देवाꣳअनु प्रभूषत इत्यस्मिन् लोके प्रतिष्ठापयति ।।१७।। ओजसा वा एतद्वीर्य्येण प्रदीयते यदप्रत्तं भवति यद्वृष्णः सुतस्यौजस इत्याहौजसैवास्मै वीर्य्येण दिवो वृष्टिं प्रयच्छति ।।१८।। अया पवस्व धारया यया गाव इहागमञ्जन्यास उप नो गृहमिति प्रतिपदं कुर्य्याद्यः कामयेतोप मा जन्या गावो नमेयुर्विन्देत मे जन्यागा राष्ट्रमिति यदेषा प्रतिपद्भवत्युपैनञ्जन्यागावो नमन्ति विन्दतेऽस्य जन्यागा राष्ट्रम् ।।१९।।

।। इति षष्ठोऽध्यायः।।



सप्तमोऽध्यायः

प्रथमः खण्डः

इमे वै लोका गायत्रं त्र्यावृद्वेयन्त्रयोहीमे लोका यत्त्र्यावृद्गायत्येभिरेवैनं लोकैः सम्मिमीते ॥१॥ द्विरवनर्दे-द्धिङ्कुर्य्यात्तृतीयम् ॥२॥ यत्त्रिरवनर्दत्यति तद्गायत्रꣳरेचयति ॥३॥ यो वै गायत्रेणा प्रतिहृतेनोद्गायत्यप्रतिष्ठानो भवति हिङ्कारो वै गायत्रस्य प्रतिहारः ॥४॥ स मनसा ध्येयः प्रतिहृतेन गायत्रेणोद्गायति प्रतितिष्ठति ॥५॥ यो वा एभ्यो लोकेभ्यो गायत्रं गायति नैभ्यो लोकेभ्य आवृश्च्यत इमे एनं लोका ऊर्ज्जाऽभिसंवसते ॥६॥ मन्द्रमिवाग्र आददीताथ तारतरमथ तारतमन्तदेभ्यो लोकेभ्योऽ-गासीत् ॥७॥ अनिरुक्तङ्गेयमेतद्वै गायत्रस्य क्रूरं यन्निरुक्तं यदनिरुक्तं गायति क्रूरमेवास्य परिवृणक्ति ॥८॥ प्राणो गायत्रन्न व्यवान्यात्प्राणस्याविच्छेदाय यदि व्यवानिति प्रमायुको भवति यदि न व्यवानिति सर्वमायुरेति ॥९॥ यदि व्यवान्यान्मध्यत्रृचो व्यवान्यात्प्राणो वै गायत्रं प्राणः स्वरः प्राणमेव तन्मध्यत आत्मन्दधाति स सर्वमायुरेति ॥१०॥ इडां पशुकामाय निधनं कर्य्यात्स्वः स्वर्गकामाय यशोब्रह्मवर्चसकामायायुरामयाविने हꣳसीत्यभिचरते ॥११॥ एते वै गायत्रस्य दोहाः ॥१२॥ ब्रह्मवर्च्चसी पशुमान् भवति य एवं वेद ॥१३॥

द्वितीयः खण्डः

प्रजापतिर्देवेभ्य आत्मानं यज्ञं कृत्वा प्रायच्छत्तेऽन्योन्यस्मा अग्राय नातिष्ठन्त तानब्रवीदाजिमस्मिन्नितेति त आजिमायन्यदा-जिमायꣳस्तदाज्यानामाज्यत्वम् ॥१॥

स इन्द्रोऽवेदग्निर्वा इदमग्र उज्जेष्यतीति सोऽब्रवीद्यतरोनाविदमग्र उज्जयात्तन्नौसहेति सोऽग्निरग्र उदजयदथ मित्रावरुणावथेन्द्रोऽथैषै–काहोत्रानुज्जितासीत्स इन्द्रोऽग्निमब्रवीद्यत्सहावोचावहीयन्नौ तदिति सैषैन्द्राग्न्यध्यर्द्धमग्ने स्तोत्रमध्यर्द्धमिन्द्रस्य ।। २।। चत्वारि सन्ति षड्देवत्यानि ।। ३।। षड्धा विहितो यज्ञो यावान्यज्ञस्त–मेवारभते ।। ४।। सर्व्वाणि स्वाराण्याज्यानि तज्जामि नानादेवत्यैः स्तुवन्त्यजामितायै ।। ५।। ग्राम्येभ्यो वा एततपशुभ्यः स्तुवन्ति यदाज्यैः पुनरभ्यावर्त्तंस्तुवन्ति तस्मात्पराञ्चः प्राज्यन्ते प्रत्यञ्चः प्रजायन्ते तस्मादुप्रेत्य पुनरायन्ति ।। ६।।

तृतीयः खण्डः

एतावता वाव माध्यन्दिनंसवनं पुपुवे ।। १।। त्रिभिश्च छन्दोभिः पञ्चभिश्च सामभिः ।। २।। यन्माध्यन्दिनेनं पवमानेन स्तुवन्ति माध्यन्दिनमेव तत्सवनं पावयन्ति ।। ३।। एतावन्ति वाव सर्व्वाणि सामानि यावन्ति माध्यन्दिने पवमाने ।। ४।। गायत्रन्निधनवद–निधनमैडम् ।। ५।। यन्माध्यन्दिनेन पवमानेन स्तुवन्ति सर्वैरेव तत्सामभिः स्तुवन्ति ।। ६।। आत्मा वै यज्ञस्य पवमानो मुखं गायत्री प्राणो गायत्रं यद्गायत्र्यां गायत्रेण स्तुवन्ति मुखत एव तत्प्राणान्दधति ।। ७।। प्राणापाना वा एतानि छन्दाँसि प्राणो गायत्री व्यानो बृहत्यपानस्त्रिष्टुब्यदेतैश्छदोभिः स्तुवन्ति प्राणापाना–नामविच्छेदाय ।। ८।। इमे वै लोका एतानि छन्दांस्ययमेव गायत्ययं मध्यमो बृहत्यसावुत्तमस्त्रिष्टुब्यदेतैश्छन्दोभिः सँहितैः स्तुवन्त्येषाँ लोकानामविच्छेदाय ।। ९।। यदन्यछन्दोऽन्तरा व्यवेयादिमाँ लोकान्विच्छिन्द्यात् ।। १०।। गायत्रेण स्तुत्वा निधनवता स्तुवन्तीयं वै गायत्र्यस्यामेव तदायतनं क्रियते ।। ११।।

यदनिधनेनाग्रे स्तुयुरनायतनो यजमानः स्यात् ।।१२।। निधनवता स्तुवन्ति वीर्य्यं वै गायत्री वीर्य्यन्निधनं वीर्य्येणैव तद्वीर्यꣳसमर्द्धयति ।।१३।। ऐडेन बृहतीमारभन्ते ।।१४।। पशवो वा इडा पशवो बृहंती पशुष्वेव तत्पशून्दधाति ।।१५।। बृहत्यां भूयिष्ठानि सामानि भवन्ति ।।१६।। तत्रापि त्रिणिधनम् ।।१७।। अबलिष्ठ इव वा अयम्मध्यमो लोकस्तस्यैव तदायतनं क्रियते ।।१८।। त्रिणिधनं भवति त्रीणि सवनानां छिद्राणि तानि तेनापि धीयन्ते ।।१९।। त्रिणिधनं भवति त्रय इमे लोका एष्वेव लोकेषु प्रतितिष्ठति ।। २०।। त्रिणिधनं भवत्येतेन वै माध्यन्दिनꣳसवनं प्रतिष्ठितं यत्त्रिणिधनं यत्त्रिणिधनन्न स्यादप्रतिष्ठितम्माध्यन्दिनꣳसवनं स्यात् ।। २१।। द्व्यक्षराणि निधनानि भवन्ति द्विपाद्यजमानो यजमानमेव यज्ञे पशुषु प्रतिष्ठापयति ।। २२।। अनिधनमन्ततो भवति स्वर्गस्य लोकस्यानतिपादाय ।। २३।। यन्निधनवत्स्याद्यजमानꣳस्वर्गाल्लोका–न्निर्हन्यात् ।। २४।। स्वारं भवति ।। २५।। स्वरेण वै देवेभ्योऽन्ततोऽन्नाद्यं प्रदीयते स्वरेणैव तद्देवेभ्योऽन्ततोऽन्नाद्यं प्रयच्छति ।। २६।। गायत्रं पुरस्ताद्भवति स्वारमन्ततः ।। २७।। प्राणो वै गायत्रं प्राणः स्वरः प्राणानेव तदुभयतो दधाति तस्मादुभयतः प्राणाः पशवः ।। २८।। यद्गायत्रं पुरस्ताद्भवति स्वारमन्ततः प्राणैरेव प्रैत्यपाने प्रतितिष्ठति ।। २९।।

चतुर्थः खण्डः

एतद् वै यज्ञस्य स्वर्ग्यं यन्माध्यन्दिनꣳसवनम्माध्यन्दिनस्य पवमानः पवमानस्य बृहती यद्बृहत्याः स्तोत्रे दक्षिणा दीयन्ते स्वर्गस्यैव तल्लोकस्यायतने दीयन्ते ।।१।।

देवा वै छन्दाꣳस्यब्रुवन्युष्माभिः स्वर्गꣳल्लोकमयामेति ते गायत्रीं प्रायुञ्जत तया न व्याप्नुवँस्त्रिष्टुभं प्रायुञ्जत तया न व्याप्नुवञ्जगतीं प्रायुञ्जत तया न व्याप्नुवन्नुष्टुभं प्रायुञ्जत तयाऽल्पकादि न व्याप्नुवꣳस्त आसान्दिशाꣳरसान् प्रवृह्य चत्वार्य्यक्षराण्युपादधुः सा बृहत्यभवत्तयेमाँल्लोकान् व्याप्नुवन् ।।२।। बृहती मर्य्या ययेमाँल्लोकान् व्यापामेति तद्बृहत्याबृहत्वम् ।।३।। पशून्वा अस्यान्तानुपादधुः पशवो वै बृहती यद्बृहत्याः स्तोत्रे दक्षिणा दीयन्ते स्व एव तदायतने दीयन्ते ।।४।। यन्वित्याहुरन्यानि छन्दाँसि वर्षीयाँसि कस्माद्बृहत्युच्यत इत्येषा हीमाँल्लोकान् व्याप्नोन्नान्यच्छन्दः किञ्चन यानि सप्तचतुरुत्तराणि छन्दाँसि तानि बृहतीमभिसम्पद्यन्ते तस्माद्बृहत्युच्यते ।।५।। यन्वित्याहुर्गायत्रं प्रातःसवनं त्रैष्टुभम्माध्यन्दिनꣳसवनञ्जागतं तृतीयसवनङ्कस्माद् बृहत्या मध्यन्दिने स्तुवन्तीति ।।६।। बहिष्पवमानेन वै देवा आदित्यꣳस्वर्गंल्लोकमहरन् स नाध्रियत तं बृहत्या मध्यन्दिने स्तभ्नुवँस्तस्माद् बृहत्या मध्यन्दिने स्तुवन्त्यादित्यꣳह्येषा मध्यन्दिने दाधार ।।७।। यैरु कैश्च छन्दोभिर्म्मध्यन्दिने स्तुवन्ति तानि त्रिष्टुभमभि सम्पद्यन्ते तस्मात्त्रिष्टुभो नयन्ति माध्यन्दिनात्सवनात् ।।८।।

पञ्चमः खण्डः

प्रजापतिरकामयत बहु स्यां प्रजायेयेति स शोचन्– महीयमानोऽतिष्ठत्सएतदामहीयवमपश्यत्तेनेमाः प्रजा असृजत ताः सृष्टा अमहीयन्त यदमहीयन्त तस्मादामहीयवम् ।।१।। ता अस्मात्सृष्टा अपाक्रामꣳस्तासान्दिवि सङ्कूम्यादद इति प्राणानादत्त ता एनं प्राणेष्वात्तेषु पुनरुपावर्त्तन्त ताभ्य उग्रꣳशर्म्म महिश्रव इति पुनः प्राणान् प्रायच्छत्ता अस्मादुदेवायोधꣳस्तासाँ स्तौष इति मन्यूनवाश्रृणोत्ततो वै तस्मै ताः श्रेष्ठ्यायातिष्ठन्त ।।२।।

तिष्ठन्तेऽस्मै समानाः श्रैष्ठ्याय य एवं वेद ।। ३।। प्रजानाञ्च वा एषा सृष्टिः पापवसीयसञ्च विधृतिर्य्यदामहीयवम् ।। ४।। विधृतिः पापवसीयसो भवति य एवं वेद ।। ५।। देवा वै यशस्कामाः सत्रमासताग्निरिन्द्रो वायुर्मखस्तेऽब्रुवन्यन्नो यशऽऋच्छात्तन्नः सहासदिति तेषाम्मखं यश आर्च्छत्तदादायापाक्रामत्तदस्य प्रासहादित्सन्त तं पर्य्ययतन्त स्वधनुः प्रतिष्ठभ्यातिष्ठत्तस्य धनु–रार्त्निरूर्ध्वापतित्वा शिरोऽछिनत्स प्रवर्ग्योऽभवद्यज्ञो वैं मखो यत् प्रवर्ग्यं प्रवृञ्जन्ति यज्ञस्यैव तच्छिरः प्रतिदधति।। ६।। तद्देवा यशो व्यभजन्त तस्याग्नीरौरवं प्राबृहत ।। ७।। तद्वै स पशुवीर्य्यं प्राबृहता पशवो वै रौरवम् ।। ८।। पशुमान् भवति य एवं वेद ।। ९।। अग्निर्वै रूरस्तस्यैतद्रौरवम् ।। १०।। असुरा वै देवान् पर्य्ययतन्त तत एतावग्नीरूरौ विष्वञ्चौ स्तोभावपश्यत्ताभ्यामेनान् प्रत्यौषत्ते प्रत्युष्यमाणा अरवन्त यदरवन्त तस्माद्रौरवम् ।। ११।। अथेन्द्रो यौधाजयं प्राबृहत तद्वै स वज्रं प्राबृहत वज्रो वै यौधाजयम् ।। १२।। वज्रं भ्रातृव्याय प्रहरति य एवं वेद ।। १३।। इन्द्रो वै युधाजित्तस्यैतद्यौधाजयम् ।। १४।। युधा मर्य्या अजैष्मेति तस्माद्यौधाजयम् ।। १५।। अथ वायुरौशनं प्राबृहत ।। १६।। तद्वै स प्राणवीर्य्यं प्राबृहत प्राणा वा औशनम् ।। १७।। सर्व्वमायुरेति य एवं वेद ।। १८।। वायुर्वा उशनंस्तस्यैतदौशनम् ।। १९।। उशना वै काव्योऽसुराणां पुरोहित आसीत्तं देवाः कामदुघाभिरुपामन्त्रयन्त तस्मा एतान्यौशनानि प्रायच्छन् कामदुघा वा औशनानि ।। २०।। कामदुघा एनमुपतिष्ठन्ते य एवं वेद ।। २१।।

षष्ठः खण्डः

प्रजापतिरकामयत बहु स्यां प्रजायेयेति स तूष्णीं मनसा ध्यायत्तस्य यन्मनस्यासीत्तद्बृहत्साम समभवत ।। १।।

स आदधीत गर्भो वै मेऽयमन्तर्हितस्तं वाचा प्रजनया इति ।।२।। स वाचं व्यसृजत सा वाग्रथन्तरमन्वपद्यत ।।३।। रथम्मर्य्याः क्षेप्लातारीदिति तद्रथन्तरस्य रथन्तरत्वम् ।।४।। ततो बृहदनु प्राजायत बृहन्मर्य्या इदꣳस ज्योगन्तरभूदिति तद्बृहतो बृहत्वम् ।।५।। यथा वै पुत्रो ज्येष्ठ एवं बृहत्प्रजापतेः ।।६।। ज्येष्ठब्राह्मणं वा एतत् ।।७।। प्रज्यैष्ठ्यमाप्नोति य एवं वेद ।।८।। यन्निवत्याहुर्बृहत्पूर्वं प्रजापतौ समभवत्कस्माद्रथन्तरं पूर्व्वं योगमानश इति ।।९।। बृहदेव पूर्वꣳसमभवद्रथन्तरन्तु पूर्वꣳसृष्ट्यासृजत तस्मात्पूर्वं योगमानशे ।।१०।। तयोः समानन्निधनमासीत्तस्मिन्नातिष्ठेतान्ते आजिमैतां तयोर्हँसिति बृहत्प्राणमुदजयदसिति रथन्तरमपानमभि–समवेष्टत ।।११।। प्राणापानौ वै बृहद्रथन्तरे ज्योगामयाविन उभे कुर्य्यादपक्रान्तौ वा एतस्य प्राणापानौ यस्य ज्योगामयति प्राणापानावेवास्मिन्दधाति ।।१२।। यन्निवत्याहुरुभे बृहद्रथन्तरे बहि–र्निधने कस्माद् बृहद्बहिर्निधनानि भजतेऽन्तर्निधनानि रथन्तरमिति ।।१३।। प्राणो बृहत्तस्माद्बहिर्निधनानि भजते बहिर्हि प्राणोऽपानो रथन्तरं तस्मादन्तर्निधनानि भजतेऽन्तर्ह्यपानः ।।१४।। महावृक्षौ वै बृहद्रन्थरे निधनेन समर्प्ये ।।१५।। यद्वै महावृक्षौ समृच्छेते बहु तत्र विभग्नं प्रभग्नꣳशेते ।।१६।। ऐरं वै बृहदैडꣳरथन्तरम्मनो वै बृहद्वाग्रथन्तरं साम वै बृहदृग्रथन्तरं प्राणो वै बृहदपानो रथन्तरमसौ वै लोको बृहदयꣳरथन्तरमेतानि मनसान्वीक्ष्योद्गायेत् क्लृप्ताभ्यामेवाभ्यामुद्गायति ।।१७।।

सप्तमः खण्डः

पशवो वै बृहद्रथन्तरे अष्टाक्षरेण प्रथमाया ऋचः प्रस्तौत्यष्टाशफाꣳस्तत्पशूनवरुन्धे ।।१।।

द्व्यक्षरेणोत्तरयोर्ऋचः प्रस्तौति द्विपाद्यजमानो यजमानमेव यज्ञे पशुषु प्रतिष्ठापयति ॥ २॥ पञ्चाक्षरेण रथन्तरस्य प्रतिहरति पाङ्क्तांस्तत्पशूनवरुन्धे ॥ ३॥ चतुरक्षरेण बृहतः प्रतिहरति चतुष्पदस्तत्पशूनवरुन्धे ॥ ४॥ न वै बृहन्न रथन्तरमेकञ्छन्दो यच्छततः ककुभावुत्तरे उपादधुस्तस्माद्बृहती प्रथमा ककुभावुत्तरे तस्माद्बृहद्रथन्तरे एकर्च्चेन कुर्वन्ति न हि ते एकञ्छन्दोऽयच्छत् ॥ ५॥ नव बृहती रोहान् रोहति नव प्राणाः प्राणानेवावरुन्धे ॥ ६॥ त्रीन् प्रथमायांरोहति भूतं भवद्भविष्यत्तानेवा-वरुन्धे त्रीन् मध्यमायांरोहत्यात्मानं प्रजां पशूँ स्तानेवावरुन्धे त्रीनुत्तमायांरोहति त्रय इमे लोका एष्वेव लोकेषु प्रतितिष्ठति ॥ ७॥ सर्वान् कामानवरुन्धे य एवं विद्वान् बृहतो रोहान्रोहति ॥ ८॥ वज्रेण वा एतत्प्रस्तोतोद्गातारमभिप्रवर्त्तयति यद्रथन्तरं प्रस्तौति समुद्रमन्तर्द्धायोद्गायेद्वागित्यादेयं वाग्वै समुद्रः समुद्रमेवान्तर्दधात्य-हिंसायै ॥ ९॥ बलवद्गेयं वज्रमेव प्रवृत्तं प्रत्युद्गृह्णाति ॥१०॥ बल्वला कुर्व्वता गेयमभिलोभयतेव वज्रमेवाभिलोभयति ॥११॥ क्षिप्रङ्गेयंस्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै ॥१२॥ देवरथो वै रथन्तरमक्षरेणाक्षरेण प्रतिष्ठापयतोद्गेयमरेणारेण हि रथः प्रतितिष्ठति ॥१३॥ यो वै देवरथमनन्वालभ्यातिष्ठत्यवास्मात्पद्यत इयं वै देवरथ इमामालभ्योद्गायेन्नास्मादवपद्यते ॥१४॥ ईश्वरं वै रथन्तरमुद्गातुश्चक्षुः प्रमथितोः प्रस्तूयमाने सम्मीलेत्स्वर्दृशं प्रतिवीक्षेत नैनञ्चक्षुर्जहाति ॥१५॥ प्रजननं वै रथन्तरं यत्तस्थुष इत्याह स्थायुकोद्गातुर्वाग्भवत्यपि प्रजननंहन्त्यस्थुष इति वक्तव्यंसुस्थुष इति वा स्थायुकोद्गातुर्वाग्भवति न प्रजननमपि हन्ति ॥१६॥ पृष्ठानि वा असृज्यन्त तैर्द्देवाः स्वर्गंल्लोकमायंस्तेषांरथन्तरम्महिम्ना नाशक्नोदुत्पतत् ॥१७॥

तस्य वशिष्ठो महिम्नो विनिधाय तेन स्तुत्वा स्वर्गंल्लोकमैत्तान् संभृत्योद्गायेत् ।।१८।। यस्ते गोषु महिमा यस्ते अप्सु रथे वा ते स्तनयित्नौ य उ ते यस्ते अग्नौ महिमा तेन सम्भव रथन्तरं द्रविणवन्न एधि ।।१९।।

अष्टमः खण्डः

अपो वा ऋत्व्यमार्च्छत्तासां वायुः पृष्ठे व्यवर्त्तत ततो वसु वामंस्समभवत्तस्मिन् मित्रावरुणौ पर्य्यपश्यतां तावब्रूतां वामं मर्य्या इदं देवेष्वाजनीति तस्माद्वामदेव्यम् ।।१।। तत्परिगृह्णन्ताव- ब्रूतामिदमविदावेदन्नौमाभ्यर्त्तिद्वमिति तत्प्रजापतिरब्रवीन्मद्वा एतदद्ध्यजनि मम वा एतदिति तदग्निरब्रवीन्मां वा एतदन्नजनि मम वा एतदिति तदिन्द्रोऽब्रवीच्छ्रेष्ठस्था वा एतदहं वः श्रेष्ठोऽस्मि मम वा एतदिति तद्विश्वे देवा अब्रुवन्नस्मद्देवत्यं वा एतद्य- दद्ध्योऽधि समभूदस्माकं वा एतदिति तत्प्रजापतिरब्रवीत्सर्वेषान्न इदमस्तु सर्व इदमुपजीवामेति तत्पृष्ठेषु न्यदधुः सर्वदेवत्यं वै वामदेव्यम् ।। २।। यत्कवतीषु तेन प्राजापत्यं को हि प्रजापतिर्यदनिरुक्तासु तेन प्राजापत्यमनिरुक्तो हि प्रजापतिः ।। ३।। यद्गायत्रीषु तेनाग्नेयं गायत्रच्छन्दा ह्यग्निः ।।४।। यत् पृष्ठेषु न्यदधुस्तेनैन्द्रंस्सर्व्वाणि हि पृष्ठानीन्द्रस्य निष्क्केवल्यानि ।।५।। यन्मैत्रावरुणोऽनुशंसति तेन मैत्रावरुणम् ।।६।। यद्बहुदेवत्यमुत्तमं पदं तेन वैश्वदेवं सर्वेष्वेव रूपेषु प्रतितिष्ठति ।।७।। प्रजापतिर्वा एतां गायत्रीं योनिमपश्यत् स आदीधीतास्माद्योनेः पृष्ठानि सृजा इति ।।८।। स रथन्तरमसृजत तद्रथस्य घोषोऽन्वसृज्यत ।।९।। स बृहदसृजत तत्स्तनयित्नोर्घोषोऽन्वसृज्यत स वैरूपमसृजत तद्वा तस्य घोषोऽन्वसृज्यत ।।१०।।

स वैराजमसृजत तदग्नेर्घोषोऽन्वसृज्यत ।।११।। स शक्वरीरसृजत तदपाङ्घोषोऽन्वसृज्यत ।।१२।। स रेवतीरसृजत तद्गवां घोषोऽन्वसृज्यत ।।१३।। एतैर्वा एतानि सह घोषैरसृज्यन्त ।।१४।। सर्वेऽस्मिन् घोषाः सर्वाः पुण्यावाचो वदन्ति य एवं वेदः ।।१५।।

नवमः खण्डः

पिता वै वामदेव्यं पुत्राः पृष्ठानि ।।१।। एतस्माद्वा एतानि योनेरसृज्यन्त ।। २।। तस्मात् पृष्ठानाꣳस्तोत्रं वामदेव्येनानुष्टुवन्ति शान्त्यै ।। ३।। यद्धि पुत्रोऽशान्तं चरति पिता तच्छमयति ।।४।। अयं वै लोको मध्यमो वामदेव्यमेतस्माद्वा इमौ लोकौ विष्वञ्चावसृज्येतां बृहच्च रथन्तरञ्च ।।५।। यद्रथन्तरेण स्तुवन्ति ये रथन्तराः पशवोऽन्तरीक्षन्त उपश्रयन्ति यद्बृहता स्तुवन्ति ये बार्हताः पशवोऽन्तरीक्षन्त उपश्रयन्ति ते वामदेव्यस्य स्तोत्रेणावरुद्धाः ।।६।। ध्रुव आसीनो वामदेव्येनोद्गायेत्पशूनामुप वृत्यै ।।७।। उपैनं पशव आवर्त्तन्ते य एवं वेद ।।८।। अन्तरिक्षं वै वामदेव्यमधून्वतेवोद्गेयमधूतमिवह्यन्तरिक्षं पशवो वै वामदेव्यमहिंसतेवोद्गेयं पशूनामहिँसायै ।।९।। कथमिव वामदेव्यं गेयमित्याहुः ।।१०।। यथांकुली पुत्रान् सन्दश्यासम्भिन्दती हरति यथा वातोऽप्सु शनैर्वाति ।।११।। स्वधूर्वामदेव्यङ्गेयम् ।।१२।। यो वै स्वधूर्वामदेव्यङ्गायति स्वधूर्भवति ।।१३।। यात्यस्यान्यो नियानेन नान्यस्य नियानेन याति ।।१४।। न बृहतो न रथन्तरस्यानुरूपङ्गेयꣳस्वेनैवायतनेन गेयमायतनवान् भवति ।।१५।। देवा वै पशून् व्यभजन्त ते रुद्रमन्तरायꣳस्तान्वामदेव्यस्य स्तोत्र उपेक्षते ।।१६।। अनिरुक्तङ्गेयम् ।।१७।।

यन्निराह रुद्राय पशूनपि दधाति रुद्रस्ताꣳसमां पशून् घातुको भवति।। १८।। रेवतीषु वामदेव्येन पशूकामः स्तुवीत ।।१९।। आपो वै रेवत्यः पशवो वामदेव्यमद्भ्य एवास्मै पशून् प्रजनयति ।। २०।। अनवर्त्तिः पशुतो भवति प्रजा त्वस्य मीलितेव भवति ।। २१।। कवतीभ्यो ह्येति प्रजापतेः ।। २२।।

दशमः खण्डः

इमौ वै लोकौ सहास्तान्तौ वियन्तावब्रूतां विवाहं विवहावहै सह नावस्त्विवति ।।१।। तयोरयममुष्मै श्यैतं प्रायच्छन्नौध-समसावस्मै ।। २।। तत एनयोर्न्निधने विपर्य्यक्रामतां देव विवाहो वै श्यैतनौधसे ।। ३।। प्रवसीयाꣳसं विवाहमाप्नोति य एवं वेद ।। ४।। इतो वा इमे लोका ऊर्द्ध्वाः कल्पमानायन्त्यमुतोऽर्वाञ्चः कल्पमाना आयन्ति ।।५।। यद्रथन्तरेण स्तुवन्तीमल्लोकं तेन युनक्त्यन्तरिक्षं वामदेव्येन नौधसेनामुं यद् बृहता स्तुवन्त्यमुंल्लोकं तेन युनक्त्यन्तरिक्षं वामदेव्येन श्यैतेनेमम् ।।६।। क्लृप्तानिमां-ल्लोकानुपास्ते य एवं वेद ।।७।। बृहद्रथन्तरे वै श्यैतनौधसे यद्रथन्तराय नौधसं प्रति प्रयुञ्जन्ति बृहदेवास्मै तत्प्रति प्रयुञ्जन्ति बृहद्ध्येतत्परोक्षं यन्नौधसं यद् बृहते श्यैतं प्रति प्रयुञ्जन्ति रथन्तरमेवास्मै तत्प्रति प्रयुञ्जन्ति रथन्तरꣳह्येतत्परोक्षं यच्छ्यैतम् ।।८।। उभाभ्यां बृहद्रथन्तराभ्यां स्तुते य एवं वेद ।।९।। देवा वै ब्रह्म व्यभजन्त तान्नोधाः काक्षीवत आगच्छत्तेऽब्रुवन्नृषिर्न्न आगꣳस्तस्मै ब्रह्म ददामेति तस्मा एतत् साम प्रायच्छन्यन्नोधसे प्रायच्छꣳस्त-स्मान्नौधसं ब्रह्म वै नौधसम् ।।१०।। ब्रह्मवर्च्चसकाम एतेन स्तुवीत ब्रह्मवर्च्चसी भवति ।।११।। अथैतच्छ्यैतम् ।।१२।।

प्रजापतिः पशूनसृजत तेऽस्मान् सृष्टा अपाक्रामंस्तानेतेन साम्नाभिव्याहरत्तेऽस्मा अतिष्ठन्त ते शेत्या अभवन् यच्छेत्या अभवंस्तस्माच्छ्यैतं पशवो वै श्यैतम् ॥१३॥ पशुकाम एतेन स्तुवीत पशुमान् भवति ॥१४॥ प्रजापतिः प्रजा असृजत ताः सृष्टा अशोचंस्ताः श्यैतेन हुं मा इत्यभ्यजिघ्रत्ततो वै ताः समैधन्त समेधन्ते तांस्समां प्रजा यत्रैवं विद्वाञ्छ्यैतेनोद्गायति ॥१५॥ एष वै यजमानस्य प्रजापतिर्यदुद्गाता यच्छ्यैतेन हिङ्करोति प्रजापतिरेव भूत्वा प्रजा अभिजिघ्रति ॥१६॥ वसुनिधनं भवति पशवो वै वसु पशुष्वेव प्रतितिष्ठति ॥१७॥

॥ इति सप्तमोऽध्यायः॥



अष्टमोऽध्याय:

प्रथम: खण्ड:

आष्कारणिधनं काण्वं वषट्कारणिधनमभिचरणीयस्य ब्रह्मसाम कुर्य्यादभिनिधनम्माध्यन्दिने पवमाने ॥१॥ देवेषुर्वा एषा यद्वषट्कारोऽभीति वा इन्द्रो वृत्राय वज्रं प्राहरदभीत्येवास्मै वज्रं प्रहृत्य देवेष्वावषट्कारेण विध्यति ॥२॥ त्रैककुभं पशुकामाय ब्रह्मसाम कुर्य्यात् त्वमङ्गप्रशंसिष इत्येतासु ॥३॥ इन्द्रोयतीन् सालावृकेभ्य: प्रायच्छत्तेषां त्रय उदशिष्यन्त रायो वाजो बृहद्गिरि: पृथुरश्मिस्तेऽब्रुवन् कोन: पुत्रान् भरिष्यतीत्यहमितीन्द्रोऽब्रवीत्तां—स्त्रिककुबधिनिधायाचरत्स एतत्सामापश्यद्यत्त्रिककुबपश्यत्तस्मात्त्रैककुभम् ॥४॥ स आत्मानमेव पुनरुपाधावत्त्वमङ्ग प्रशंसिषो देव: शविष्ठमर्त्यन्नत्वदन्योमघवन्नस्ति च मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वच इति स एतेन च प्रगाथेनैतेन साम्ना सहस्रं पशूनसृजत तानेभ्य: प्रायच्छत्ते प्रत्यतिष्ठन् ॥५॥ य: पशुकाम: स्याद्य: प्रतिष्ठाकाम एतस्मिन्प्रगाथ एतेन साम्ना स्तुवीत प्रसहस्रं पशूनाप्नोति प्रतितिष्ठति ॥६॥ त्रिवीर्य्यं वा एतत्साम त्रीन्द्रियमैन्द्र्य ऋच ऐन्द्रंसामैन्द्रेति निधनमिन्द्रिय एव वीर्य्ये प्रतितिष्ठति ॥७॥ त्रैशोकं ज्योगामयाविने ब्रह्मसाम कुर्य्यात् ॥८॥ इमे वै लोका: सहासं—स्तेऽशोचंस्तेषामिन्द्र एतेन साम्ना शुचमपाहन्यत्त्रयाणां शोचतामपाहंस्तस्मात्त्रैशोकम् ॥९॥ यामस्मादपाहन् सा पुंश्चलीं प्राविशद्यामन्तरिक्षात्सा क्लीवं याममुष्मात्सैनस्विनम् ॥१०॥ तस्मात्तेषान्नाशैतव्या य एषामाशामेति तस्मा एव शुचोऽपभजते ॥११॥

शुचा वा एष विद्धो यस्य ज्योगामयति यत्त्रैशोकं ब्रह्मसाम भवति शुचमेवास्मादपहन्ति ॥१२॥ दिवेति निधनमुपयन्ति व्युष्टिर्वै दिवा व्येवास्मै वासयति ॥१३॥

द्वितीयः खण्डः

आष्कारणिधनं काण्वं प्रतिष्ठाकामाय ब्रह्मसाम कुर्य्यात् ॥१॥ कण्वो वा एतत्सामर्त्ते निधनमपश्यत् स न प्रत्यतिष्ठत्स वृषदंश्शस्याषिति क्षुवत उपाश्रृणोत्स तदेव निधनमपश्यत्ततो वै स प्रत्यतिष्ठद्यदेतत्साम भवति प्रतिष्ठित्यै ॥२॥ वसिष्ठस्य जनित्रं प्रजाकामाय ब्रह्मसाम कुर्य्यात् ॥३॥ वसिष्ठो वा एतत्पुत्रहतः सामापश्यत्स प्रजया पशुभिः प्राजायत यदेतत्साम भवति प्रजात्यै ॥४॥ आथर्वणं लोककामाय ब्रह्मसाम कुर्य्यात् ॥५॥ अथर्वाणो वा एतल्लोककामाः सामापश्यंस्तेनामर्त्यल्लोकमपश्यन् यदेतत्साम भवति स्वर्गस्य लोकस्य प्रजात्यै ॥६॥ अभीवर्त्तं भ्रातृव्यवते ब्रह्मसाम कुर्य्यात् ॥७॥ अभीवर्त्तेन वै देवा असुरानभ्यवर्त्तन्त यदभीवर्त्तो ब्रह्मसाम भवति भ्रातृव्य-स्याभिवृत्यै ॥८॥ श्रायन्तीयं यज्ञविभ्रष्टाय ब्रह्मसाम कुर्य्यात् ॥९॥ प्रजापतिरुषसमध्यैत्स्वां दुहितरं तस्य रेतः परापतत्तदस्यां न्यषिच्यत तदश्रीणादिदं मे माऽदुषदिति तत्सदकरोत्पशूनेव ॥१०॥ यच्छ्रायन्तीयं ब्रह्मसाम भवति श्रीणाति चैवैनंस्सच्च करोति ॥११॥

तृतीयः खण्डः

देवाश्च वा असुराश्चैषु लोकेष्वस्पर्द्धन्त ते देवाः प्रजापति-मुपाधावंस्तेभ्य एतत्साम प्रायच्छदेतेनैनान् कालयिष्यद्ध्वमिति तेनैनानेभ्यो लोकेभ्योऽकालयन्त यदकालयन्त तस्मात्कालेयम् ॥१॥

एभ्यो वै लोकेभ्यो भ्रातृव्यं कालयते य एवं वेद ।। २।। स्तोमो वै देवेषु तरो नामासीद्यज्ञोऽसुरेषु विदद्वसुस्ते देवास्तरोभिर्वो विदद्वसुमिति स्तोमेन यज्ञमसुराणामवृञ्जत ।। ३।। स्तोमेन यज्ञं भ्रातृव्यस्य वृङ्क्ते य एवं वेद ।। ४।। साध्या वै नाम आसꣳस्तेऽवछिद्य तृतीयसवनम्माध्यन्दिनेन सवनेन सह स्वर्गंल्लोकमायꣳस्तद्देवाः कालेयेन समतन्वन्यत्कालेयं भवति तृतीयसवनस्य सन्तत्यै ।। ५।। विदद्वसु वै तृतीय सवनं यत्तरोभिर्वो विदद्वसुमिति प्रस्तौति तृतीय सवनमेव तदभ्यति वदति ।। ६।। सर्व्वाणि वै रूपाणि कालेयं यत्पदप्रस्तावन्तेन राथन्तरं यद्बृहतो रोहान् रोहति तेन बार्हतं यत् स्तोभवान् प्रतिहारस्तेन बार्हतं यद्रवदिडन्तेन राथन्तरꣳसर्वेष्वेव रूपेषु प्रतितिष्ठति ।। ७।।

चतुर्थः खण्डः

साध्या वै नाम देवा आसꣳस्ते सर्व्वेण यज्ञेन सह स्वर्गंल्लोकमायꣳस्ते देवाश्छन्दाꣳस्यब्रुवन्सोममाहरतेति ते जगतीं प्राहिण्वन्सा त्रीण्यक्षराणि हित्वैकाक्षरा भूत्वागच्छत्त्रिष्टुभं प्राहिण्वन् सैकमक्षरꣳहित्वाः त्र्यक्षरा भूत्वा गच्छद्गायत्रीं प्राहिण्वꣳश्चतुरक्षराणि वै तर्हि छन्दाꣳस्यासन् सा तानि चाक्षराणि हरन्त्यागच्छदष्टाक्षरा भूत्वा त्रीणि च सवनानि हस्ताभ्यां द्वे सवने दन्तैर्दꣳष्ट्वा तृतीयसवनं तस्माद्द्वे अꣳशुमती सवने धीतं तृतीयसवनं दन्तैर्हि तद्दꣳष्ट्वा धयन्त्यहरत्तस्य ये ह्रियमाणस्याꣳशवः परापतꣳस्ते पूतीका अभवन् यानि पुष्पाण्यवाशीयन्त तान्यर्ज्जुनानि यत्प्राप्रोथत्ते प्रप्रोथास्त–स्मात्तृतीयसवन आशिरमवनयन्ति यमेव तं गावः सोममदन्ति तस्य तँ रसमवनयन्ति ससोमत्वाय ।। १।।

ते त्रिष्टुब्जगत्यौ गायत्रीमब्रूतामुप त्वायावेति साब्रवीत् किं मे ततः स्यादिति यत्कामय स इत्यब्रूताꣳसाब्रवीन्मम सर्व्वं प्रातःसवनमहमुत्तरे सवने प्रणयानीति तस्माद्गायत्रं प्रातःसवनं गायत्र्युत्तरे सवने प्रणयति ।। २।। तां त्रिष्टुप् त्रिभिरक्षरैरुपैत्सैकादशाक्षरा भूत्वा प्राजायत ताञ्जगत्येकेनाक्षरेणोपैत्सा द्वादशाक्षरा भूत्वा प्राजायत ।। ३।। तस्मादाहुर्गायित्री वाव सर्व्वाणि छन्दाँसि गायत्री ह्येतान् पोषान् पुष्यन्त्यैदिति ।। ४।। इन्द्रस्तृतीयसवनाद्बीभत्समान उदक्रामत्तद्देवाः स्वादिष्ठयेत्यस्वदयन्मदिष्ठयेति मद्वदकुर्वन् पवस्व सोम धारयेत्यपावयन्निन्द्राय पातवे सुत इति ततो वै तदिन्द्र उपावर्त्तत यत् स्वादिष्ठया मदिष्ठयेति प्रस्तौति तृतीयसवनस्य सेन्द्रत्वाय ।। ५।। स्वादिष्ठा वै देवेषु पशव आसन् मदिष्ठा असुरेषु ते देवाः स्वादिष्ठया मदिष्ठयेति पशूनसुराणामवृञ्जत ।। ६।। पशून् भ्रातृव्यस्य वृङ्क्ते य एवं वेद ।। ७।। तासु सꣳहितम् ।। ८।। साध्या वै नाम देवा आसꣳस्तेऽवछिद्य तृतीयसवनम्माध्यन्दिनेन सवनेन सह स्वर्गंल्लोकमायꣳस्तद्देवाः सꣳहितेन समदधुर्य्यत्समदधुस्तस्मात्सꣳहितम् ।। ९।। कालेयं पुरस्ताद्भवति सꣳहितमुपरिष्टादेताभ्याꣳहि तृतीयसवनꣳसन्तायते ।।१०।। सर्व्वाणि वै रूपाणि सꣳहितं यत्पदप्रस्तावन्तेन राथन्तरं यद्बृहतो रोहान्रोहति तेन बार्हतं यत्पदनिधन्तेन राथन्तरꣳसर्वेष्वेव रूपेषु प्रतितिष्ठति ।।११।।

पञ्चमः खण्डः

उष्णिक्ककुभावेते भवतः ।।१।। उष्णिक्ककुब्भ्यां वा इन्द्रो वृत्राय वज्रं प्राहरत्ककुभि पराक्रमतोष्णिहा प्राहरत्तस्मात् ककुभो मध्यमं पदं भूयिष्ठाक्षरं पराक्रमणꣳहि तदभि समौहत्तस्मादुष्णिह उत्तमं पदं भूयिष्ठाक्षरं पुरो गुरुरिव हि वज्रः ।। २।।

वज्रं भ्रातृव्याय प्रहरति य एवं वेद ।।३।। नासिके वा एते यज्ञस्य यदुष्णिक्ककुभौ तस्मात् समानं छन्दः सती नानायज्ञं वहतस्तस्मात् समानाया नासिकायाः सत्या नाना प्राणावुच्चरतः ।।४।। प्राणा वा उष्णिक्ककुभौ तस्मात्ताभ्यान्न वषट्कुर्वन्ति यद्वषट्कुर्य्युः प्राणानग्नौ प्रदध्युः ।।५।। तासु सफं विफमिव तृतीयसवनं तृतीयसवनस्य सफत्वायाथैतत्पौष्कलमेतेन वै प्रजापतिः पुष्कलान् पशूनसृजत तेषु रूपमदधाद्यदेतत्साम भवति पशुष्वेव रूपं-दधाति ।।६।। पुरोजिती वो अन्धस इति पद्या चाक्षर्य्या च विराजौ भवतः पद्यया वै देवाः स्वर्गँल्लोकमायन्नक्षर्यया ऋषयो नु प्राजानन्यदेते पद्या चाक्षर्य्या च विराजौ भवतः स्वर्गस्य लोकस्य प्रज्ञात्यै ।।७।। तासु श्यावाश्वम् ।।८।। श्यावाश्वमार्वनानसꣳ-सत्रमासीनं धन्वोदवहन् स एतत्सामापश्यत्तेन वृष्टिमसृजत ततो वै स प्रत्यतिष्ठत्ततो गातुमविन्दत गातुविद्वा एतत्साम ।।९।। विन्दते गातुं प्रतितिष्ठत्येतेन तुष्टुवानः ।।१०।। इन्द्रस्तृतीयसवनाद् वीभत्समान उदक्रामत्तं देवाः श्यावाश्वेनैहायि एहियेत्यन्वाह्वयन् स उपावर्त्तत यदेतत्साम भवति तृतीयसवनस्य सेन्द्रत्वाय ।।११।। अथैतदान्धीगवमन्धीगुर्वा एतत्पशुकामः सामापश्यत्तेन सहस्रं पशुनसृजत यदेतत्साम भवति पशूनां पुष्ट्यै मध्ये निधनमैडम्भवत्येतेन वै तृतीय सवनं प्रतिष्ठितं यन्मध्ये निधनमैडन्न स्यादप्रतिष्ठितं तृतीयसवनꣳस्यात् ।।१२।। दशाक्षरं मध्यतो निधनमुपयन्ति दशाक्षरा विराड्विराज्येव प्रतितिष्ठति ।।१३।। अभिप्रियाणि पवत इति कावं प्राजापत्यꣳसाम ।।१४।। प्रजा वै प्रियाणि पशवः प्रियाणि प्रजायामेव पशुषु प्रतितिष्ठति ।।१५।। रश्मी वा एतौ यज्ञस्य यदौशनकावे देवकोशो वा एष यज्ञमभिसमुब्जितो यदेते अन्ततो भवतो यज्ञस्यारिष्ट्यै ।।१६।।

षष्ठः खण्डः

देवा वै ब्रह्म व्यभजन्त तस्य योरसोऽत्यरिच्यत तद्यज्ञायज्ञीयमभवत् ।।१।। ब्रह्मणो वा एष रसो यद्यज्ञायज्ञीयं यद्यज्ञायज्ञीयेन स्तुवन्ति ब्रह्मण एव रसे यज्ञं प्रतिष्ठापयन्ति ।।२।। योनिर्वै यज्ञायज्ञीयमेतस्माद्वै योनेः प्रजापतिर्य्यज्ञमसृजत यद्यज्ञं यज्ञमसृजत तस्माद्यज्ञायज्ञीयम् ।।३।। तस्माद्वा एतेन पुरा ब्राह्मणा बहिष्पवमानमस्तोषत योनेर्य्यज्ञं प्रतनवा महा इति यज्ञन्ततः स्तुवन्ति योनौ यज्ञं प्रतिष्ठापयन्ति ।।४।। असुरेषु वै सर्वो यज्ञं आसीत्ते देवा यज्ञायज्ञीयमपश्यꣳस्तेषां यज्ञायज्ञा वो अग्नय इत्यग्निहोत्रमवृञ्जत गिरा गिरा च दक्षस इति दर्शपूर्णमासौ प्रप्रवयममृतञ्जातवेदसमिति चातुर्मास्यानि प्रियम्मित्रन्नशꣳसिषमिति सौम्यमध्वरम् ।।५।। यज्ञा वो अग्नये गिरा च दक्षसे प्र वयममृतञ्जातवेदसम्प्रियम्मित्रं नशꣳसिषमिति वै तर्हि छन्दाꣳस्यासꣳस्ते देवा अभ्यारम्भमभि निवर्त्यं छन्दोभिर्य्यज्ञमसुराणामवृञ्जत ।।६।। छन्दोभिर्यज्ञं भ्रातृव्यस्य वृङ्क्ते य एवं वेद ।।७।। एतद्धस्म वा आह कूशाम्बः स्वायवो ब्रह्मा लातव्यः कꣳस्विदद्य शिशुमारी यज्ञपथेऽप्यस्ता गरिष्यति ।।८।। एषा वै शिशुमारी यज्ञपथेऽप्यस्ता यज्ञायज्ञीयं यद्गिरागिरेत्याहात्मानं तदुद्गातागिरति ।।९।। ऐरङ्कृत्वोद्गेयमिरायां यज्ञं प्रतिष्ठापयत्य– प्रभायुक उद्गाता भवति ।।१०।। वैश्वानरे वा एतदुद्गातात्मानं प्रदधाति यत्प्रप्रवयमित्याह प्रप्रीं वयमिति वक्तव्यं वैश्वानरमेव परिक्रामति ।।११।। यो वै निह्नुवानं छन्द उपैति पापीयानुज्जगिवान् भवत्ये तद्वै निह्नुवानं छन्दोयन्न शꣳसिषमिति नुशꣳसिषमिति वक्तव्यꣳसुशꣳसिषमिति वा न निह्नुवानं छन्द उपैति वसीयानुज्जगिवान् भवति ।।१२।।

यस्य वै यज्ञा वागन्ता भवन्ति वाचश्छिद्रेण स्रवन्त्येते वै यज्ञा वागन्ता ये यज्ञायज्ञीयान्ता एतद्वाचश्छिद्रं यदनृतं यदग्निष्टोमयाज्यनृतमाह तदन्वस्य यज्ञः स्रवत्यक्षरेणान्ततः प्रतिष्ठाप्यमक्षरेणैव यज्ञस्य छिद्रमपि दधाति ।।१३।। विराजो वा एतद्रूपं यदक्षरं विराज्येवान्ततः प्रतितिष्ठति ।।१४।।

सप्तमः खण्डः

इतो वै प्रातरूर्द्ध्वानि छन्दांꣳसि युज्यन्तेऽमुतोऽर्वाञ्चि यज्ञायज्ञीयस्य स्तोत्रे युज्यन्ते यज्ञा वो अग्नये गिरा च दक्षस इति द्वादशाक्षरं प्रवयममृतञ्जातवेदसमित्येकादशाक्षरं प्रियम्मित्रन्न शꣳसिषमित्यष्टाक्षरम् ।।१।। अनुष्टुभमुत्तमाꣳसम्पादयतीयं वा अनुष्टुबस्यामेव प्रतितिष्ठति ।।२।। वाग्वा अनुष्टुब्वाच्येव प्रतितिष्ठति ज्यैष्ठ्यं वा अनुष्टुब्जैष्ठ्य एव प्रतितिष्ठति ।।३।। कथमिव यज्ञायज्ञीयङ्गेयमित्याहुर्यथाऽनड्वान् प्रस्नावयमाण इत्थमिव चेत्थमिव चेति ।।४।। वैश्वानरं वा एतदुद्गाताऽनु प्रसीदन्नेतीत्या–हुर्यद्यज्ञायज्ञीयस्यर्च्चꣳसंप्रत्याहेति परिक्रामतेवोद्गेयं वैश्वानरमेव परिक्रामति ।।५।। वैश्वानरे वा एतदध्वर्य्युः सदस्यानभिसृजति यद्यज्ञायज्ञीयस्य स्तोत्रमुपावर्त्तयति प्रावृतेनोद्गेयं वैश्वानरेणा–नभिदाहाय ।।६।। न ह तु वै पितरः प्रावृतञ्जानन्ति यज्ञायज्ञीयस्य वै स्तोत्रे पितरो यथायथं जिज्ञासन्त आकर्णाभ्यां प्रावृत्यन्तदेव प्रावृतन्तदप्रावृतञ्जानन्ति पितरो न वैश्वानरो हिनस्ति ।।७।। अपः पश्चात् पत्न्य उपसृजन्ति वैश्वानरमेव तच्छमयन्त्यापोहि शान्तिः ।।८।। अथो रेत एव तत्सिञ्चन्त्यापोहि रेतः ।।९।। दक्षिणानूरूनभिषिञ्चन्ति दक्षिणतो हि रेतः सिच्यते ।।१०।। महदिव प्रत्यूह्यम्मन एवास्य तज्जनयन्ति ।।११।।

उद्गात्रा पत्नीः संख्यापयन्ति रेतोधेयाय ।।१२।। हिङ्कारं प्रति संख्यापयन्ति हिङ्कृताद्धि रेतोऽधीयत ।।१३।। आतृतीयायाः संख्यापयन्ति त्रिवृद्धि रेतः ।।१४।।

अष्टमः खण्डः

देवा वा अग्निष्टोममभिजित्योक्थानि नाशक्नुवन्नभिजेतुं तेऽग्निमब्रुवंस्त्वया मुखेनेदञ्जयामेति सोऽब्रवीत् किम्मे ततः स्यादिति यत्कामयस इत्यब्रुवन् सोऽब्रवीन्मद्देवत्यासूक्थानि प्रणयानिति ।।१।। तस्मादाग्नेयोषूक्थानि प्रणयन्ति ।।२।। तस्मादु गायत्रीषु गायत्रछन्दा ह्यग्निः ।।३।। तेऽग्निम्मुखं कृत्वा साकमश्वेनाभ्यक्रामन् यत्साकमश्वेनाभ्यक्रामंस्तस्मात् साकमश्वम् ।।४।। तस्मात्साक-मश्वेनोक्थानि प्रणयन्त्येतेन हि तान्यग्रेऽभ्यजयन् ।।५।। स इन्द्रोऽब्रवीत्कश्चाहञ्चेदमन्ववैष्याव इत्यहञ्चेति वरुणस्तं वरुणोऽन्व-तिष्ठदिन्द्र आहरत्तस्मादैन्द्रावारुणमनुशस्यते ।।६।। स एवाब्रवीत्कश्चाहं चेदमन्ववैष्याव इत्यहञ्चेति बृहस्पतिस्तं बृहस्पतिरन्वतिष्ठदिन्द्र आहरत्तस्मादैन्द्राबार्हस्पत्यमनुशस्यते । स एवाब्रवीत्कश्चाहं चेदमन्ववैष्याव इत्यहञ्चेति विष्णुस्तं विष्णुरन्वतिष्ठदिन्द्र आहरत्तस्मादैन्द्रावैष्णवमनुशस्यते ।।७।। पशून् वा एभ्यस्ता-नाहरत्पशवो वा उक्थानि पशुकाम उक्थेन स्तुवीत पशुमान् भवति ।।८।। बृहता वा इन्द्रो वृत्राय वज्रं प्राहरत्तस्य तेजः परापतत्तत्सौभरमभवत् ।।९।। जामि वा एतद्यज्ञे क्रियत इत्याहुर्य्यद्रथन्तरं पृष्ठंरथन्तरंसन्धिर्न्नान्तरा बृहता स्तुवन्तीति यत् सौभरेण स्तुवन्ति बृहतैव तदन्तरा स्तुवन्ति बृहतो ह्येतत्तेजो यत्सौभरम् ।।१०।।

यदि बृहत्सामातिरात्रः स्यात्सौभरमुक्थानां ब्रह्मसाम कार्य्यं बृहदेव तत्तेजसा समर्द्धयति ।।११।। यदि रथन्तरसाम्ना सौभरं कुर्य्यादजामितायै ।।१२।। देवानां वै स्वर्गंल्लोकं यन्तां दिशोऽव्लीयन्त ताः सौभरेणो इत्युदस्तभ्नुवꣳस्ततो वै ता अदृꣳहन्त ततः प्रत्यतिष्ठꣳस्ततः स्वर्गंल्लोकं प्राजानन्यः स्वर्गकामः स्याद्यः प्रतिष्ठाकामः सौभरेण स्तुवीत प्रस्वर्गंल्लोकं जानाति प्रतितिष्ठति ।।१३।। प्रजापतिः प्रजा असृजत ताः सृष्टा आशनायꣳस्ताभ्यः सौभरेणोर्गित्यन्नं प्रायच्छत्ततो वै ताः समैधन्त ।।१४।। समेधन्ते ताꣳसमां प्रजा यत्रैवं विद्वान् सौभरेणोद्गायति ।।१५।। ता अब्रुवन्· सुभृतन्नोऽभार्षीरिति तस्मात्सौभरम् ।।१६।। वृष्टिं वा आभ्यस्तां प्रायच्छदन्नमेव ।।१७।। यो वृष्टिकामः स्याद्योऽन्नाद्यकामोयः स्वर्गकामः सौभरेण स्तुवीत ।।१८।। हीषिति वृष्टिकामाय निधनं कुर्य्यादूर्गित्यन्नाद्यकामायो इति स्वर्गकामाय ।।१९।। सर्व्वे वै कामाः सौभरꣳसर्वेष्वेव कामेषु प्रतितिष्ठति ।।२०।। अथैतन्नार्म्मेधम् ।।२१।। नृमेधसमाङ्गि-रसꣳसत्रमासीनꣳश्वभिरभ्याह्वयन् सोऽग्निमुपाधावत्पाहि नो अग्न एकयेति तं वैश्वानरः पर्य्युदतिष्ठत्ततो वै सप्रत्यतिष्ठत्ततोगातु-मविन्दत् ।।२२।। गातुविद्वा एतत्साम विन्दते गातुं प्रतितिष्ठत्येतेन तुष्टुवानः ।।२३।। विच्छन्दसऋचो भवन्त्यहोरात्रयो रूपम् ।।२४।। नैव ह्येतदह्नोरूपं न रात्रेर्य्यदुक्थानाम् ।।२५।। ककुभ्-प्रथमाथोऽष्णिगथ पुरउष्णिगनुष्टुप्तेनानुष्टुभो नयन्त्यच्छावाक-साम्नः ।।२६।।

नवमः खण्डः

हारिवर्णं भवति ।।१।।

असुरा वा एषु लोकेष्वासꣳस्तान्देवा हरिश्रियमित्य-स्माल्लोकात्प्राणुदन्त विराजसीत्यन्तरिक्षाद्दिवेदिव इत्यमुष्मात् ॥ २॥ तद्य एवं वेदैभ्यो लोकेभ्यो भ्रातृव्यं प्रणुद्येमाँ-ल्लोकानभ्यारोहति ॥ ३॥ हरिवर्णो वा एतत्पशुकामः सामापश्यत्तेन सहस्रं पशूनसृजत यदेतत्साम भवति पशूनां पुष्ट्यै ॥ ४॥ अङ्गिरसः स्वर्गँल्लोकं यतो रक्षाꣳस्यन्वसचन्त तान्येतेन हरिवर्णोऽपाहन्त यदेतत्साम भवति रक्षसामपहत्यै ॥ ५॥ पृष्ठानि वा असृज्यन्त तेषां यत्तेजो रसोऽत्यरिच्यत तद्देवाः समभरꣳस्तदुद्वꣳ-शीयमभवत् ॥ ६॥ सर्वेषां वा एतत् पृष्ठानां तेजो यदुद्वꣳशीयं-तस्माद्वा एतत्पुरा सजाताय नाक्रन् पापवसीयसो विधृत्यै ॥ ७॥ एषह्येव पृष्ठैस्तुष्टुवानो य उदुद्वꣳशीयेन स्तुते ॥ ८॥ सर्व्वाणि वै रूपाण्युद्वꣳशीयम् ॥ ९॥ गायन्ति त्वा गायत्रिण एति रथन्तरस्य रूपमेति हि रथन्तरम् ॥ १०॥ आदिर्बृहत ऊर्ध्वमिव हि बृहत् ॥ ११॥ परिष्टोभो वैरूपस्य परिष्टुभं हि वैरूपम् ॥ १२॥ अनुतोदो वैराजस्यानुतुन्नं हि वैराजम् ॥ १३॥ अर्द्धेडा शक्वरीणामतिस्वारो रेवतीनाम् ॥ १४॥ अर्द्धेडया वै देवा असुरानवहत्याऽतिस्वारेण स्वर्गं लोकमारोहन् ॥ १५॥ तद्य एवं वेदार्द्धेडयैव भ्रातृव्यमवहत्यातिस्वारेण स्वर्गं लोकमारोहति ॥ १६॥ अर्द्धेडया वै पूर्व्वं यज्ञꣳसꣳस्थापयन्त्यतिस्वारेणोत्तरमारभन्ते ॥ १७॥ उपैनमुत्तरो यज्ञो नमति य एवं वेद ॥ १८॥ पाङ्क्तं वा एतत्साम पाङ्क्तो यज्ञः पाङ्क्ताः पशवो यज्ञ एव पशुषु प्रतितिष्ठति ॥ १९॥ आष्टादꣳष्ट्रे ऋद्धिकामाय कुर्य्यात् ॥ २०॥ अष्टादꣳष्ट्रो वैरूपोऽपुत्रोऽप्रजा अजीर्य्यत्स इमाँल्लोकान्विचिच्छिदिवाँ अमन्यत स एते जरसि सामनी अपश्यत्तयोरप्रयोगादविभेत् सोऽब्रवीद्ध-ध्नवद्योमे सामभ्याꣳस्तवाता इति ॥ २१॥

ऋषेर्व्वा एतत्प्राशोद्भूतं यदाष्टादंश्ष्ट्रे भवत ऋध्या एव ।। २२।।

दशमः खण्डः

गायत्रीषु ब्रह्मवर्च्चसकामायोक्थानि प्रणयेयुर्गायत्र्यां ब्रह्मसामाऽनुष्टुभ्यच्छावाकसाम सैषा गायत्री सम्पद्यते ।।१।। तेजो ब्रह्मवर्च्चसं गायत्री तेज एव ब्रह्मवर्च्चसमवरुन्धे ।। २।। गायत्रीषु पशुकामायोक्थानि प्रणयेयुरुष्णिहि ब्रह्मसामाऽनुष्टुभ्यच्छावाकसाम सैषोष्णिक्सम्पद्यते ।। ३।। पशवो वा उष्णिक् पशूनेवावरुन्धे ।। ४।। गायत्रीषु पुरुषकामायोक्थानि प्रणयेयुः ककुभि ब्रह्मसामाऽनुष्टुभ्यच्छावाकसाम सैषा ककुप् सम्पद्यते ।। ५।। पुरुषो वै ककुप् पुरुषानेवावरुन्धे ।। ६।। विराट्स्वन्नाद्यकामायोक्थानि प्रणयेयुरुष्णिहि ब्रह्मसामाऽनुष्टुभ्यच्छावाकसाम सैषा विराट् सम्पद्यते ।। ७।। अन्नं विराडन्नाद्यमेवाऽवरुन्धे ।। ८।। अक्षरपङ्क्तिषु ज्यैष्ठ्यकामायोक्थानि प्रणयेयुरुष्णिहि ब्रह्मसामाऽनुष्टुभ्यच्छावाकसाम सैषानुष्टुप् सम्पद्यते ।। ९।। ज्यैष्ठ्यं वा अनुष्टुब् ज्यैष्ठ्यमेवाऽ—वरुन्धे ।।१०।।

।।इति अष्टमोऽध्यायः ।।



नवमोऽध्यायः

प्रथमः खण्डः

देवा वा उक्थान्यभिजित्य रात्रिन्नाशक्नुवन्नभिजेतुन्तेऽ—सुरान्रात्रिन्तमःप्रविष्टान्नानुव्यपश्यंस्तएतमनुष्टुप्शिरसं प्रगाथमपश्यन् विराजं ज्योतिस्तान् विराजा ज्योतिषाऽनुपश्यन्तोऽनुष्टुभावज्रेण रात्रेर्निराघ्नन् ॥ १ ॥ यदेषोऽनुष्टुप्शिराः प्रगाथो भवति विराजैव ज्योतिषाऽनुपश्यन्ननुष्टुभा वज्रेण रात्रेर्भ्रातृव्यं निर्हन्ति ॥ २ ॥ तान् समन्तं पर्य्यायं प्राणुदन्त यत् पर्य्यायं प्राणुदन्त तत्पर्य्यायाणां पर्य्यायित्वम् ॥ ३ ॥ प्रथमानि पदानि पुनरादीनि भवन्ति प्रथमस्य पर्य्यायस्य ॥ ४ ॥ प्रथमैर्हि पदैः पुनरादाय प्रथमरात्रात्प्राणुदन्त ॥ ५ ॥ पान्तमावो अन्धस इति प्रस्तौति ॥ ६ ॥ अहर्वै पान्तमन्धोरात्रिरह्नैव तद्रात्रिमारभन्ते ॥ ७ ॥ तासु वैतहव्यम् ॥ ८ ॥ वीतहव्यः श्रायसो ज्योग्निरुद्ध एव तत्सामापश्यत्सोऽवगच्छत्प्रत्यतिष्ठदवगच्छति प्रतितिष्ठत्येतेन तुष्टुवानः ॥ ९ ॥ तमइव वा एते प्रविशन्ति ये रात्रिमुपयन्ति यदोको निधनंरात्रेर्मुखे भवति प्रज्ञात्यै ॥ १० ॥ यदा वै पुरुषः स्वमोक आगच्छति सर्वं तर्हि प्रजानाति सर्वमस्मै दिवा भवति ॥ ११ ॥ ते मध्यमं पर्यायमश्रयन्त तेषामौर्ध्वसद्मनेन वाचमवृञ्जत ॥ १२ ॥ वाचं भ्रातृव्यस्य वृङ्क्ते य एवं वेद ॥ १३ ॥ त्रिणिधनं भवति ॥ १४ ॥ यथा वा अह्नो माध्यन्दिनंसवनं त्रिणिधनायतनमेवमेष रात्रेर्मध्यमः पर्य्यायस्त्रिणिधनायतनः सलोमत्वाय ॥ १५ ॥ मध्यमानि पदानि पुनरादीनि भवन्ति मध्यमस्य पर्य्यायस्य मध्यमैर्हि पदैः पुनरादायम्मध्यम—रात्रात्प्राणुरुदन्त ॥ १६ ॥

त उत्तमं पर्य्यायमश्रयन्त तेषां घृतश्चुन्निधनेन पशूनवृञ्जत पशवो वै घृतश्च्युतः ॥१७॥ पशून् भ्रातृव्यस्य वृङ्क्ते य एवं वेद ॥१८॥ उत्तमानि पदानि पुनरादीनि भवन्त्युत्तमस्य पर्य्याय-स्योत्तमैर्हि पदैः पुनरादायमुत्तमरात्रात्प्राणुदन्त ॥१९॥ तान् सन्धिनाऽभिपलायन्त ॥ २०॥ तानाश्विनेनाऽसंहाय्यमगमयन् ॥ २१॥ असंहाय्यं भ्रातृव्यं गमयति य एवं वेद ॥२२॥ एषा वा अग्निष्टोमस्य सम्मायद्रात्रिः ॥२३॥ द्वादशस्तोत्राण्यग्निष्टोमो द्वादशस्तोत्राणि रात्रिः ॥२४॥ एषा वा उक्थस्य सम्मा-यद्रात्रिः ॥२५॥ त्रीण्युक्थानि त्रिदेवत्यः सन्धिः ॥२६॥ यथा वा अह्न उक्थान्येवमेषरात्रेः सन्धिर्नानारूपाण्यह्न उक्थानि नानारूपा एते तृचा भवन्ति ॥२७॥ रथन्तरं प्रतिष्ठाकामाय सन्धिं कुर्य्यात् ॥२८॥ इयं वै रथन्तरमस्यामेव प्रतितिष्ठति॥२९॥ बृहत् स्वर्गकामाय सन्धिं कुर्यात् ॥३०॥ स्वर्गोलोको बृहत्स्वर्ग एव लोके प्रतितिष्ठति ॥३१॥ वारवन्तीयं वा वामदेव्यं वा श्रुद्ध्यं वै तेषामेकं पशुकामाय सन्धिं कुर्य्यात् ॥३२॥ पशवो वा एतानि सामानि पशुष्वेव प्रतितिष्ठति ॥३३॥ आश्विनं-होतानुशँसति ॥३४॥ प्रजापतिर्वा एतत्सहस्रमसृजत तद्देवेभ्यः प्रायच्छत्तस्मिन्न समराधयंस्ते सूर्य्यंकाष्ठाङ्कृत्त्वाऽऽ-जिमधावन् ॥३५॥ तेषामश्विनौ प्रथमावधावतां तावन्ववदन् सह-नोऽस्त्विति तावब्रूतां किं ततः स्यादिति यत्कामयेथे इत्य-ब्रुवंस्तावब्रूतामस्मद्देवत्यमिदमुक्थमुच्याता इति तस्मादाश्विन-मुच्यते ॥३६॥ सर्वाः खलु देवताः शस्यन्ते ॥३७॥ क्षिप्रंशस्यमाजिमिवह्योते धावन्त्यासूर्यस्योदेतोः शंसेत्सूर्य्यंहि काष्ठामकुर्वत ॥३८॥

द्वितीयः खण्डः

पान्तमा वो अन्धस इति वैतहव्यमन्यक्षेत्रं वा एते प्रयन्ति ये रात्रिमुपयन्ति यदोकोनिधनꣳरात्रेर्मुख भवत्योकसोऽप्रच्यावाय ।।१।। प्र व इन्द्राय मादनमिति गौरीवितम् ।।२।। ब्रह्म यद्देवा व्यकुर्व्वत ततो यदत्यरिच्यत तद्गौरीवितमभवत् ।।३।। अतिरिक्तं गौरीवितमतिरिक्तमेतत् स्तोत्रं यद्रात्रिरतिरिक्त एवातिरिक्तं दधाति ।।४।। वयमु त्वा तदिदर्था इति काण्वम् ।।५।। एतेन वै कण्व इन्द्रस्य सांविद्यमगच्छदिन्द्रस्यैवैतेन सांविद्यं गच्छति ।।६।। इन्द्राय मद्वने सुतमिति श्रौतकक्षं क्षत्रसाम प्रक्षत्रमेवैतेन भवति ।।७।। अयं त इन्द्र सोम इति दैवोदासम् ।।८।। अग्निष्टोमेन वै देवा इमं लोकमभ्यजयन्नन्तरिक्षमुक्थेनाऽतिरात्रेणामुं त इमं लोकं पुनरभ्यकामयन्त त इहेत्यस्मिँल्लोके प्रत्यतिष्ठन् यदेतत्साम भवति प्रतिष्ठित्यै ।।९।। ऊर्ध्वसद्मनमपि सर्व्वरीषु प्रोहन्ति ।।१०।। असुरा वा एषु लोकेष्वासꣳस्तान्देवा ऊर्ध्वसद्मनेनैभ्यो लोकेभ्यः प्राणुदन्त ।।११।। तद्य एवं वेदैभ्यो लोकेभ्यो भ्रातृव्यं प्रणुद्य स्व आयतने सत्रमास्ते ।।१२।। आ तू न इन्द्र क्षुमन्त–मित्याकूपारम् ।।१३।। अकूपाराऽऽङ्गिरस्यासीत्तस्या यथा गोधायास्त्वगेवं त्वगासीत्तामेतेन त्रिःसाम्नेन्द्रः पूत्वा सूर्य्यत्वच–समकरोत्तद्वाव सा तर्ह्यकामयत यत्कामा एतेन साम्ना स्तुवते स एभ्यः कामः समृध्यते ।।१४।। अभि त्वा वृषभा सुतं इत्यार्षभं क्षत्रसाम क्षत्रमेवैतेन भवति ।।१५।। इदं वसो सुतमन्ध इति गारमेतेन वै गर इन्द्रमप्रीणात्प्रीत एवाऽस्यैतेनेन्द्रो भवति ।।१६।। इदꣳह्यन्वोजसेति माधुच्छन्दसं प्रजापतेर्व्वा एषा तनूरयातयाम्नी प्रयुज्यते ।।१७।।

आ त्वेता निषीदतेति दैवातिथम् ।।१८।। देवातिथिः सपुत्रोऽशनायंश्चरन्नरण्य उर्व्वारूण्यविन्दत्तान्येतेन साम्नोपासीदत्ता अस्मै गावः पृश्नयो भूत्वोदतिष्ठन् यदेतत्साम भवति पशूनां पुष्ट्यै ।।१९।। योगे योगे तवस्तरमिति सौमेधंश्रात्रिषाम रात्रेरेव समृद्ध्यै ।। २०।। इन्द्र सुतेषु सोमेष्विति कौत्सम् ।। २१।। कुत्सश्च लुशश्चेन्द्रं व्यह्वयेतांस इन्द्रः कुत्समुपावर्त्तत तंशतेन वाद्ध्र्रीभिराण्डयोरबध्नात्तं लुशोऽभ्यवदत् प्रमुच्यस्व परि कुत्सादिहागहि किमु त्वावानाण्डयोर्बद्ध आसाता इति ताः संच्छिद्य प्राद्रवत्स एतत् कुत्सः सामाऽपश्यत्तेनैनमन्ववदत्स उपावर्त्तत ।। २२।। यदेतत्साम भवति सेन्द्रत्वाय ।। २३।।

तृतीयः खण्डः

यदि सत्राय दीक्षेरन्नथ साम्युत्तिष्ठेत्सोममपभज्य विश्वजिताऽतिरात्रेण यजेत सर्ववेदसेन सर्वस्मा एव दीक्षते सर्वमाप्नोति ।।१।। या इद्दक्षिणा ददाति ताभिरति प्रयुङ्क्ते ।। २।। यदि पर्य्यायैरस्तुतमभिव्युच्छेत्पञ्चदशभिर्होत्रे स्तुयुः पञ्चभिः पञ्चभिरितरेभ्यः ।। ३।। अग्ने विवस्वदुषस इति सन्धिना स्तुयुः प्राणा वै त्रिवृत् स्तोमानां प्रतिष्ठा रथन्तरंसाम्नां प्राणांश्चैवोपयन्ति ।।४।। षष्टिञ्च त्रीणि च शतानि होता शंसति ।।५।। तावत्यः संवत्सरस्य रात्रयः संवत्सरसम्मिताभिरेव तदृग्भिराश्विनमाप्नोति ।।६।। यदर्वाक् स्तुवन्ति तदस्तुतं यत्सम्प्रति स्तुवन्ति तत् स्तुतं यदतिष्टुवन्ति तत्सुष्टुतम् ।।७।। यद्यर्वाक् स्तुयुर्यावतीभिर्न स्तुयुस्तावतीभिर्वाऽतिष्टुयुर्भूयोऽक्षराभिर्वा ।।८।। यद्यतिष्टुयुर्यावतीभिरतिष्टुयुस्तावतीभिर्वा न स्तुयुः कनीयोऽक्षराभिर्वा ।।९।।

यद्यर्वाक् स्तुयुस्त्रीडमग्निष्टोमसाम कार्य्यं निधनमेकेडा ये द्वे ताभ्यामेव तत्समं क्रियते ।।१०।। यद्यतिष्टुयुः स्वारमग्निष्टोमसाम कार्यमूनमिव वा एतत्साम्नोयत् स्वरस्तेनैव तत्समं क्रियते ।।११।।

चतुर्थः खण्डः

यदि सोमौ सꣳसतौ स्यातां महति रात्रेः प्रातरनुवाकमुपाकुर्यात् ।।१।। पूर्वोवाचं पूर्वश्छन्दाꣳसि पूर्वोदेवता वृङ्क्ते ।।२।। वृषण्वतीं प्रतिपदं कुर्यादिन्द्रो वै वृषा प्रातः सवनादेवैषामिन्द्रं वृङ्क्ते ।। ३।। अथो खल्वाहुः सवनमुखे सवनमुखे कार्या सवनमुखात् सवनमुखादेवैषामिन्द्रं वृङ्क्ते ।।४।। सुसमिद्धे होतव्यमग्निर्वै सर्वा देवताः सर्वाएव देवताः पश्यञ्जुहोति ।।५।। संवेशायोपवेशाय गायत्र्यै छन्दसेऽभिभूतये स्वाहा संवेशायोपवेशाय त्रिष्टुभे छन्दसेऽभिभूतये स्वाहा संवेशायोपवेशाय जगत्यै छन्दसेऽभिभूतये स्वाहेति जुहोति ।।६।। छन्दाꣳसि वा अभिभूतय– स्तैरेवैनानभिभवत्युभे बृहद्रथन्तरे ।।७।। यत्र वा इन्द्रस्य हरी तदिन्द्र इन्द्रस्य वै हरी बृहद्रथन्तरे यदुभे बृहद्रथन्तरे भवतः पूर्व– एवेन्द्रस्य हरी आरभन्ते ।।८।। तौरश्रवसे कार्ये ।।९।। तुरश्रवसश्च वै पारावतानाञ्च सोमौ सꣳसुतावास्तां तत एते तुरश्रवाः सामनी अपश्यत्ताभ्यामस्मा इन्द्रः शल्मलिनां यमुनाया हव्यं निरावह– द्यत्तौरश्रवसे भवतोहव्यमेवैषां वृङ्क्ते ।।१०।। पूर्वेऽभिषुणुयुः ।।११।। या वै पूर्वाः प्रस्नान्ति ताः पूर्वास्तीर्थं जयन्ति पूर्व एवेन्द्रमारभन्ते ।।१२।। विहव्यं शस्यम् ।।१३।। जमदग्नेश्च वा ऋषीणाञ्च सोमौ सꣳसुतावास्तां तत एतज्जमदग्निर्विहव्यमपश्यत्तमिन्द्र उपावर्त्तत यद्विहव्यꣳहोता शꣳसतीन्द्रमेवैषां वृङ्क्ते ।।१४।।

यदीतरोऽग्निष्टोमः स्यादुक्थः कार्य्योयद्युक्थोऽतिरात्रो यो वै भूयान्यज्ञक्रतुः स इन्द्रस्य प्रियोभूयसैवैषां यज्ञक्रतुनेन्द्रं वृङ्क्ते ।।१५।। अथो खल्वाहुर्दुष्प्राप इव वै परः पन्था यमेवाऽग्रे यज्ञक्रतुमारभेत तस्मान्नेयादिति ।।१६।। सजनीयꣳशस्यमगस्त्यस्य कयाशुभीयꣳशस्यम् ।।१७।। अस्या अमुष्याः अद्यश्वान्मिथुना-दहोरात्राभ्यामेवैनान्निर्भजति ।।१८।।

पञ्चमः खण्डः

यदि सोममक्रीतमपहरेयुरन्यः क्रेतव्यः ।।१।। यदि क्रीतं योऽन्योऽभ्याशं स्यात् स आहृत्यः सोमविक्रयिणे तु किञ्चिद्दद्यात् ।।२।। यदि सोमं न विन्देयुः पूतीकानभिषुणुयुर्यदि न पूतीकानर्ज्जुनानि ।।३।। गायत्री सोममाहरत्तस्या अनु विसृज्य सोमरक्षिः पर्णमच्छिनत्तस्य योꣳशुः परापतत्स पूतीकोऽभवत्तस्मिन् देवा ऊतिमवीन्दन्नूतीको वा एष यत्पूतीकानभिषुण्वन्त्यूतिमेवास्मै विन्दन्ति ।।४।। प्रतिधुक् च प्रातःपूतीकाश्च शृतञ्च मध्यन्दिने पूतीकाश्च दधि चाऽपराह्ने पूतीकाश्च ।।५।। सोमपीथो वा एतस्मादप-क्रामतीत्याहुर्यस्य सोममपहरन्तीति स ओषधीश्च पशूँश्च प्रविशति तमोषधिभ्यश्च पशुभ्यश्चाऽवरुन्धे ।।६।। इन्द्रो वृत्रमहꣳस्तस्य योनस्तः सोमः समधावत्तानि बभ्रुतूलान्यर्जुनानि योवपाया उत्खिन्नायास्तानि लोहिततूलानि यानि बभ्रुतूलान्यर्जुनानि तान्यभिषुणुयादेतद्वै ब्रह्मणो रूपं साक्षादेव सोममभिषुणोति ।।७।। श्रायन्तीयं ब्रह्मसाम कार्य्यं सदेवैनं करोति ।।८।। यज्ञायज्ञीयमनुष्टुभि प्रोहेद्वाचैवैनं समर्द्धयति वारवन्तीयमग्निष्टोमसाम कार्य्यमिन्द्रियस्य वीर्य्यस्य परिगृहीत्यै ।।९।। पञ्च दक्षिणादेयाः ।।१०।। पाङ्क्तो यज्ञोयावान्यज्ञस्त-मेवाऽऽरभते ।।११।। अवभृथादुदेत्य पुनर्दीक्षेत ।।१२।। तत्र तद्दद्याद्यद्दास्यं स्यात् ।।१३।।

षष्ठः खण्डः

यदि कलशो दीर्येत वषट्कारणिधनं ब्रह्मसाम कुर्य्यात् ॥१॥ अवषट्कृतो वा एतस्य सोमः परा सिच्यते यस्य कलशो दीर्यते यद्वषट्कारणिधनं ब्रह्मसाम भवति वषट्कृत एवाऽस्य सोमो भवति ॥२॥ विधुं दद्राणꣳसमने बहूनामित्येतासु कार्य्यम् ॥३॥ एष हि बहूनाꣳसमने दीर्यते यत्कलशः ॥४॥ तदाहुर्न वा आर्त्याऽऽर्त्तिरनूद्याऽऽर्त्या वा एष आर्त्तिमनुवदति यः कलशे दीर्णे दद्राणवतीषु करोतीति ॥५॥ श्रायन्तीयमेव कार्य्यम् ॥६॥ प्रजापतिः प्रजा असृजत स दुग्धोरिरिचानोऽमन्यत स एतच्छ्रायन्तीयम–पश्यत्तेनात्मानं समश्रीणात्प्रजया पशुभिरिन्द्रियेण ॥७॥ दुग्ध इव वा एष रिरिचानो यस्य कलशो दीर्यते यच्छ्रायन्तीयं ब्रह्मसाम भवति पुनरेवाऽऽत्मानꣳसꣳश्रीणाति प्रजया पशुभिरिन्द्रियेण ॥८॥ यदि श्रायन्तीयं ब्रह्मसाम स्याद्वैष्णवीष्वनुष्टुप्सुवषट्कारणिधनं कुर्य्यात् ॥९॥ यद्वै यज्ञस्य स्रवति वाचं प्रतिस्रवति वागनुष्टुप् यज्ञो विष्णुर्वाचैव यज्ञस्य छिद्रमपि दधाति ॥१०॥ यद्वै यज्ञस्य स्रवत्यन्ततः स्रवति वारवन्तीयमग्निष्टोमसाम कार्य्यं यज्ञस्यैव छिद्रं वारयते ॥११॥

सप्तमः खण्डः

यदि प्रातःसवनात्सोमोऽतिरिच्येतास्ति सोमो अयं सुत इति मरुत्वतीषु गायत्रेण स्तुयुः ॥१॥ माध्यन्दिनं वा एष सवनं निकामयमानोऽभ्यतिरिच्यते यः प्रातःसवनादतिरिच्यते तस्मान्मरुत्वतीषु स्तुवन्ति मरुत्वद्धि माध्यन्दिनꣳसवनं तस्मादु गायत्रीषु गायत्रं हि प्रातःसवनम् ॥२॥

यस्मात् स्तोमादतिरिच्येत स एव स्तोमः कार्य्यः सलोमत्वाय ।।३।। ऐन्द्रावैष्णवं होताऽनुशँसति ।।४।। वीर्यं वा इन्द्रो यज्ञो विष्णुर्वीर्य एव यज्ञे प्रतितिष्ठति ।।५।। यदि माध्यन्दिनात्सवनादतिरिच्येत बण्महाँ असि सूर्येत्यादित्यवतीषु गौरीवितेन स्तुयुः ।।६।। तृतीयसवनं वा एष निकामयमानोऽभ्यति–रिच्यते यो माध्यन्दिनात्सवनादतिरिच्यते तस्मादादित्यवतीषु स्तुवन्त्यादित्यं हि तृतीयसवनं तस्मादु बृहतीषु बार्हतं हि माध्यन्दिनँ सवनम् ।।७।। यस्मात् स्तोमादतिरिच्येत स एव स्तोमः कार्यः सलोमत्वायैन्द्रावैष्णवं होताऽनुशँसति वीर्यं वा इन्द्रो यज्ञो विष्णुर्वीर्य एव यज्ञे प्रतितिष्ठति ।।८।। यदि तृतीय सवनादतिरिच्येत विष्णोः शिपिविष्टवतीषु गौरीवितेन स्तूयुः ।।९।। यज्ञो वै विष्णुः शिपिविष्टो यज्ञएव विष्णौ प्रतितिष्ठत्यतिरिक्तं गौरीवितं अतिरिक्तं एवाऽतिरिक्तं दधाति ।।१०।। एतदन्यत् कुर्युरुक्थान्यत्प्रणयेयुरुक्थानि वा एष निकामयमानोऽभ्यतीरिच्यते योऽग्निष्टोमादतिरच्यते यद्युक्थ्येभ्योऽतिरिच्येताऽतिरात्रः कार्य्यो रात्रिं वा एष निकामयमानोऽभ्यतिरिच्यते य उक्थ्येभ्योऽतिरिच्यते यदि रात्रेरतिरिच्येत विष्णोः शिपिविष्टवतीषु बृहता स्तुयुरेष तु वा अतिरिच्यत इत्याहुर्यो रात्रेरतिरिच्यत इति ।।११।। अमुं वा एष लोकं निकामयमानोऽभ्यतिरिच्यते यो रात्रेरतिरिच्यते बृहता स्तुवन्ति बृहदमुं लोकमाप्तुमर्हति तमेवाऽऽप्नोति ।।१२।।

अष्टमः खण्डः

यदि दीक्षितानां प्रमीयेत दग्ध्वाऽस्थीन्युपनह्य यो नेदिष्ठी स्यात्तं दीक्षयित्वा सह यजेरन् ।।१।। एतदन्यत् कुर्य्युरभिषुत्याऽ–न्यत्सोममगृहीत्वा ग्रहान्यासौ दक्षिणा स्रक्तिस्तद्वा स्तुयुर्मार्जालीये वा ।।२।।

अपि वा एतस्य यज्ञे यो दीक्षितः प्रमीयते तमेतेन निरवदयन्ते ।। ३।। यामेन स्तुवन्ति यमलोकमेवैनं गमयन्ति ।। ४।। तिसृभिः स्तुवन्ति तृतीये हि लोके पितरः ।। ५।। पराचीभिः स्तुवन्ति पराङ्हीतोऽसौ लोकः ।। ६।। सर्पराज्ञ्या ऋग्भिः स्तुवन्ति ।। ७।। अर्ब्बुदः सर्प एताभिर्मृतां त्वचमपाहतमृतामेवैताभि-स्त्वचमपघ्नते ।। ८।। ता ऋचोऽनुब्रुवन्तस्त्रिर्मार्जालीयं परियन्ति सव्यानूरूनाघ्नानाः।। ९।। स्तुतमनुशँसत्यमुष्मिन्नेवैनं लोके निघ्नुवन्ति ।।१०।। यन्ति वा एते पथ इत्याहुर्ये मृताय कुर्वन्तीत्यैन्द्रवायवाग्रान् ग्रहान् ग्रह्णते पुनः पन्थानमपियन्ति ।।११।। अग्न आयूँषि पवसइति प्रतिपत्कार्य्या य एव जीवन्ति तेष्वायु-र्दधाति ।।१२।। संवत्सरेऽस्थीनि याजयेयुः संवत्सरो वै सर्वस्य शान्तिर्यत्पुरा संवत्सराद्याजयेयुर्वाचमरुष्कृतां क्रूरामृच्छेयुः ।।१३।। असम्मितँ स्तोत्रꣳस्यादसम्मितो ह्यसौ लोकस्त्रिवृतः पवमानाः स्युः सप्तदशमितरत्सर्वम् ।।१४।। यत्त्रिवृतः पवमाना भवन्ति प्राणा वै त्रिवृत्प्राणानेवोपयन्ति यत्सप्तदशमितरत् सर्वं प्रजापतिर्वै सप्तदशः प्रजापतिमेवोपयन्ति ।।१५।। प्राणापानैर्वा एते व्यृध्यन्त इत्याहुर्ये मृताय कुर्वन्तीति मैत्रावरुणाग्रान ग्रहान् गृह्णते प्राणापानौ मित्रावरुणौ प्राणापानैरेव समृध्यन्ते ।।१६।।

नवमः खण्डः

यस्य कलश उपदस्यति कलशमेवाऽस्योपदस्यन्तं प्राणोऽनूपदस्यति प्राणो हि सोमः ।।१।। तदाहुः पयोऽव-नयेदिति ।।२।। अथो खल्वाहुरन्तर्हितमिव वा एतद्यत्पयो हिरण्यमेवाऽपोऽभ्यवनयेद्धिरण्यमभ्युन्नयेदिति ।।३।। प्राणा वा आपोऽमृतं हिरण्यममृत एवाऽस्य प्राणान् दधाति स सर्वमायुरेति ।।४।।

यस्य नाराशँस उपवायति नाराशँसमेवास्योपवीयन्तं प्राणोऽनू- पदस्यति प्राणो हि सोमः ।।५।। यमध्वर्य्युरन्ततो गृहं गृह्णीयात्तस्याऽऽप्तुमवनयेत् ।।६।। प्रायश्चित्यै वै ग्रहो गृह्यते प्रायश्चित्येवाऽस्मै प्रायश्चित्तिं करोति ।।७।।

यदि पीतापीतौ सोमौ सङ्गच्छेयातामन्तःपरिध्यङ्गारान्निर्वर्त्य जुहुयाद्धुतस्य चाऽहुतस्य चाऽहुतस्य हुतस्य च पीतापीतस्य सोमस्येन्द्राग्नी पिबतं सुतं स्वाहेति सैव तस्य प्रायश्चित्तिः ।।८।। प्रजापतये स्वाहेत्यभक्षणीयस्य जुहुयादुत्तरार्द्धपूर्वार्द्धे उपरवः ।।९।। इन्दुरिन्द्रमवागादित्यववृष्टस्य भक्षयेत् ।।१०।। तस्य त इन्द्र- विन्द्रपीतस्येन्द्रियावतः सर्वगणस्य सर्वगण उपहूत उपहूतस्य भक्षयामि ।।११।। 'हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्र' इत्याज्येनाऽभ्युपाकृतस्य जुहुयादाग्नीध्रं परेत्य 'भूतानां जातः पतिरेक आसीत् स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां तस्मै' त 'इन्दो हविषा विधेम स्वाहे'ति सैव तस्य प्रायश्चित्तिः ।।१२।। यदि ग्रावाऽपि शीर्यते पशुभिर्यजमानो व्यृध्यते पशवो वै ग्रावाणो द्युतानस्य मारुतस्य साम्ना स्तुयुः ।।१३।। मारुता वै ग्रावाणः स्वेनैवैनाꣳस्तद्रूपेण समर्द्धयति ।।१४।। यदि सोममभिदहेद्ग्रहानध्वर्य्युः स्पाशयेत स्तोत्राण्युद्गाता शस्त्राणि होताऽथ यथापूर्वं यज्ञेन चरेयुः पञ्च दक्षिणा देयाः पाङ्क्तो यज्ञो- यावान्यज्ञस्तमेवारभतेऽवभृथादुदेत्य पुनर्दीक्षेत तत्र तद्द्याद्यद्धास्यं स्यात् पुरा द्वादश्या दीक्षेत यद्द्वादशीमतिनयेदन्तर्द्धीयेत ।।१५।।

दशमः खण्डः

यदि महावीरो भिद्येत तं भिन्नमभिमृशेत् 'य ऋते चिदभिश्रिषः पुरा जत्रुभ्य आतृदः। सन्धाता सन्धिं मघवा पुरूवसुर्निष्कर्त्ता विह्रुतं पुनः। मा भेम निष्ट्या इवेन्द्र त्वदरणा इव वनानि न

प्रजहितान्यद्रिवो दुरोषासो अमन्मह्यमन्महीदनाशवोनु ग्राभश्च वृत्रहन् सकृत्सु ते महता शूर राधसानुस्तोमं मदेमही'ति महावीरं भिन्नमभिमृशेत् सैव तस्य प्रायश्चित्तिः ।।१।। असुर्य्यं वा एतस्माद्वर्णं कृत्वा तेज इन्द्रियं वीर्य्यमन्नाद्यं प्रजाः पशवोऽपक्रामन्ति यस्य यूपो विरोहति स ईश्वरः पापीयान् भवितोः ।।२।। त्वाष्ट्रं पशुं बहुरूपमालभेत त्वष्टा वै पशूनां रूपाणां विकर्त्ता तमेव तदुप— धावति स एनं तेजसेन्द्रियेण वीर्य्येणाऽन्नाद्येन प्रजया पशुभिः पुनः समर्द्धयति सैव तस्य प्रायश्चित्तिः ।।३।।

।।इति नवमोऽध्यायः।।



दशमोऽध्याय:

प्रथम: खण्ड:

अग्निना पृथिव्यौषधिभिस्तेनाऽयं लोकस्त्रिवृद्वायुनाऽन्तरिक्षेण वयोभिस्तेनैष लोकस्त्रिवृद्योऽयमन्तरादित्येन दिवा नक्षत्रैस्तेनाऽसौ लोकस्त्रिवृदेतदेव त्रिवृत आयतनमेषाऽस्य बन्धुता ।।१।। आयतनवान् बन्धुवान् भवति य एवं वेद ।।२।। तमु प्रतिष्ठेत्याहुस्त्रिवृद्ध्येवैषु लोकेषु प्रतिष्ठित: ।।३।। अर्द्धमास एव पञ्चदशस्याऽऽयतनमेषाऽस्य बन्धुता ।।४।। आयतनवान् बन्धुमान् भवति य एवं वेद ।।५।। तं वोजोबलमित्याहुरर्द्धमासशो हि प्रजा: पशव ओजोबलं पुष्यन्ति ।।६।। संवत्सर एव सप्तदशस्याऽऽयतनं द्वादशमासा: पञ्चर्त्तव एतदेव सप्तदशस्याऽऽयतनमेषाऽस्य बन्धुता ।।७।। आयतनवान् बन्धुवान् भवति य एवं वेद ।।८।। तमु प्रजापतिरित्याहु: संवत्सरँ हि प्रजा: पशवोऽनु प्रजायन्ते ।।९।। आदित्य एवैकविंशस्याऽऽयतनं द्वादशमासा: पञ्चर्त्तवस्त्रय इमे लोका असावादित्य एकविंश एतदेवैकविंशस्याऽऽयनमेषाऽस्य बन्धुता।। १०।। आयतनवान् बन्धुवान् भवति य एवं वेद ।।११।। तमु देवतल्प इत्याहु: प्रदेवतल्पमाप्नोति य एवं वेद ।।१२।। त्रिवृदेव त्रिणवस्याऽऽयतनमेषाऽस्य बन्धुता ।।१३।। आयतनवान् बन्धुमान् भवति य एवं वेद ।।१४।। तमु पुष्टिरित्याहुस्त्रिवृद्ध्येवैष पुष्ट: ।।१५।। देवता एव त्रयस्त्रिंशस्याऽऽयतनं त्रयस्त्रिंशद्देवता: प्रजापतिश्चतुस्त्रिंश एतदेव त्रयस्त्रिंशस्याऽऽयतनमेषाऽस्य बन्धुता ।।१६।। आयतनवान् बन्धुमान भवति य एवं वेद ।।१७।। तमु नाक इत्याहुर्न हि प्रजापित: कस्मै च नाऽकम् ।।१८।। छन्दाँस्येव छन्दोमानामायतनमेषैषां बन्धुता ।।१९।।

आयतनवान् बन्धुमान् भवति य एवं वेद ॥२०॥ तानु पुष्टिरित्याहुः पशवो हि छन्दोमाः ॥२१॥

द्वितीयः खण्डः

प्रजापतिः प्रजा असृजत सोऽताम्यत्तस्मै वाग्ज्योतिरुद्-गृह्णात्सोऽब्रवीत्कोमेऽयं ज्योतिरुदग्रहीदिति स्वैव ते वागित्य-ब्रवीत्तामब्रवीद्विराजं त्वाच्छन्दसां ज्योतिष्कृत्वा यजान्ता इति ॥१॥ तस्माद्यो विराजंस्तोमः सम्पद्यते तं ज्योतिष्टोमोऽग्निष्टोम इत्याचक्षते विराड्ढि छन्दसां ज्योतिः ॥२॥ ज्योतिः समानानां भवति य एवं वेद ॥३॥ अनुष्टुप् च वै सप्तदशश्च समभवतां सानुष्टुप् चतुरुत्तराणि छन्दाँस्यसृजत षडुत्तरान् स्तोमान् सप्तदशस्तावेतान्मध्यतः प्राजनयताम् ॥४॥ त्रिवृच्च त्रिणवश्च राथन्तरौ तावजश्चाऽश्वश्चान्व-सृज्येतां तस्मात्तौ राथन्तरं प्राचीनं प्रधूनुतः ॥५॥ पञ्चदशश्चैक-विंशश्च बार्हतौ तौ गौश्चाऽविश्चान्वसृज्येतां तस्मात्तौ बार्हतं प्राचीनं भास्कुरुतः ॥६॥ एवं वै विद्वाँसमाहुरपि ग्राम्याणां पशूनां वाच आजानाति ॥७॥

तृतीयः खण्डः

प्रजापतिरकामयत बहु स्यां प्रजायेयेति स आत्मन्नृत्वमपश्यत्तत ऋत्विजोऽसृजत यदृत्वादसृजत तदृत्विजामृत्विक्त्वं तैरेतं द्वादशाह-मुपासीदत्सोऽराध्नोत् ॥१॥ पिता नोऽरात्सीदिति मासा उपासीदंस्ते दीक्षयैवाऽराध्नुवन्नुपसत्सु त्रयोदशमदीक्षयंस्सोऽनुव्यमभवत्तस्मादुपसत्सु दिदीक्षाणोऽनुव्यं भवत्येव च हि त्रयोदशं मासञ्चक्षते नैव च ॥२॥ एकोदीक्षेतैको हि प्रजापतिरराध्नोद्द्वादश दीक्षेरन् द्वादश हि मासा अराध्नुवंश्चतुर्विंशतिर्दीक्षेरंश्चतुर्विंशतिर्ह्यर्द्धमासा अराध्नुवन् ॥३॥

यदि पञ्चविंशोदीक्षेतेमे पञ्चेमे पञ्चेमे पञ्चेमे पञ्चेमे चत्वारोऽ–सावेक इति निर्द्दिशेयुर्य्यस्मा अराद्धिकामाः स्युस्तमेवाऽराद्धिरन्वेति सर्व इतरे राध्नुवन्ति ।।४।। यो वै देवानां गृहपतिं वेदाऽश्नुते गार्हपतं प्रगार्हपत माप्नोति ।।५।। संवत्सरो वै देवानां गृहपतिः स एव प्रजापतिस्तस्य मासाएव सह दीक्षिणः ।।६।। विन्दते सह दीक्षिणोऽश्नुते गार्हपतं प्रगार्हपतमाप्नोति य एवं वेद ।।७।। यो वै छन्दसाँ स्वराजं वेदाऽश्नुते स्वाराज्यं प्रस्वाराज्यमाप्नोति बृहती वाव छन्दसाँ स्वराडश्नुते स्वाराज्यं प्रस्वाराज्यमाप्नोति य एवं वेद ।।८।। तां वा एतामन्नाद्याय व्यावृज्याऽऽसते यदेतं द्वादशाहं द्वादश दीक्षा द्वादशोपसदो द्वादश प्रसुतः षट्त्रिंशदेता रात्रयो भवन्ति षट्त्रिंशदक्षराबृहती ।।९।। जायते वाव दीक्षया पुनीत उपसद्भिर्देवलोकमेव सुत्ययाऽप्येति ।।१०।। एतावद्वाव संवत्सरइन्द्रियं वीर्यं यदेतारात्रयो द्वादश पौर्णमास्यो द्वादशैकाष्टका द्वादशाऽमावास्या यावदेव संवत्सर इन्द्रियं वीर्यं तदेतेनाऽऽप्त्वावरुन्धे द्वादशाहेन ।।११।। त्रिंशदक्षरा वा एषा विराट् षड्तव ऋतुष्वेव विराजा प्रतितिष्ठ–त्यृतुभिर्विराजि ।।१२।। द्वात्रिंशदक्षरा वा एषाऽनुष्टुब्वागनुष्टुप् चतुष्पादाः पशवो वाचापशून्दाधार तस्माद्वाचा सिद्धा वाचाहूता आयन्ति तस्मादु नाम जानते ।।१३।।

चतुर्थः खण्डः

भूतं पूर्व्वोऽतिरात्रो भविष्यदुत्तरः पृथिवी पूर्व्वोऽतिरात्रो द्यौरुत्तरोऽग्निः पूर्वोऽतिरात्र आदित्य उत्तरः प्राणः पूर्वोऽतिरात्र उदानउत्तरः ।।१।। चक्षुषी अतिरात्रौ कनीनिके अग्निष्टोमौ यस्मादन्तरा अग्निष्टोमावतिरात्राभ्यां तस्मादन्तरे सत्यौ कनीनिके भुङ्क्तः ।।२।। संवत्सरस्य वा एतौ दँष्ट्रौ यदतिरात्रौ तयोर्न स्वप्तव्यं संवत्सरस्य दँष्ट्रयोरात्मानं नेदपि दधानीति ।।३।।

तदाहु: कोऽस्वप्तुमर्हति यद्वाव प्राणो जागार तदेव जागरितमिति ।।४।। गायत्रीं वा एतां ज्योतिष्पक्षामासते यदेतं द्वादशाहमष्टौ मध्य उक्था अग्निष्टोमावभितो मासा स्वर्गंल्लोक-मेत्याऽऽजरसं ब्रह्माद्यमन्नमत्ति दीप्यमान: ।।५।। त्रिष्पुरस्ताद्रथन्तर-मुपयन्ति त्र्यावृद्वै वाक् सर्व्वामेव वाचमवरुध्य सर्व्वमन्नाद्यं द्वादशाहं तन्वते ।।६।। जामि वा एतद्यज्ञे क्रियत इत्वाहुर्यत् त्रिष्पुरस्ताद्रथन्तरमुपयन्तीति सौभरमुक्थानां ब्रह्मसाम भवति तेनैव तदजामि ।।७।। प्रत्नवत्य: प्रायणीयस्याऽह्न: प्रतिपदो भवन्ति तेनो एव तदजामि ।।८।। त्रिर्वेवोपरिष्टाद्रथन्तरमुपयन्ति त्र्यावृद्वै वाक् सर्वामेव वाचमवरुध्य सर्वमन्नाद्यं द्वादशाहादुत्तिष्ठन्ति ।।९।।

पञ्चम: खण्ड:

त्रयो वा एते त्रिरात्रा यदेष द्वादशाहो गायत्रमुख: प्रथमो गायत्रमध्यो द्वितीयो गायत्रोत्तमस्तृतीय: ।।१।। यस्माद्गायत्रमुख: प्रथमस्तस्मादूर्द्ध्वोऽग्निर्दीदाय यस्माद्गायत्रमध्यो द्वितीयस्तस्मात्तिर्य्यङ् वायु: पवते यस्माद्गायत्रोत्तमस्तृतीयस्तस्मादर्वाङादित्यस्तपति ।।२।। तेजसा वै गायत्री प्रथमं त्रिरात्रं दाधार पदैर्द्वितीयम-क्षरैस्तृतीयम् ।।३।। त्रिवृद्वै गायत्र्यास्तेजस्त्रिवृत्प्रायणीयमहस्तेन प्रथमस्त्रिरात्रो धृतिस्त्रिपदा गायत्री त्रिरात्रो मध्ये तेन द्वितीयस्त्रि-रात्रो धृतश्चतुर्विंशदत्यक्षरा गायत्री चतुर्विंशंउत्तममहस्तेन तृतीयस्त्रिरात्रो धृत: ।।४।। तेजसा वा एते प्रयन्ति तेजो मध्ये दधति तेजोऽभ्युद्यन्ति ज्योतिषा वा एते प्रयन्ति ज्योतिर्म्मध्ये दधति ज्योतिरभ्युद्यन्ति चक्षुषा वा एते प्रयन्ति चक्षुर्मध्ये दधति चक्षुरभ्युद्यन्ति प्राणेन वा एते प्रयन्ति प्राणं मध्ये दधति प्राणमभ्युद्यन्ति ये गायत्र्या प्रयन्ति गायत्रीं मध्ये दधति गायत्रीमभ्युद्यन्ति ।।५।।

तन्त्रं वा एतद्वितायते यदेष द्वादशाहस्तस्यैते मयूखा यद्गायत्र्य संव्याथाय ।। ६।। गिरिक्षिदौच्चामन्यवेति होवाचाऽभिप्रतारी काक्षसेनिः कथं द्वादशाह इति यथाऽरान्नेमिः पर्य्येत्येवमेनं गायत्री पर्य्येत्यविस्रंस्साय यथाऽरा नाभौ धृता एवमस्यां द्वादशाहो धृतः ।। ७।। अनुष्टुभं वा एतामन्नाद्याय व्यावृज्याऽऽसते यदेतं द्वादशाहम् ।। ८।। अष्टाभिर्वा अक्षरैरनुष्टुप् प्रथमं द्वादशाहस्याह-रुद्यच्छत्येकादशभिर्द्वितीयं द्वादशभिस्तृतीयम् ।। ९।। अक्षरं त्र्यक्षरमुच्छिष्यते तदेवोत्तरं त्रिरात्रमनु विदधाति ।। १०।। छन्दाँस्येवाऽस्यास्तृतीयं त्रिरात्रं वहन्ति ।। ११।। तां वा एतां प्रतीचीं तिरश्चीं पराचीमासतेऽन्नाद्याय तस्मात्प्रत्यञ्चं तिर्य्यञ्चं पराञ्चं प्रजाः पशुमुपजीवन्ति ।। १२।। छन्दाँसि वा अन्योन्यस्य लोकमभ्यधायन् गायत्री त्रिष्टुभस्त्रिब्जगत्या जगती गायत्र्यास्तानि व्यौहन्यथा लोकं ततो वै तानि यं यं काममकामयन्त तमसन्वन् ।। १३।। यत् कामो व्यूढच्छन्दसा द्वादशाहेन यजते सोऽस्मै कामः समृध्यते ।। १४।। ओको वै देवानां द्वादशाहो यथा वै मनुष्या इमं लोकमाविष्टा एवं देवता द्वादशाहमाविष्टा देवताह वा एतेन यजते य एवं विद्वान् द्वादशाहेन यजते ।। १५।। गृहा वै देवानां द्वादशाहो नाऽगृहताया भय्यम् ।। १६।। यो वै द्वादशाहमग्निष्टोमेन कल्पमानं वेद कल्पतेऽस्मै प्रातःसवनेनैव प्रथमस्त्रिरात्रः कल्पते माध्यन्दिनेन सवनेन द्वितीयस्तृतीयसवनेन तृतीयोऽग्निष्टोम साम्नैव दशममहः कल्पते ।। १७।। कल्पतेऽस्मै य एवं वेद ।। १८।।

षष्ठः खण्डः

एति प्रेत्याशुमद्वीतिमद्रुक्मत्तेजस्वद्युञ्जानं प्रथमस्याऽह्नोरूपं त्रिवृतः स्तोमस्य गायत्रस्य छन्दसो रथन्तरस्य साम्नः ।। १।।

वृषवद्वृत्रहवद्रयिमद्विश्ववदुपस्थितं द्वितीयस्याऽह्नोरूपं पञ्चदशस्य स्तोमस्य त्रैष्टुभस्य छन्दसो बृहतः साम्नः ।। २।। उद्वत्त्रि–वद्दिग्वद्गोमदृषभवत् तृतीयस्याऽह्नो रूपꣳसप्तदशस्य स्तोमस्य जागतस्य छन्दसो वैरूपस्य साम्नः ।। ३।। राजन्वज्जनद्वत्सूर्य्य–वद्विराडनुतोदवच्चतुर्थस्याह्नो रूपमेकविꣳशस्य स्तोमस्याऽऽनुष्टुभस्य छन्दसो वैराजस्य साम्नः ।। ४।। चित्रवच्छिशुमत् पङ्क्तिः शक्वरी द्यूनाक्षरा गोमदृषभवद्वज्र्यभिमत्पञ्चमस्याऽह्नोरूपं त्रिणवस्य स्तोमस्य पाङ्क्तस्य छन्दसः शक्वरीणाꣳसाम्नः ।। ५।। परिवत्प्रतिवत्सप्तपदा द्विपदा विनाराशꣳसा गोमदृषभवत् षष्ठस्याऽह्नो रूपं त्रयस्त्रिꣳशस्य स्तोमस्य सर्वेषां छन्दसाꣳरूपँ रेवतीनां साम्नः ।। ६।। यस्मादेषा समाना सती षडह विभक्तिर्नानारूपा तस्माद्विरूपः संवत्सरः ।। ७।। विरूपमेनमनुप्रजायते य एवं वेद ।। ८।।

सप्तमः खण्डः

अग्नइति प्रथमस्याऽह्नो रूपमग्निविभक्तेरग्निमिति द्वितीयस्याऽग्निनेति तृतीयस्याऽग्निरिति चतुर्थस्य ।। १।। देवा वै श्रियमैच्छꣳस्तान्न प्रथमेऽहन्यविन्दन्न द्वितीयेन तृतीये ताञ्चतुर्थेऽहन्यविन्दन् विन्दते श्रियं य एवं वेदाऽग्नेरिति पञ्चमस्य तेनो श्रीः प्रत्युपोदितेत्याहुः ।। २।। अप्रतिवाद्येनं भ्रातृव्यो भवति य एवं वेद ।। ३।। अग्न इति षष्ठस्य येनैव रूपेण प्रयन्ति तदभ्युद्यन्ती ।। ४।। यस्मादेषा समाना सत्यग्निविभक्तिर्नानारूपा तस्माद्यथर्त्वादित्यस्तपति ।। ५।।

अष्टमः खण्डः

इन्द्रेति प्रथमस्याऽह्नो रूपमिन्द्रविभक्तेरिन्द्रमिति द्वितीयस्येन्द्रेणेति तृतीयस्येन्द्रइति चतुर्थस्येन्द्रादिति पञ्चमस्येन्द्रेति षष्ठस्य येनैव

रूपेण प्रयन्ति तदभ्युद्यन्ती यस्मादेषा समाना सतीन्द्र-
विभक्तिर्न्नानारूपा तस्माद्यथर्त्वोषधयः पच्यन्ते ॥१॥

नवमः खण्डः

यद्धा प्रस्तौति तत्प्रथमस्याऽह्नो रूपञ्स्वर विभक्तेर्यत्पुरस्तात् स्तोभं तद्द्वितीयस्य यदुभयतः स्तोभं तत्तृतीयस्य यदनुतुन्नं तच्चतुर्थस्य यदभ्यारब्धं तत्पञ्चमस्य यदिहकारेणाऽभ्यस्तं तत् षष्ठस्योऽह्नो रूपम् ॥१॥ स्वराणां यस्मादेषा समाना सती स्वर-
विभक्तिर्नानारूपा तस्माद्यथर्त्तु वायुः पवते ॥२॥

दशमः खण्डः

पदनिधनं प्रथमस्याऽह्नो रूपं निधनविभक्तेर्बहिर्णिधनं द्वितीयस्य दिङ्निधनं तृतीयस्येनिधनञ्चतुर्थस्याऽथकारणिधनं पञ्चमस्य यदि-
हकारेणाभ्यस्तं तत् षष्ठस्याऽह्नो रूपं निधनानां यस्मादेषा समाना सती निधनविभक्तिर्न्नानारूपा तस्मादिमे लोकाः सह सन्तोनानैव ॥१॥

एकादशः खण्डः

द्रवदिडं प्रथमस्याऽह्नो रूपमिडाविभक्तेरूर्द्धेडं द्वितीयस्य परिष्टुब्धेडं तृतीयस्येडाभिरैडं चतुर्थस्याऽध्यर्द्धेडं पञ्चमस्य यदि-
हकारेणाऽभ्यस्तं तत् षष्ठस्याऽह्नो रूपमिडानां यस्मादेषा समाना सतीडाविभक्तिर्न्नाना रूपा तस्मात्समानाः सन्तः पशवो नाना-
रूपाः ॥१॥

द्वादशः खण्डः

भारद्वाजायना वै सत्रमासत तानपृच्छन् किं प्रथमेनाऽह्ना कुरुतेति प्रैवैमेति किं द्वितीयेनेत्यवसमेवाऽकुर्म्महीति किं तृतीयेनेति

पर्य्येवाप्लवामहीति किं चतुर्थेनेति सतैव सदप्यदध्मेति किं पञ्चमेनेति प्राणानेव विच्छिन्दन्त ऐमेति किं षष्ठेनेतीदमेवाऽगच्छामेति ।।१।। यस्य पदेन प्रस्तौत्यथ स्वारमभि वाव तेन देवाः पशूनपश्यन्यन् यत्पुरस्तात् स्तोभमथ स्वारमुदेव तेनासृजन्त यदुभयतः स्तोभमथ स्वारमेभ्य एव तेन लोकेभ्यो देवाः पशुभ्योऽन्नाद्यं प्रायच्छन् यदनुतुन्नमथ स्वारमुपैव तेनाशिक्षन्यस्व मध्ये निधनमथ स्वारं गर्भाङ्स्तेनादधत तानि हवता स्वारेण प्राजनयन् ।।२।। इमं वाव देवा लोकं पदनिधनेनाऽभ्यजयन्नमुं बहिर्णिधनेनाऽन्तरिक्षं दिङ्निधनेनाऽमृतत्वमीनिधनेनागच्छन् ब्रह्मवर्च्चसमथनिधनेनाऽवा–रुन्धतास्मिन्नेव लोकइह निधनेन प्रत्यतिष्ठन् ।।३।। इमं वाव देवा लोकं द्रवदिडेनाऽभ्यजयन्नमुमूर्द्धेडेनान्तरिक्षं परिष्टुब्धेडेन प्रतिष्ठा–मिडाभिरैडेनाऽवारून्धत प्रतिष्ठायाऽध्यर्द्धेडेन व्यजयन्तास्मिन्नेव लोकइहेडेन प्रत्यतिष्ठन् ।।४।। न वाक् संवत्सरमतिवदतीडैव संवत्सरमतिवदति गर्भेण संवत्सरे पर्य्यावृत्य प्रजायते तेनाऽति वदति ।।५।। ता वा एताश्चतस्रः षडहं पराच्य इडा अतियन्त्येषा नूतैषा विषूच्येषा प्रतीच्येतद्वीडम् ।।६।। संवत्सरोऽग्निर्वाक् संवत्सरो यदग्निर्विभज्यते वाचमेव तद्विभजन्ति ।।७।। द्वे द्वे अक्षरे विभजन्ति द्वौ द्वौ हि मासावृतुरथो मासानामेव तद्रूपं क्रियते ।।८।। षडहानि विभजन्ति षडृतव ऋतूनां धृत्या ऋतूनां प्रतिष्ठित्या अथो ऋतूनामेव तद्रूपं क्रियते षड्‌ पुरुषा यानग्निरनुविह्रियते ।।९।। यदिदं बहुधाग्निर्विह्रियते यदसावादित्यः सर्वाः प्रजाः प्रत्यङ् तस्मादेते एव देवते विभक्तिमानशाते नातोऽन्या काचन ।।१०।।

।।इति दशमोऽध्यायः।।



एकादशोऽध्यायः

प्रथमः खण्डः

स्तोमोयुज्यते सत्रियेभ्योऽहर्भ्यः प्रत्नवतीभिश्चोपवतीभिश्च ।।१।। यत्प्रत्नवत्य उपवतीभ्यः पूर्व्वा युज्यन्ते ब्रह्म तत्पूर्वं क्षत्राद्युज्यते ब्रह्म हि पूर्व्वं क्षत्रात् ।।२।। मनस्तत्पूर्वं वाचो युज्यते मनो हि पूर्वं वाचो यद्धि मनसाऽभिगच्छति तद्वाचा वदति ।।३।। बृहत्तत्पूर्वं रथन्तराद्युज्यते बृहद्धि पूर्वंश्रथन्तराद्विजित्या तु वै रथन्तरं पूर्वं योगमानशे ।।४।। संभार्य्यास्तृचा भवन्ति यथाऽऽशिष्ठान्वहिष्ठान् सम्भरेदेवमेवैतान् सम्भरन्ति गत्यै ।।५।। नव भवन्ति नवाहस्य युक्त्या ॠचर्च्चैवाऽहर्युनक्ति यथा प्रार्थस्य शम्या अवदध्या–देवमेवैतन्नवाहस्य शम्या आवदधाति गत्यै ।।६।। त्रिवृदेव स्तोमो भवति तेजसे ब्रह्मवर्च्चसाय ।।७।।

द्वितीयः खण्डः

उभाभ्यां वै रूपाभ्यां बहिष्पवमान्यो युज्यन्ते यत्सामा स्तोमो भवति तदाज्येषु ।।१।। निराहवन्त्याज्यानि भवन्ति युक्तमेव तैराह्वयति ।।२।। 'अग्न आयाहि वीतय' 'आनो मित्रावरुणा' 'आयाहि सुषमा हि त' 'इन्द्राग्नी आगतंसुत'मिति राथन्तरमेव तद्रूपं निर्द्योतयति स्तोम इति ।।३।।

तृतीयः खण्डः

'प्र सोमासो विपश्चित' इति गायत्री भवति प्रेत्या 'अभिद्रोणानि बभ्रव' इत्यभिक्रान्त्यै 'सुता इन्द्राय वायव' इति संस्कृत्यै 'प्रसोम देव वीतय' इति प्रेत्यै 'प्र तु द्रवे' ति प्रेत्यै प्रवा एतेनाऽह्ना यन्ति ।।१।।

गायत्रं भवति ॥ २॥ यदेव गायत्रस्य ब्राह्मणम् ॥ ३॥ आश्वं भवति ॥ ४॥ अश्वो वै भूत्वा प्रजापतिः प्रजा असृजत स प्राजायत बहुरभवत्प्रजायते बहुर्भवत्याश्वेन तुष्टुवानः ॥ ५॥ एकाक्षरं निधनमुपयन्ति रथन्तरस्याऽनतिवादाय ॥ ६॥ अनतिवाद्येनं भ्रातृव्यो भवति य एवं वेद ॥ ७॥ सोमसाम भवति ॥ ८॥ यथा वा इमा अन्या ओषधय एवꣳसोम आसीत्स तपोऽतप्यत स एतत्सोमसामाऽपश्यत्तेन राज्यमाधिपत्यमगच्छद्यशोऽभवद्राज्यमाधिपत्यं गच्छति यशो भवति सोमसाम्ना तुष्टुवानः ॥ ९॥ यौधाजयं भवति यदेव यौधाजयस्य ब्राह्मणम् ॥ १०॥ औशनं यदौशनस्य स्तोमः ॥ ११॥

चतुर्थः खण्डः

'अभि त्वा शूर नो नुम' इत्यभीति रथन्तरस्य रूपꣳराथन्तरꣳह्येतदहः ॥ १॥ 'कयानश्चित्र आभुव'दिति कवयत्यस्तेन प्राजापत्याः को हि प्रजापतिः प्रजापतेराप्त्यै ॥ २॥ 'तं वो दस्म–मृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसोऽभिवत्सं न स्वसरेषु धेनव' इत्यभीति रथन्तरस्य रूपꣳराथन्तरꣳह्येतदहः ॥ ३॥ 'इन्द्रं गीर्भिर्हवामह' इति हवन्त एवैनम् ॥ ४॥ 'तरोभि र्वो विदद्वसु' मिति स्तोमो वै तरो यज्ञो विदद्वसुः स्तोमेन वै यज्ञो युज्यते यत्तरोभि र्वो विदद्वसुमित्याह यज्ञमेव तद्युनक्ति ॥ ५॥ रथन्तरं भवति ब्रह्म वै रथन्तरं ब्रह्म प्रायणीयमहर्ब्रह्मण एव तद् ब्रह्माऽऽक्रम्य प्रयन्ति ॥ ६॥ इयं वै रथन्तरमस्यामेव प्रतिष्ठाय सत्रमासते ॥ ७॥ वामदेव्यं भवति पशवो वै वामदेव्यं पशूनामवरुध्यै प्राजापत्यं वै वामदेव्यं प्रजापतावेव प्रतिष्ठाय सत्रमासते ॥ ८॥ नौधसं भवति ब्रह्म वै नौधसं ब्रह्म प्रायणीयमहर्ब्रह्मण एव तद् ब्रह्माऽऽक्रमन्ते ॥ ९॥

कालेयं भवति समानलोके वै कालेयञ्च रथन्तरञ्चेयं वै रथन्तरं पशवः कालेयमस्याञ्चैव पशुषु च प्रतिष्ठाय सत्रमासते ।।१०।। द्रवदिडं तथा ह्येतस्याऽह्नो रूपꣳस्तोमः ।।११।।

पञ्चमः खण्डः

'प्रसोमासो मदच्युत' इति गायत्री भवति मदवद् वै रसवत्तृतीय– सवनं मदमेव तद्रसं दधाति 'अया पवस्व देवयु'रित्येति रथन्तरस्य रूपꣳराथन्तरꣳह्येतदहः 'पवतेऽहर्य्यतो हरि'रिति बृहतो रूपं बृहदेव तदेतस्मिन्नहनि युनक्ति तद्युक्तꣳश्व आरभन्ते 'प्रसुन्वानायाऽन्धस' इति प्रवत्यो भवन्ति प्रणिनीषेण्यमिव ह्येतदहः 'अभिप्रियाणि पवते च नोहित' इत्यभीति रथन्तरस्य रूपꣳराथन्तरꣳह्येतदहः ।।१।। 'यज्ञायज्ञावो अग्नय' इत्यग्निर्वै यज्ञो यज्ञएव तद्यज्ञं प्रतिष्ठापयति ।।२।। गायत्रं भवति यदेवं गायत्रस्य ब्राह्मणम् ।।३।। सꣳहितं भवति द्व्यक्षरणिधनं प्रतिष्ठायै प्रतिष्ठायैव सत्रमासते ।।४।। सफं भवति ।।५।। सफेन वै देवा इमान् लोकान् समाप्नुवन् यत्समाप्नुवꣳस्तत्सफस्य सफत्वमिमानेवैतेन लोकान् समाप्य सत्रमासते ।।६।। आक्षारं भवति ।।७।। अष्टौ वा एताः कामदुघा आसꣳस्तासामेका समशीर्य्यत सा कृषिरभवदृध्यतेऽस्मै कृषौ य एवं वेद ।।८।। तासु देवासुरा अस्पर्द्धन्त ते देवा असुरान् काम– दुघाभ्य आक्षारेणाऽनुदन्त नुदते भ्रातृव्यं कामदुघाभ्य आक्षारेण तुष्टुवानः ।।९।। एभ्यो वै लोकेभ्यो रसोऽपाक्रामत्तं प्रजापति– राक्षारेणाऽऽक्षारयद्यदाक्षारयत्तदाक्षारस्याऽऽक्षारत्वम् ।।१०।। तस्माद्यः पुरा पुण्यो भूत्वा पश्चात्पापीयान् स्यादाक्षारं ब्रह्मसाम कुर्वीताऽऽत्मन्येवेन्द्रियं वीर्य्यꣳरसमाक्षारयति ।।११।।

जनुषैकच्चौं भवतोऽह्नो धृत्यै यद्वा एतस्याऽह्नोऽधृतं तदेता-भ्यान्दाधार ।।१२।। गौरीवितं भवति ।।१३।। गौरीवितिर्वा एतच्छाक्त्यो ब्रह्मणोऽतिरिक्तमपश्यत्तद्गौरीवितमभवत् ।।१४।। अतिरिक्तं वा एतदतिरिक्तेन स्तुवन्ति यद्गौरीवितेनाहीनाञ्छ्व-स्तनवद्भवत्यपि प्रजाया उपक्लृप्तम् ।।१५।। वृषा वा एतद्वाजि-सामवृषभो रेतोधा अद्यस्तुवन्ति श्वः प्रजायते ।।१६।। अनुष्टुभि छन्दसां क्रियतेऽनुष्टुब्भि छन्दसां योनिः स्वायामेव तद्योनौ रेतोधत्ते प्रजात्यै ।।१७।। प्रजायते बहुर्भवति य एवं वेद ।।१८।। द्व्युदासं भवत्येतौ वा उदासौ स्वर्गस्य लोकस्याऽवसानदर्शौ पूर्वेण पूर्वमहः सꣳस्थापयन्त्युत्तरेणोत्तरमहरभ्यति वदन्ति ।।१९।। तद्यथाऽदः पूवैद्युः स्पष्टं तृणोदकमन्वस्यन्तो यन्त्येवमेवताभ्याꣳस्वर्गं लोकमन्व-वस्यन्तो यन्ति ।।२०।। गौतमं भवति ।।२१।। सामाऽऽर्षेयवत् स्वर्गाय युज्यते स्वर्गाल्लोकान्न च्यवते तुष्टुवानः ।।२२।। यदु चैवाऽऽनुष्टुभस्य मध्ये निधनस्य ब्राह्मणं तदु चैतस्य ।।२३।। कावं भवति ।।२४।। लोकबिन्दु साम विन्दते लोकं कावेन तुष्टुवानः ।।२५।। स्वारमुस्वरेण स्वरेण हि देवेभ्योऽन्ततोऽन्नाद्यं प्रदीयते स्वरेणैव तद्देवेभ्योऽन्ततोऽन्नाद्यं प्रयच्छति ।।२६।। यज्ञायज्ञीयं भवति ।।२७।। वाग्यज्ञायज्ञीयं वाचि यज्ञः प्रतिष्ठितो वाच्येव तद्यज्ञमन्ततः प्रतिष्ठापयन्ति तं वाचोऽधि श्व आरभन्ते ।।२८।। त्रिवृदेव स्तोमो भवति तेजसे ब्रह्मवर्च्चसाय ।।२९।।

षष्ठः खण्डः

'पवस्व वाचो अग्रिय' इति द्वितीयस्याऽह्नः प्रतिपद्भवति ।।१।। 'पवस्वेति वै राथन्तरꣳरूपमग्रिय' इति बार्हतमुभे रूपे समारभते द्विरात्रस्याऽविस्रꣳसाय ।।२।।

'पवस्वेन्दो वृषासुत' इत्यनुरूपो भवति वृषण्वद्वा एतदैन्द्रं त्रैष्टुभमहर्य्यत् द्वितीयं तदेव तदभिवदति ।।३।। पूर्व्वमुच्चैव तद्रूपमपरेण रूपेणाऽनुवदति यत्पूर्वंऽरूपमपरेण रूपेणाऽनुवदति तदनुरूपस्याऽनुरूपत्वम् ।।४।। अनुरूप एनं पुत्रो जायते य एवं वेद ।।५।। स्तोत्रीयानुरूपौ तृचौ भवतः प्राणापानानामवरुध्यै ।।६।। वृषण्वन्तस्तृचा भवन्तीन्द्रियस्य वीर्य्यस्याऽवरुध्यै ।।७।। तृच उत्तमो भवति ।।८।। येनैव प्राणेन प्रयन्ति तमभ्युद्यन्ति ।।९।। पञ्चदश एव स्तोमो भवति ।।१०।। ओजस्येवं तद्वीर्य्ये प्रतितिष्ठत्योजो वीर्य्यं पञ्चदशः ।।११।।

सप्तमः खण्डः

उभाभ्यां वै रूपाभ्यां बहिष्पवमान्यो युज्यन्ते यत्सामास्तोमो भवति तदाज्येषु ।।१।। निराहोपस्थितान्याज्यानि भवन्ति ।।२।। 'अग्निं दूतं वृणीमहे मित्रं वयꣳहवामह इन्द्रमिद्गाथिनो बृहदिन्द्रो अग्ना नमो बृह'दिति बार्हतमेव तद्रूपं निर्द्योतयति स्तोमः ।।३।।

अष्टमः खण्डः

'वृषा पवस्व धारये'ति गायत्री भवत्यह्नो धृत्यै ।।१।। वृषण्वत्यस्त्रिष्टुभोरूपेण त्रैष्टुभꣳह्येतदहः ।।२।। 'पुनानः सोम धारये'ति धृत्यै ।।३।। वृषाशोणो अभि कनिक्रदद्गा इति ।।४।। वृषण्वत्यस्त्रिष्टुभो रूपेण समृद्धा वृषण्वद्वा एतदैन्द्रं त्रैष्टुभमहर्य्यत् द्वितीयं तदेव तदभिवदति ।।५।। गायत्रं भवति यदेव गायत्रस्य ब्राह्मणम् ।।६।। यौक्ताश्वं भवति ।।७।। युक्ताश्वो वा आङ्गिरसः शिशू जातौ विपर्य्यहरत्तस्मान्मन्त्रोऽपाक्रामत्सतपोऽतप्यत स एतद्यौक्ताश्वमपश्यत्तं मन्त्र उपावर्त्तत तद्वाव स तर्ह्यकामयत काम— सनि साम यौक्ताश्वं काममेवैतेनाऽवरुन्धे ।।८।।

आयास्ये भवतः ॥९॥ अयास्यो वा आङ्गिरस आदित्यानां दीक्षितानामन्नमाश्नात्तꣳशुगार्थासतपोऽतप्यत स एते आयास्ये अपश्यत्ताभ्याꣳशुचमपाहताऽपशुचꣳह त आयास्याभ्यां तुष्टुवानः ॥१०॥ एभ्यो वै लोकेभ्यो वृष्टिरपाक्रामत्तामयास्य आयास्याभ्यामच्यावयत् च्यावयति वृष्टिमायास्याभ्यां तुष्टुवानः ॥११॥ अन्नाद्यं वाव तदेभ्यो लोकेभ्योऽपाक्रामत्तदयास्य आयास्याभ्यामच्यावयत् च्यावयत्यन्नाद्यमायास्याभ्यां तुष्टुवानः ॥१२॥ वासिष्ठं भवति ॥१३॥ वसिष्ठो वा एतेन वैडवः स्तुत्वाञ्जसा स्वर्गं लोकमपश्यत् स्वर्गस्य लोकस्याऽनुख्यात्यै स्वर्गाल्लोकान्न च्यवते तुष्टुवानः स्तोमः ॥१४॥

नवमः खण्डः

'त्वामिद्धि हवामह' इति त्वमिति बृहतोरूपं बार्हतꣳह्येत– दहः ॥१॥ 'अभिप्रवः सुराधस'मिति युञ्जते वै पूर्वेणाऽह्नाभ्येतेन प्रयन्ति ॥२॥ त्वामिदाह्नो नर इत्यद्य चैवह्नश्च समारभते द्विरात्रस्याऽविस्रꣳसाय ॥३॥ बृहद्भवति वर्ष्म वै बृहद्वर्ष्म द्वितीयमहर्वर्ष्मणएव तद्वर्ष्माऽऽक्रमते ॥४॥ श्यैतं भवति साम्नो– र्विवाहो यज्ञस्य सन्तत्यै ॥५॥ माधुच्छन्दसं भवति सामार्षेयवत्स्वर्गाय युज्यते स्वर्गाल्लोकान्न च्यवते तुष्टुवानः ॥६॥ ऊर्ध्वेडं तथा ह्येतस्याऽह्नोरूपꣳस्तोमः ॥७॥

दशमः खण्डः

'यस्ते मदो वरेण्य' इति गायत्री भवति ॥१॥ मदवद्वै रसवत्तृतीयसवनं मदमेव तद्रसं दधाति॥ २॥ 'पवस्व मधुमत्तम' इति 'पवन्त इव ह्येतेनाऽह्ना मधुमत्तम' इत्यन्नं वै मध्वन्नाद्यमेव तद्यजमाने दधाति ॥३॥

'इन्द्रमच्छ सुता इम' इतीन्द्रियस्य वीर्यस्याऽऽवरुध्यै ।।४।। 'अयं पूषा रयिर्भग' इत्यनुष्टुभः सत्यस्त्रिष्टुभो रूपेण त्रैष्टुभꣳह्येतदहः ।।५।। 'वृषामतीनां पवते विचक्षण' इति जगत्यः सत्यस्त्रिष्टुभो रूपेण त्रैष्टुभꣳह्येतदहः ।।६।। गायत्रं भवति यदेव गायत्रस्य ब्राह्मणम् ।।७।। हाविष्मतं भवति ।।८।। हविष्माँश्च वै हविष्कृच्चाऽङ्गिरसावास्तां द्वितीयेऽहनि हविष्मानराध्नोन्नवमेऽहनि हविष्कृत् ।।९।। अयꣳहविष्मानित्येव जातमहर्ज्जातꣳसोमं प्राह देवेभ्यः साम्नैवास्मा आशिषमाशास्ते साम हि सत्याशीः ।।१०।। शङ्कु भवत्यह्नो धृत्यै यद्वा अधृतꣳशङ्कुना तद्दाधार ।।११।। तदु सीदन्तीयमित्याहुरेतेन वै प्रजापतिरूर्द्ध्वं इमान् लोकान– सीदद्यदसीदत्तत्सीदन्तीयस्य सीदन्तीयत्वमूर्द्ध्वं इमान् लोकान् सीदति सीदन्तीयेन तुष्टुवानः ।।१२।। सुज्ञानं भवति ।।१३।। स्वर्वद्वै राथन्तरꣳरूपꣳस्वर्णिधनं बार्हतम् ।।१४।। स्वर्णिधनं भवति तथा ह्येतस्याऽह्नो रूपम् ।।१५।। प्लवौ वा एतावुपोहन्ते स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै ।।१६।। गौरीवितं भवति यदेव गौरीवितस्य ब्राह्मणम् ।।१७।। क्रौञ्चं भवति ।।१८।। वाग्वै क्रौञ्चं वाग्द्वादशाहो वाच्येव तद्वाचा स्तुवते यज्ञस्य प्रभूत्यै ।।१९।। यामं भवति ।। २०।। एतेन वै यमोऽनपजय्यममुष्य लोकस्याऽऽधिपत्यमाश्नु– ताऽनपजय्यममुष्य लोकस्याऽऽधिपत्यमश्नुते यामेन तुष्टुवानः ।। २१।। एतेन वै यमो यमꣳस्वर्गँल्लोकमगमयत् स्वर्गस्य लोकस्याऽनुख्यात्यै स्वर्गाल्लोकान्न च्यवते तुष्टुवानः स्तोमः ।। २२।।

एकादशः खण्डः

'एह्यूषु ब्रुवाणित' इत्येहिवत्यो भवन्ति तृतीयऽस्याह्न उपहवाय सन्तत्यै ।।१।।

अपच्छिदिव वा एतद्यज्ञकाण्डं यदुक्थानि यदेति सलोमत्वाय ।।२।। एवाह्यसि वीरयुरिति समानं वदन्तीद–मित्थमसदिति ।।३।। इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्नित्यवर्द्धन्त ह्येतर्हि यजमानमेवैतया वर्द्धयन्ति ।।४।। साकमश्वं भवत्युक्थानामभिजित्या अभिक्रान्त्यै ।।५।। एतेन ह्यग्र उक्थान्यभ्यजयन्नेतेनाभ्यक्रामन् ।।६।। आमहीयवं भवति क्लृप्तिश्चाऽन्नाद्यञ्च समानं वदन्तीषु क्रियत इदमित्थमसदिति ।।७।। क्षत्रं वा एतदहरभिनिर्वदति यत्पञ्चदशं यद्गायत्रीषु ब्रह्मसाम भवति ब्रह्म चैव तत्क्षत्रञ्च सयुजी करोति ब्रह्मैव क्षत्रस्य पुरस्तान्निदधाति ब्रह्मणे क्षत्रञ्च विशञ्चाऽनुगे करोति ।।८।। ब्रह्म वै पूर्व्वमहः क्षत्रं द्वितीयं यद्गायत्रीषु ब्रह्मसाम भवति ब्रह्म तद्यशसार्द्धयति ब्रह्म हि गायत्री ।।९।। तदु समानं वदन्तीषु क्रियते समृद्ध्यै ।।१०।। आष्टादंष्ट्रे भवतः ।।११।। ऐयाहा इति वा इन्द्रो वृत्रमहन्नैयादोहोवेतिन्यगृह्णाद्वार्त्रघ्ने सामनी वीर्यवती ।।१२।। ओजएवैताभ्यां वीर्य्यमवरुन्धे ।।१३।। पञ्चदश एव स्तोमो भवत्योजस्येव तद्वीर्य्ये प्रतितिष्ठत्योजो वीर्यं पञ्चदशः ।।१४।।

।।इति एकादशोऽध्यायः।।



द्वादशोऽध्यायः

प्रथमः खण्डः

दविद्युतत्यारुचेति तृतीयस्याऽह्नः प्रतिपद्भवति ।।१।। दविद्युतती वै गायत्री परिष्टोभन्ती त्रिष्टुब् गवाशीर्ज्जगती त्रीणि रूपाणि समारभते त्रिरात्रस्याऽविस्रंसाय ।।२।। एते असृग्रमिन्दव इत्यनुरूपो भवति ।।३।। एतइति वै प्रजापतिर्देवानसृतासृग्रमिति मनुष्यानिन्दव इति पितृंस्तदेव तदभिवदति ।।४।। पूर्वमुच्चैव तद्रूपमपरेण रूपेणानुवदति यत्पूर्वंरूपमपरेण रूपेणानुवदति तदनुरूपस्याऽनु–रूपत्वमनुरूपएनं पुत्रो जायते य एवं वेद ।।५।। स्तोत्रीयानुरूपौ तृचौ भवतः प्राणापानानामवरुध्यै ।।६।। राजा मेधाभिरीयते पवमानो मनावध्यन्तरिक्षेण यातव इति ।।७।। अन्तरिक्षदेवत्यस्तृचो भवत्यन्तरिक्षदेवत्यमेतदहर्य्यत्तृतीयं तदेव तदभिवदति ।।८।। पञ्चर्च्चो भवति पञ्चपदा पङ्क्तिः पाङ्क्तमन्नमन्नाद्यस्याऽवरुध्यै ।।९।। तृच उत्तमो भवति येनैव प्राणेन प्रयन्ति तमभ्युद्यन्ति ।।१०।। सप्तदश–एव स्तोमो भवति प्रतिष्ठायै प्रजात्यै ।।११।।

द्वितीयः खण्डः

'अग्निनाग्निः समिध्यत' इत्याग्नेयमाज्यं भवति ।।१।। पूर्वे एव तदहनी समिद्धे तृतीयमहरभिसमिन्धे ।।२।। 'मित्रंहुवे पूतदक्ष'मिति राथन्तरम्मैत्रावरुणम् ।।३।। 'हुव' इति वै राथन्तरंरूपम् ।।४।। रथन्तरमेतत्परोक्षं यद्वैरूपं राथन्तरमेव तद्रूपं निर्द्योतयति ।।५।। इन्द्रेण सꣳहि दृक्षुस इत्यैन्द्रम् ।।६।। समिव वा इमे लोका दद्दृशिरेऽन्तरिक्षदेवत्यमेहर्य्यत्तृतीयं तदेव तदभिवदति ।।७।।

'ता हुवे ययोरिद'मिति राथन्तरमैन्द्राग्नम् ।।८।। 'हुव' इति वै राथन्तरꣳरूपꣳरथन्तरमेतत्परोक्षं यद्वैरूपं राथन्तरमेव तद्रूपं निर्द्योतयति स्तोमः ।।९।।

तृतीयः खण्डः

'उच्चा ते जातमन्धस' इति गायत्री भवति ।।१।। उद्वद्वा एतदहर्य्यत्तृतीयं तदेव तदभिवदति ।।२।। अन्धस्वती भवत्यहर्व्वा अन्धोऽह्न आरम्भः ।।३।। 'अभि सोमास आयव'इति ।।४।। 'अभीति रथन्तरस्य रूपं बृहदिति बृहत उभयोः सह रूपमुपैत्युभौ हि वर्णावेतदहः ।।५।। 'तिस्रो वाच ईरयति प्रवह्नि' रिति तृतीयस्याऽह्नो रूपं तेन तृतीयमहरारभन्ते ।।६।। त्रिष्टुभः सत्यो जगत्यो रूपेण जागतꣳह्येतदहः ।।७।। गायत्रं भवति यदेव गायत्रस्य ब्राह्मणम् ।।८।। वैष्टम्भं भवति ।।९।। अहर्वा एतदव्लीयत तद्देवा वैष्टम्भैर्व्यष्टभ्नुवꣳस्तद्वैष्टम्भस्य वैष्टम्भत्वम् ।।१०।। 'दिश' इति निधनमुपयन्ति दिशां धृत्यै ।।११।। पौरुमद्गं भवति ।।१२।। अहर्वा एतदव्लीयमानं तद्रक्षाꣳस्यन्व सचन्त तस्माद्देवाः पौरुमद्गेन रक्षाꣳस्यपाघ्नन्नप पाप्मानँ हते पौरुमद्गेन तुष्टुवानः ।।१३।। देवाश्च वाऽसुराश्चाऽस्पर्द्धन्त ते देवा असुराणां पौरुमद्गेन पुरोऽमज्जयन्यत् पुरोऽमज्जयꣳस्तस्मात्पौरुमद्गं पाप्मानमेवैतेन भ्रातृव्यं मज्जयति ।।१४।। गौतमं भवति ।।१५।। यदेव गौतमस्य ब्राह्मणम् ।।१६।। उभयतः स्तोभं तथाह्येतस्याऽह्नो रूपम् ।।१७।। अन्तरिक्षं भवति ।।१८।। अन्तरिक्षदेवत्यमेतदहर्य्यत्तृतीयमन्तरिक्ष एव तदन्तरिक्षेण स्तुवते प्रतिष्ठायै ।।१९।। आष्कारणिधनं काण्वं भवति ।।२०।। असिति वै राथन्तरं रूपं हसिति बार्हतं तृतीयमेव तद्रूपमुपयन्ति समृध्यै ।।२१।।

अङ्गिरसाꣳसंक्रोशो भवति ॥२२॥ एतेन वा अङ्गिरसः संक्रोशमानाः स्वर्गं लोकमायन् स्वर्गस्य लोकस्याऽनुख्यात्यै स्वर्गाल्लोकान्न च्यवते तुष्टुवानः स्तोमः ॥२३॥

चतुर्थः खण्डः

'यद्याव इन्द्र ते शत' मिति शतवत्यो भवन्ति ॥१॥ शतवद्वै पशूनाꣳरूपꣳसहस्रवत्पशूनामेवैताभीरूपमवरुन्धे ॥२॥ 'वयं घ त्वा सुतावन्त' इति सतो बृहत्यो वर्षीयश्छन्द आक्रमतेऽन-पभ्रꣳशाय ॥३॥ तरणिरित्सिषासति वाजं पुरन्ध्या युजाव इन्द्रं पुरुहूतं नमे गिरेत्यावदक्षरमुद्धतमिव वै तृतीयमहर्य्यदेतदावदक्षरं भवत्यहरेवैतेन प्रतिष्ठापयति ॥४॥ पञ्चनिधनं वैरूपं पृष्ठं भवति दिशां धृत्यै ॥५॥ पञ्चपदा पङ्क्तिः पाङ्क्तमन्नमन्नाद्यस्याऽव-रुध्यै ॥६॥ दिशां वा एतत्साम यद्वैरूपं दिशो ह्येवैतेनाऽभि वदति ॥७॥ अथ यत्पञ्चनिधनं तेनर्तूनां पञ्चह्यृतवः ॥८॥ ऋतुभिश्च वा इमे लोकादिग्भिश्चाऽऽवृतास्तेष्वे वोभयेषु यजमानं प्रतिष्ठापयति यजमानं वा अनु प्रतितिष्ठन्तमुद्गाता प्रतितिष्ठति य एवं विद्वान् वैरूपेणोद्गायति ॥९॥ दिग्वद्भवति भ्रातृव्यस्याऽपनुत्यै ॥१०॥ 'दिशं विश' मिति निधनमुपयन्ति दिशां धृत्यै ॥११॥ 'हसि'त्युपरिष्टाद्दिशां निधनमुपयन्ति तेन बार्हतम् ॥१२॥ राथन्तरो वा अयं लोको बार्हतोऽसावुभे एव तद्बृहद्रथन्तरयो रूपेणाऽपराध्नोति ॥१३॥ अनड्वाहौ वा एतौ देवयानौ यजमानस्य यद्बृहद्रथन्तरे तावेव तद्युनक्ति स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै ॥१४॥ अश्ववद्भवति प्रजात्यै ॥१५॥ यथा मण्डूक आद् करोत्येवं निधन-मुपयन्त्ययातयामतायै ॥१६॥

द्वादशवैरूपाणि भवन्ति द्वादशमासाः संवत्सरः संवत्सर एव प्रतितिष्ठति ।।१७।। विरूपः संवत्सरो विरूपमन्नमन्नाद्यस्याऽव–रुध्यै ।।१८।। महावैष्टभं ब्रह्मसाम भवत्यन्नाद्यस्याऽवरुध्यै ।।१९।। यदा वै पुरुषोऽन्नमत्त्यथाऽन्तरतो विष्टब्धः ।। २०।। 'दिश' इति निधनमुपयन्ति दिशां धृत्यै ।। २१।। सतो बृहतीषु स्तुवन्ति पूर्वयो–रह्नोः प्रत्युद्यमाय ।। २२।। रौरवमच्छावाकसाम भवति ।। २३।। अग्निर्वै रूरो रुद्रोऽग्निः ।। २४।। अग्निर्वा एतस्य पशूनपक्रमयति यस्य पशवोऽपक्रामन्त्यग्निरेतस्य पशूनभिक्रमयति यस्य पशवोऽभिक्रामन्ति ।। २५।। अभ्यभ्येवाऽस्य पशवः क्रामन्ति य एवं विद्वान् रौरवेण स्तुवते ।। २६।। परिष्टुब्धेडं तथा ह्येतस्याऽह्नो रूपꣳस्तोमः ।। २७।।

पञ्चमः खण्डः

'तिस्रो वाच उदीरत' इति तृतीयस्याऽह्नो रूपं तेन तृतीय–महरारभन्ते ।।१।। उद्वद्वा एतत् त्रिवदहर्य्यत् तृतीयं तदेव तदभिवदति ।। २।। 'आ सोता परिषिञ्चते'ति परिवत्यो भवन्ति ।। ३।। अन्तो वै तृतीयमहस्तस्यैताः पर्य्याप्त्यै ।।४।। 'सखाय आ निषीदते' त्युद्धतमिव वै तृतीयमह'र्य्यदाह निषीदते' त्यहरेवैतेन प्रतिष्ठापयति ।।५।। 'सुतासो मधुमत्तमा' इत्यनुष्टुभः सत्यो जगत्यो रूपेण जागतꣳह्येतदहः ।।६।। 'पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पत' इति ।।७।। विततमिव वा इदमन्तरिक्षमन्तरेमे अन्तरिक्ष देवत्यमेत–दहर्य्यत्तृतीयं तदेव तदभिवदति ।।८।। गायत्रं भवति यदेव गायत्रस्य ब्राह्मणम् ।।९।। पाष्ठौहं भवति ।।१०।। पष्ठवाड्वा एतेनाङ्गिरसश्चतुर्थस्याऽह्नो वाचं वदन्ती मुपाशृणोत्स होवागिति निधनमुपैत्तदस्याऽभ्युदितं तदहरवसत् ।।११।।

वाचः साम भवति ।।१२।। वाग्वै द्वादशाहो वाच्येव तद्वाचा स्तुवते यज्ञस्य प्रभूत्यै ।।१३।। निष्किरीयाः सत्रमासत ते तृतीयमहर्न—प्राजानꣳस्तानेतत्साम गायमानान् वागुपाप्लवत् तेन तृतीयमहः प्राजानꣳस्तेऽब्रु'वन्नियं वाव नस्तृतीयमहरदीदृश' दिति तृतीयस्यैवैषाऽह्नो दृष्टिः ।।१४।। शौक्तं भवति ।।१५।। शुक्तिर्वा एतेनाऽऽङ्गिरसोऽञ्जसा स्वर्गं लोकमपश्यत् स्वर्गस्य लोकस्याऽनुख्यात्यै स्वर्गाल्लोकान्न च्यवते तुष्टुवानः ।।१६।। गौरीवितं भवति यदेव गौरीवितस्य ब्राह्मणम् ।।१७।। त्वाष्ट्री साम भवति ।।१८।। इन्द्र वा अक्ष्यामयिणं भूतानि नाऽस्वा—पयꣳस्तमेतेन त्वाष्ट्र्योऽस्वापयꣳस्तद्वाव तास्तर्ह्यकामयन्त ।।१९।। कामसनि साम त्वाष्ट्री साम काममेवैतेनाऽवरुन्धे ।।२०।। इन्द्रो वृत्राद्विभ्यद्गां प्राविशत्तं त्वाष्ट्र्योऽब्रूवञ्जनयामेति तमेतैः सामभिरजनयञ्जायामहा इति वै सत्र मासते जायन्त एव ।।२१।। अरिष्टं भवति ।।२२।। देवाश्च वा असुराश्चास्पर्द्धन्त यं देवानामघ्नन्न स समभवद्यमसुराणाꣳसꣳसोऽभवत्ते देवास्तपोऽतप्यन्त त एतदरिष्टमपश्यꣳस्ततोऽयं देवानामघ्नन् सꣳसोऽभवद्यमसुराणां न ससमभवदनेनारिषामेति तदरिष्टस्यारिष्टत्वमरिष्ट्या एवाऽरिष्टमन्ततः क्रियते ।।२३।। त्रीडं भवति त्रिरात्रस्य धृत्यै ।।२४।। द्रवन्तीमिडामुत्तमामुपयन्ति चतुर्थस्याऽह्नः सन्तत्यै स्तोमः ।।२५।।

षष्ठः खण्डः

'प्रमꣳहिष्ठाय गायते'ति ।।१।। 'यद्गायते'ति महस एव तद्रूपं क्रियते ।।२।। 'तं ते मदं गृणी मसी'ति मदवद्वै रसवत्तृतीयसवनं मदमेव तद्रसं दधाति ।।३।।

'श्रुधीहवं तिरश्च्या' इति श्रुत्या एव ॥ ४॥ प्रमंहिष्ठीयं भवति ॥ ५॥ प्रमंहिष्ठीयेन वा इन्द्रो वृत्राय वज्रं प्रावर्त्तयत्तमस्तृणुत भ्रातृव्यवान् प्रमंहिष्ठीयेनोक्थानि प्रणयेत स्तृणुते भ्रातृव्यं वसीयांऽआत्मना भवति ॥ ६॥ हारिवर्णं भवति ॥ ७॥ इन्द्रश्च वै नमुचिश्चाऽसुरः समदधातां न नौ नक्तन्न दिवाऽहनन्नाऽऽर्द्रेण न शुष्केणेति तस्य व्यूष्टायामनुदित आदित्येऽपां फेनेन शिरोऽछिनदे-तद्वै न नक्तं न दिवायत् व्युष्टायामनुदित आदित्यएतन्नाऽऽर्द्रन्नशुष्कं यदपां फेनस्तदेनं पापीयां वाचं वदन्ववर्त्तत वीरहन्नद्रुहोद्रुह इति तन्नर्च्वा न साम्नाऽपहन्तुमशक्नोत् ॥ ८॥ तद्धारिवर्णस्यैव निधनेनापाहत ॥ ९॥ अपशुचंहते हारिवर्णस्य निधनेन श्रियञ्च हरश्चोपैति तुष्टुवानः ॥ १०॥ तैरश्च्यं भवति ॥ ११॥ अङ्गिरसः स्वर्गँल्लोकं यन्तो रक्षांस्यन्वसचन्त तान्येतेन तिरश्च्याङ्गिरसस्तिर्य्यङ्-पर्य्यवैद्यत्तिर्य्यङ्पर्य्यवैत्तस्तात्तैरश्च्यं पाप्मा वावस तानसचत तं तैरश्च्येनापाघ्नतापपाप्मनंहते तैरश्च्येन तुष्टुवान; ॥ १२॥ सप्तदश एव स्तोमो भवति प्रतिष्ठायै प्रजात्यै ॥ १३॥

सप्तमः खण्डः

'प्र त आश्विनीः पवमानधेनव' इति चतुर्थस्याऽह्नः प्रतिपद्भवति ॥ १॥ आप्ते त्रिरात्रे गायत्र्यो रूपेण प्रयन्ति प्रेति वै गायत्र्या रूपम् ॥ २॥ जगती प्रतिपद्भवति जागतमेत-दहर्य्यत्तृतीयञ्जगत्या एव तज्जगतीमभि संक्रामन्ति ॥ ३॥ यदतोऽन्या प्रतिपत् स्यात् प्रतिकूलं वाऽनुकूलं वा स्यात् ॥ ४॥ पवमानो अजीजनदित्यनुरूपो भवति ॥ ५॥ जनद्वद्वा एतदहर्यच्चतुर्थ-मन्नाद्यञ्जनयति विराजञ्जनयत्येकविंश स्तोमञ्जनयति ॥ ६॥

पूर्व्वमुच्चैव तद्रूपमपरेण रूपेणानुवदति यत्पूर्व्वंᳬरूपमपरेण रूपेणानुवदति तदनुरूपस्यानुरूपत्वमनुरूपं एनं पुत्रो जायते य एवं वेद ।।७।। स्तोत्रीयानुरूपौ तृचौ भवतः प्राणापानानामवरुध्यै ।।८।। षड्टृचौ भवत ऋतूनां धृत्यै ।।९।। तृच उत्तमो भवति येनैव प्राणेन प्रयन्ति तमभ्युद्यन्त्येकविंᳬश एव स्तोमो भवति प्रतिष्ठायै प्रतितिष्ठति ।।१०।।

अष्टमः खण्डः

'जनस्य गोपा अजनिष्ट जागृविरि'त्याग्नेयमाज्यं भवति ।।१।। जनद्वद्वा एतदहर्य्यच्चतुर्थमन्नाद्यञ्जनयति विराजञ्जनयत्येकविंᳬश स्तोमञ्जनयति ।।२।। 'अयं वां मित्रावरुणे'ति बार्हतं मैत्रावरुणम् ।।३।। बृहदेतत्परोक्षं यद्वैरूपं बार्हतमेव तद्रूपं निर्द्योतयति ।।४।। 'इन्द्रो दधीचो अस्थभि'रिति दाधीचस्तृचो भवति ।।५।। दध्यङ्वा आङ्गिरसो देवानां पुरोधानीय आसीदन्नं वै ब्रह्मणः पुरोधान्नाद्यस्याऽवरुध्यै ।।६।। 'इयं वामस्य मन्मन' इत्यैन्द्राग्नम् ।।७।। 'इन्द्राग्नी पूर्व्य'स्तुतिरभ्राद्वृष्टिरिवाऽजनी'-त्यानुष्टुभी वै वृष्टिरानुष्टुभमेतदहर्य्यच्चतुर्थं समीच्यौ विराजौ दधात्यन्नाद्याय स्तोमः ।।८।।

नवमः खण्डः

'पवस्व दक्षसाधन' इति गायत्री भवति सिध्यै ।।१।। 'यत् पवस्वे'ति तद्बृहतो रूपं बार्हतंᳬह्येतदहः ।।२।। 'तवाहंᳬसोमरारण सख्य इन्दो दिवे दिवे पुरूणि बभ्रो निचरन्ति मामव परिधीᳬंरतितांᳬइही'ति ।।३।। अति ह्यायञ्छकुना इव पप्तिमेत्यति ह्यपतत् ।।४।। पुनानो अक्रमीदभीति ।।५।।

गायत्र्यः सत्यस्त्रिष्टुभो रूपेण तस्मात्त्रिष्टुभां लोके क्रियन्ते ।।६।। गायत्रं भवति यदेव गायत्रस्य ब्राह्मणम् ।।७।। चतुर्णिधनमाथर्वणं भवति चतूरात्रस्य धृत्यै ।।८।। चतुष्पदा–नुष्टुभाऽऽनुष्टुभमेतदहर्य्यच्चतुर्थम् ।। ९।। भेषजं वाऽऽथर्वणानि भेषजमेव तत्करोति ।।१०।। निधनकामं भवति ।।११।। एकं वा अन्येन निरुक्तेन निधनेन कामꣳसनोत्यथैतन्निधनकामꣳसर्वेषां कामानामवरुध्यै ।।१२।। आष्टादꣳष्ट्रं भवति ।।१३।। यदेवाष्टा–दꣳष्ट्रस्य ब्राह्मणम् ।।१४।। आभीषवं भवत्यह्नो धृत्यै ।।१५।। यद्वा अधृतमभीशुना तद्दाधार ।।१६।। अनुतुन्नं गायति तथा ह्येतस्याऽह्नो रूपम् ।।१७।। चतुर्णिधनमाङ्गिरसं भवति चतूरात्रस्य धृत्यै ।।१८।। स्वःपृष्ठं तथा ह्येतस्याऽह्नो रूपम् ।।१९।। सत्रासाहीयं भवति ।। २०।। यद्वा असुराणामसोढमासीत्तद्देवाः सत्रासाहीयेनासहन्त सत्रैनानसक्ष्महीति तत्सत्रासाहीयस्य सत्रासाहीयत्वम् ।। २१।। सत्रा भ्रातृव्यꣳसहते सत्रा साहीयेन तुष्टुवानः ।। २२।। गायत्रीषु स्तुवन्ति प्रतिष्ठायै ब्रह्मवर्च्चसाय येनैव प्राणेन प्रयन्ति तमभ्युद्यन्ति ।। २३।। वृषण्वत्यो गायत्र्यो भवन्ति तदु त्रैष्टुभाद्रूपान्नयन्ति स्तोमः ।। २४।।

दशमः खण्डः

'पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा यं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः सोतुर्बाहुभ्याꣳसुयतो नार्वे'त्यायतमिव वै चतुर्थमहस्तस्यैव यत्यै ।।१।। 'विश्वाः पृतना अभिभूतरं नर' इत्यतिजगतीवर्षीयश्छन्द आक्रमतेऽनपभ्रꣳशाय ।। २।। अपभ्रꣳश इव वा एष यज्जायसश्छन्दसः कनीयश्छन्द उपैति यदेषा चतुर्थेऽहन्यतिजगती क्रियतेऽनपभ्रꣳशाय ।। ३।। यो राजा चर्षणीनामिति ।।४।।

राज्ये ह्येतर्हि वाचोऽगच्छन् राज्यमेवैतया यजमानं गमयन्ति ।।५।। छन्दोभिर्वै देवा आदित्यꣳस्वर्गं लोकमहरन् स नाऽऽध्रियत तं वैराजस्य निधनेनाद्दꣳहꣳस्तस्मात् पराङ् चार्व्वाङ् चादित्यस्तपति पराङ्चार्वाङ्चेकारः ।।६।। प्रस्तावं प्रस्तुत्य विष्टम्भान्विष्टम्भ्नोति मुखतएव तदन्नाद्यं धत्ते मुखꣳहि साम्नः प्रस्तावः ।।७।। दशकृत्वो विष्टभ्नोति दशाक्षरा विराड् वैराजमन्नमन्नाद्यस्यावरुध्यै ।।८।। त्रिꣳशत्कृत्वो विष्टभ्नोति भूयसोऽन्नाद्यस्यावरुध्यै ।। ९।। वैराजꣳसाम भवति विराट्षु स्तुवन्ति वैराजा विष्टम्भाः समीचीर्विराजो दधात्यन्नाद्याय ।।१०।। अनुतुन्नं गायति रेतो धेयायाऽनुतुन्नाद्धि रेतो धीयते ।।११।। दक्षिण ऊरावुद्गातुरग्निं मन्थन्ति दक्षिणतो हि रेतः सिच्यते ।।१२।। उपाकृतेऽहिङ्कृते मन्थन्ति जातमभिहिङ्करोति ।।१३।। तस्माज्जातं पुत्रं पशवोऽभि हिङ्कुर्वन्ति ।।१४।। तस्मै जातायामीमाꣳसन्त गार्हपत्ये प्रहरामा ३ आग्नीध्रा ३ आहवनीया ३ इति ।।१५।। आहवनीये प्रहरन्त्ये तदायतनो वै यजमानो यदाहवनीयः स्वमेव तदायतनञ्ज्योतिष्मत्करोति ।।१६।। ज्योतिष्मान् ब्रह्मवर्चसी भवति य एवं वेद ।।१७।। अभि जुहोति शान्त्यै आज्येनाभिजुहोति तेजो वा आज्यं तेज एव तदात्मन्धत्ते ।।१८।। 'प्रेद्धो अग्ने दीदिह पुरो न' इति विराजाऽभिजुहोत्यन्नं विराडन्नाद्यस्या–वरुध्यै ।।१९।। त्रैशोकं ब्रह्मसाम भवति ।। २०।। अतिजगतीषु स्तुवन्त्यह्न उत्क्रान्त्या उद्वा एतेनाह्ना क्रामन्ति ।। २१।। दिवेति निधनमुपयन्ति पाप्मनोऽपहत्या अपपाप्मानꣳहते त्रैशोकेन तुष्टुवानः ।। २२।। भरद्वाजस्य पृश्न्यच्छावाकसाम भवति ।। २३।। 'अन्नं वै देवाः पृश्नी'ति वदन्त्यन्नाद्यस्यावरुध्यै ।। २४।। इडाभिरैडं तथा ह्येतस्याऽह्नो रूपꣳस्तोमः ।। २५।।

एकादशः खण्डः

'परि प्रिया दिवः कवि'रिति परिवत्यो भवन्त्यन्तो वै चतुर्थमहस्तस्यैताः पर्याप्त्यै ।।१।। 'त्वꣳह्यङ्ग दैव्ये'ति त्वमिति बृहतो रूपं बार्हतꣳह्येतदहः ।।२।। 'सोमः पुनान ऊर्मिणा व्यं वारे विधावति । अग्रे वाचः पवमानः कनिक्रद'दिति ।।३।। अग्रꣳह्ये-तर्हि वाचोऽगच्छन्नग्रमेवैतया यजमानं गमयन्ति ।।४।। 'पुरो जितीवो अन्धस' इति विराजौ वैराजꣳह्येतदहः ।।५।। 'सोमः पवते जनिता मतीना' मिति प्रातःसवने षोडशिनं गृहीतं तृतीयसवने प्रजनयन्ति ।।६।। त्रिष्टुभः सत्यो जगत्यो रूपेण तस्माज्जगतीनां लोके क्रियन्ते ।।७।। गायत्रं भवति यदेव गायत्रस्य ब्राह्मणम् ।।८।। और्णायवं भवति ।।९।। अङ्गिरसो वै सत्रमासत तेषामाप्तः स्पृतः स्वर्गो लोक आसीत्पन्थानं तु देवयानं न प्राजानꣳस्तेषाङ्कल्याण आङ्गिरसोऽध्यायमुदव्रजन् स ऊर्णायुङ्गन्धर्वमप्सरसां मध्ये प्रेङ्खयमाण-मुपैत्स ईयामिति यां यामभ्यदिशत्सैनमकामयत तमभ्यवदत्कल्याणा३ इत्याप्तो वै वः स्पृतः स्वर्गो लोकः पन्थानं तु देवयानं न प्रजानीथेदꣳसाम स्वर्ग्यं तेन स्तुत्वा स्वर्गं लोकमेष्यथ मा तु वोचोऽहमदर्शमिति ।।१०।। स ऐत्कल्याणः सोऽब्रवीदाप्तो वै नः स्पृतः स्वर्गो लोकः पन्थानं तु देवयानन्न प्रजानीम इवꣳसाम स्वर्ग्यं तेन स्तुत्वा स्वर्गं लोकमेष्याम इति कस्तेऽवोचदित्यहमेवादर्शमिति तेन स्तुत्वा स्वर्गं लोकमायन्नहीयत्कल्याणोऽनृसꣳहि सोऽवदत्स एषः श्वित्रः ।।११।। स्वर्ग्यं वा एतत्साम स्वर्गलोकः पुण्यलोको भवत्यौर्णायवेन तुष्टुवानः ।।१२।। बृहत्कं भवति ।।१३।। सामाऽऽर्षेयेण प्रशस्तं त्वꣳहीत्यन्नाद्यस्यावरुध्यै हीति वा अन्नं प्रदीयते षोडशिनमुचैवैतेनोद्यच्छति ।।१४।।

आतीषादीयं भवति ।।१५।। आयुर्वा आतीषादीयमायुषोऽवरुध्यै ।।१६।। आतमितोर्निधनमुपयन्त्यायुरेव सर्वमाप्नुवन्ति ।।१७।। नानदं भवति ।।१८।। ज्यायोऽभ्यारम्भमतिहाय पञ्चममहः षष्ठस्याऽह्न आरम्भस्तेन षष्ठमहरारभन्ते सन्तत्यै।।१९।। षोडशाक्षरेण प्रस्तौति षोडशिनमुचैवैतेनोद्यच्छति।। २०।। आन्धीगवं भवति।। २१।। पद्या वा अन्या विराडक्षर्य्याऽन्यास्माल्लोकात्पद्यया विराजाऽन्नाद्यमवरुन्धेऽमुष्मादक्षर्य्ययोभयोरनयोर्ल्लोकयोरन्नाद्यमवरुन्ध आन्धीगवेन तुष्टुवानः ।। २२।। वात्सप्रं भवति ।। २३।। एतस्मिन्वै वैराजं प्रतिष्ठितं प्रतितिष्ठति वात्सप्रेण तुष्टुवानः ।। २४।। वत्सप्रीर्भालन्दनः श्रद्धां नाऽविन्दत सतपोऽतप्यत स एतद्वात्सप्रमपश्यत्स श्रद्धामविन्दत श्रद्धां विन्दामहा इति वै सत्रमासते विन्दते श्रद्धाम् ।। २५।। ई निधनं तथा ह्येतस्याह्वे रूपं निधनान्ताः पवमाना भवन्त्यह्नो धृत्यै स्तोमः ।। २६।।

द्वादशः खण्डः

'अग्निं वो वृधन्त'मिति ।।१।। अवर्द्धन्त ह्येतर्हि यजमानमेवैतया वर्द्धयन्ति ।। २।। 'वयमु त्वामपूर्व्ये' त्यपूर्वाँश्ह्येतर्हि प्रजापतेस्तनूमगच्छन्न पूर्व्वमेवैतया यजमानं गमयन्ति ।। ३।। 'इममिन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठममर्त्यं मद'मिति ज्यैष्ठ्यंश्ह्येतर्हि वाचोऽगच्छन् ज्यैष्ठ्यमेवैतया यजमानं गमयन्ति ।।४।। सैन्धुक्षितं भवति ।।५।। सिन्धुक्षिद्वै राजन्यर्षिर्ज्योगपरुद्धश्चरन् स एतत् सैन्धुक्षितमपश्यत् सोऽवागच्छत् प्रत्यतिष्ठदवगच्छति प्रतितिष्ठति सैन्धुक्षितेन तुष्टुवानः ।। ६।। सौभरं भवति बृहतस्तेजः ।।७।। पन्नमिव वै चतुर्थमहस्तदेतेन बृहतस्तेजसोत्तभ्नोति सौभरेण ।।८।। वसिष्ठस्य प्रियं भवति ।। ९।। एतेन वै वसिष्ठं इन्द्रस्य प्रेमाणमगच्छत् प्रेमाणं देवतानाङ्गच्छति वासिष्ठेन तुष्टुवानः स्तोमः ।।१०।।

त्रयोदशः खण्डः

इन्द्रश्च बृहच्च समभवतां तमिन्द्रं बहदेकया तन्वात्यरिच्यत तस्या अविभेदनयामाऽभि भविष्यतीति सोऽब्रवीत् षोडशी तेऽयं यज्ञक्रतुरस्त्विति स षोडश्यभवत्तदस्य जन्म ॥१॥ अतिश्रिया भ्रातृव्यꣳरिच्यते यो गायत्रीषु द्विपदासु बृहता षोडशिना स्तुते ॥२॥ 'उप नो हरिभिः सुत'मित्येता वै गायत्र्यो द्विपदा एतासु स्तोतव्यम् ॥३॥ इन्द्रः प्रजापतिमुपाधावद् वृत्रꣳहनानीति तस्मा एतामनुष्टुभमपहरसं प्रायच्छत्तया नाऽस्तृणुत यदस्तृतोव्यनदत्तन्नानदस्य नानदत्वम् ॥४॥ तं पुनरुपाधावत्तस्मै सप्तानाꣳहोत्राणाꣳहरो निर्म्माय प्रायच्छत् तमस्तृणुत ॥५॥ स्तृणुते तं यं तुस्तूर्षते य एवं वेद ॥६॥ तस्माद्धरीवतीषु स्तुवन्ति हरिवतीः शꣳसन्ति हरिवतीषु ग्रहो गृह्यते हरो ह्यस्मै निर्म्माय प्रायच्छत् ॥७॥ एकविꣳशायतनो वा एष यत् षोडशी सप्त हि प्रातःसवने होत्रा वषट् कुर्वन्ति सप्त माध्यन्दिने सवने सप्त तृतीयसवने ॥८॥ गौरीवितं भवति ॥९॥ गौरीवितिर्वा एतच्छाक्त्योब्रह्मणोऽतिरिक्त-मपश्यत्तद्गौरीवितमभवदतिरिक्तं वा एतदतिरिक्तेन स्तुवन्ति यद्गौरीवितेन शोडशिनꣳश्वस्तनवान् भवत्यपि प्रजाया उपक्लृप्तः ॥१०॥ विशालं लिबुजया भूत्याऽभ्यधादिति होवाचोपोदिति गौपालेयोऽनुष्टुभि नानदमकर्गौरीवितेन षोडशिनमस्तोष्टाञ्जसा श्रियमुपागान्न श्रिया अवपद्य इति ॥११॥ एष वै विशालं लिबुजया भूत्याऽभिदधाति योऽनुष्टुभि नानदं कृत्वा गौरीवितेन षोडशिना स्तुतेऽञ्जसाश्रिय-मुपैति न श्रिया अवपद्यते ॥१२॥ शक्वरीषु षोडशिना स्तुवीत यः कामयेत वज्री स्यामिति ॥१३॥ वज्रो वै षोडशी वज्रः शक्वर्यो वज्रेणैवास्मै वज्रꣳस्पृणोति वज्री भवति ॥१४॥

अनुष्टुप्सु षोडशिना स्तुवीत यः कामयेत न मा वागति वदेदिति ॥१५॥ वज्रो वै षोडशी वागनुष्टुब्वज्रेणैवाऽस्मै वाचंस्पृणोति नैनं वागतिवदति ॥१६॥ 'असावि सोम इन्द्र त' इत्येतासु स्तोतव्यम् ॥१७॥ विराट्स्वन्नाद्यकामः षोडशिना स्तुवीत वज्रो वै षोडशी वैराजमन्नं वज्रेणैवास्मा अन्नंस्पृणोत्यन्नादो भवति ॥१८॥ 'प्र वो महे महे वृधे भरध्व'मित्येतासु स्तोतव्यम् ॥१९॥ त्रयस्त्रिंशदक्षरा वा एता विराजो यदेकविंशतिः प्रतिष्ठा सा यद्द्वादशप्रजातिः सा ॥ २०॥ प्रतिष्ठाय प्रजायते नो चाऽन्तस्थायाञ्जीयते य एवं वेद ॥ २१॥ अथ वा एता एकपदास्त्र्यक्षरा विष्णोश्छन्दो भुरिजः शक्वर्य्यः ॥ २२॥ एताभिर्वा इन्द्रो वृत्रमहन् क्षिप्रं वा एताभिः पाप्मानंहन्ति क्षिप्रं वसीयान् भवति ॥ २३॥ चतुस्त्रिंशदक्षराः संस्तुतो भवति त्रयस्त्रिंशद्देवताः प्रजापतिश्चतु-स्त्रिंशो देवतानां प्रजापतिमेवोपयन्त्यरिष्ट्यै ॥ २४॥ हिरण्यं-सप्रदायंषोडशिना स्तुवते ज्योतिष्मानस्य षोडशी भवति ॥ २५॥ अश्वः कृष्ण उपतिष्ठति साम्येक्ष्याय भ्रातृव्यलोकमेव स विधमंस्तिष्ठति ॥ २६॥ एकाक्षरं वै देवानामवमं छन्द-आसीत्सप्ताक्षरं परमं नवाक्षरमसुराणामवमं छन्दआसीत् पञ्चदशाक्षरं परमं देवाश्च वा असुराश्चास्पर्द्धन्त तान् प्रजापतिरानुष्टुभो भूत्वाऽन्तरातिष्ठत्तं देवासुरा व्यह्वयन्त स देवानुपावर्त्तत ततो देवा अभवन् पराऽसुराः ॥ २७॥ भवत्यात्मना पराऽस्य भ्रातृव्यो भवति य एवं वेद ॥ २८॥ ते देवा असुराणामेकाक्षरेणैव पञ्चदशाक्षरमवृञ्जत द्व्यक्षरेण चतुर्दशाक्षरं त्र्यक्षरेण त्रयोदशाक्षरञ्चतुरक्षरेण द्वादशाक्षरं पञ्चाक्षरेणैकादशाक्षरंषडक्षरेण दशाक्षरंसप्ताक्षरेण नवाक्षर-मष्टाभिरेवाष्टा ववृञ्जत ॥ २९॥

एवमेव भ्रातृव्याद्भूतिं वृङ्क्ते य एवं वेद ।। ३० ।। अपरुद्ध यज्ञइव वा एष यत् षोडशी कनीयस्विनइव वै तर्हि देवा आसन् भूयस्विनोऽसुराः कनीयस्वी भूयस्विनं भ्रातृव्यं वृङ्क्ते य एवं वेद ।। ३१ ।। 'यस्मादन्यो न परोऽस्ति जातो य आवभूव भुवनानि विश्वाः प्रजापतिः प्रजया सम्विदानस्त्रीणि ज्योतींश्षि सचते स षोडशीत्युद्गाता ग्रहमवेक्षते ।। ३२ ।। ज्योतिष्मानस्य षोडशी भवति य एवं वेद ।। ३३ ।। एकविंश्श एव स्तोमो भवति प्रतिष्ठायै प्रतितिष्ठति ।। ३४ ।।

।। इति द्वादशोऽध्यायः ।।



त्रयोदशोऽध्यायः

प्रथमः खण्डः

'गोवित् पवस्व वसुविद्धिरण्यविदि'ति पञ्चमस्याह्नः प्रतिपद्भवति ।।१।। गोविद्वा एतद्वसुविद्धिरण्यविद्यच्छक्वर्य्यः ।।२।। पशवः शक्वर्यः सर्वं पशुभिर्विन्दते ।।३।। 'त्वꣳसुवीरो असि सोम विश्वविदि'त्येष वाव सुवीरो यस्य पशवस्तदेव तदभिवदति ।।४।। 'तास्ते क्षरन्तु मधुमद्घृतं पय' इति मधुमद्वै घृतं पयः पशवः क्षरन्ति तदेव तदभिवदति ।।५।। पवमानस्य विश्वविदित्यनुरूपो भवति ।।६।। विश्वमेव तद्वित्तमभिवदति विश्वꣳहि पशुभिर्विन्दते ।।७।। 'प्र ते सर्गा असृक्षते'ति सृष्टानीव ह्येतर्ह्यहानि ।।८।। पूर्वमुच्चैव तद्रूपमपरेण रूपेणानुवदति यत्पूर्वꣳरूपमपरेण रूपेणानुवदति तदनुरूपस्यानुरूपत्वमनुरूप एनं पुत्रो जायते य एवं वेद स्तोत्रीयानुरूपौ तृचौ भवतः प्राणा– पानानामवरुध्यै ।।९।। सप्तर्च्चौ भवतश्छन्दसां धृत्यै ।।१०।। चतुर्ऋचो भवति प्रतिष्ठायै ।।११।। तृच उत्तमो भवति येनैव प्राणेन प्रयन्ति तमभ्युद्यन्ति त्रिणव एव स्तोमो भवति प्रतिष्ठायै पुष्ट्यै त्रिवृद्वा एष पुष्टः ।।१२।।

द्वितीयः खण्डः

'तव श्रियो वर्ष्यस्येव विद्युत' इत्याग्नेयमाज्यं भवति ।।१।। श्रीर्वै पशवः श्रीः शक्वर्य्यस्तदेव तदभिवदति ।।२।। 'अग्नेश्चिकित्त उषसामिवेतय' इतीतानीव ह्येतर्ह्यहानीत्याते यतन्ते रथ्यो यथा पृथुगि'त्येव ह्येतर्ह्यहानि यतन्ते ।।३।।

'पुरूरुणाचिध्यस्त्यवो नूनं वां वरुणे'ति मैत्रावरुणं यद्वै यज्ञस्य दुरिष्टं तद्वरुणो गृह्णाति तदेव तदवयजति ।।४।। 'उत्तिष्ठन्नोजसा सहे'त्यैन्द्रम् ।।५।। पञ्च वा ऋतव उत्थानस्य रूपमोजसा सहेत्योजसैव वीर्य्येण सहोत्तिष्ठन्ति ।।६।। 'इन्द्राग्नी युवामिम' इति राथन्तरमैन्द्राग्नम् ।।७।। रथन्तरमेतत्परोक्षं यच्छक्वर्य्यो राथन्तरमेव तद्रूपं निर्द्योतयति स्तोमः ।।८।।

तृतीयः खण्डः

'अर्षा सोम द्युमत्तम' इति विष्णुमत्यो गायत्र्यो भवन्ति ।।१।। ब्रह्म वै गायत्री यज्ञो विष्णुर्ब्रह्मण्येव तद्यज्ञं प्रतिष्ठापयति ।।२।। 'सोम उष्वाणस्तोतृभिरि'ति सिमानां रूपꣳस्वेनैवैतास्तद्रूपेण समर्द्धयति ।।३।। 'यत्सोमचित्रमुक्थ्यामि'ति गायत्र्यः सत्यस्त्रिष्टुभो रूपेण तस्मात् त्रिष्टुभां लोके क्रियन्ते ।।४।। गायत्रं भवति यदेव गायत्रस्य ब्राह्मणम् ।।५।। यण्वं भवति पशवो वै यण्वं पशूनाम–वरुध्यै ।।६।। सन्ततं गायति यज्ञस्य सन्तत्यै ।।७।। अध्यर्द्धेडं तथा ह्येतस्याह्नो रूपम् ।।८।। शाकलं भवति ।।९।। एतेन वै शकलः पञ्चमेऽहनि प्रत्यतिष्ठत्प्रतितिष्ठति शाकलेन तुष्टुवानः ।।१०।। वार्शं भवति ।।११।। वृशो वैजानस्त्र्यरुणस्य त्रैधात्वस्यैक्ष्वाकस्य पुरोहित आसीत्स ऐक्ष्वाकोऽधावयत् ब्राह्मणकुमारꣳरथेन व्यच्छिनत्स पुरोहितमब्रवीत्तव मा पुरोधायामिद–मीदृगुपागादिति तमेतेन साम्ना समैरयत्तद्वाव स तर्ह्यकामयत कामसनि साम वार्शं काममेवैतेनावरुन्धे ।।१२।। अध्यर्द्धेडं तथा ह्येतस्याऽह्नो रूपम् ।।१३।। मानवं भवति ।।१४।। एतेन वै मनुः प्रजातिं भूमानमगच्छत्प्रजायते बहुर्भवति मानवेन तुष्टुवानः ।।१५।।

आनूपं भवति ।।१६।। एतेन वै वध्र्यश्व आनूपः पशूनां भूमानमाश्नुत पशूनां भूमानमश्नुत आनूपेन तुष्टुवानः।।१७।। वाम्रं भवति ।।१८।। सामार्षेयेण प्रशस्तं यं वै गां यमश्वं यं पुरुषं प्रशंसन्ति।।१९।। अध्यर्द्धेडं तथा ह्येतस्याह्नो रूपं ।।२०।। त्रिणिधनमाग्नेयं भवति प्रतिष्ठायै ।। २१।। अग्निः सृष्टो नोददीप्यत तं प्रजापतिरेतेन साम्नोपाधमत् स उददीप्यत दीप्तिश्च वा एतत्साम ब्रह्मवर्च्चसञ्च दीप्तिञ्चैवैतेन ब्रह्मवर्चसञ्चावरुन्धे ।। २२।। शैशवं भवति ।। २३।। शिशुर्वा आङ्गिरसो मन्त्रकृतां मन्त्रकृदासीत् स पितॄन् पुत्रका इत्यामन्त्रयत तं पितरोऽब्रुवन्नधर्म्मं करोषि यो नः पितॄन् सतः पुत्रका इत्यामन्त्रयस इति सोऽब्रवीदहं वाव पितास्मि यो मन्त्रकृदास्मीति तं देवेष्वपृच्छन्त ते देवा अब्रुवन्नेष वाव पिता यो मन्त्रकृदिति तद्वै स उदजयदुज्जयति शैशवेन तुष्टुवानः ।। २४।। गायत्रीषु स्तुवन्ति प्रतिष्ठायै ब्रह्मवर्च्चसाय येनैव प्राणेन प्रयन्ति तमभ्युद्यन्ति ।। २५।। विष्णुमत्यो गायत्र्यो भवन्ति तदु त्रैष्टुभाद्रूपान्नयन्ति स्तोमः ।। २६।।

चतुर्थः खण्डः

इन्द्रः प्रजापतिमुपाधावद्वृत्रंहनानीति तस्माएतच्छन्दोभ्य इन्द्रियं वीर्य्यं निर्माय प्रायच्छदेतेन शक्नुहीति तच्छक्वरीणांशक्वरीत्वं— सीमानमभिनत्तत्सिमामह्न्यमकरोत्तन्मह्न्या महान् दोष आसीत् तन्महानाम्न्यः ।।१।। दिशः पञ्चपदा दाधारर्त्तून् षट्पदा छन्दाँसि सप्तपदा पुरुषं द्विपदा ।। २।। द्व्योपशाः संस्तुता भवन्ति तस्माद् द्व्योपशाः पशवः ।। ३।। इडे अभितोऽथकारं तस्माच्छृङ्गे तीक्ष्णीयसी स्तूपात् ।।४।। उपक्षुद्रा गायति तस्मादुपक्षुद्राः पशवः ।।५।।

असंश्शिलष्टा गायति तस्मा दसंश्शिलष्टाः पशवः ।।६।। नानारूपा गायति तस्मान्नानारूपाः पशवः ।।७।। आपो वै क्षीररसा आसंस्ते देवाः पापवसीयसादविभयुर्यदप उपनिधाय स्तुवते पापवसीयसो विधृत्यै ।।८।। विधृतिः पापवसीयसो भवति य एवं वेद ।।९।। गायत्रमयनं भवति ब्रह्मवर्चसकामस्य स्वर्णिधनं मधुनाऽमुष्मिँल्लोक उपतिष्ठते त्रैष्टुभमयनं भवत्योजस्कामस्याथ–कारणिधनमाज्येनामुष्मिँल्लोक उपतिष्ठते जागतमयनं भवति पशुकामस्येडानिधनं पयसामुष्मिँल्लोक उपतिष्ठते ।।१०।। अञ्जसाऽर्य्योमाल्यः शक्वरीः प्रारौत्सीदिति होवाचालम्मं पारिजातनंश्रजनः कौणेयो यद्धेताः प्रतिष्ठापंश्शक्ष्यतीत्येतद्वा एतासामञ्ज एतत्प्रतिष्ठिता य आभिः क्षिप्रं प्रस्तुत्य क्षिप्रमुद्गायति ।।११।। शक्वरीभिः स्तुत्वा पुरीषेण स्तुवते ।।१२।। पशवो वै शक्वर्यो गोष्ठः पुरीषं गोष्ठमेव तत् पशुभ्यः पर्य्यस्यन्ति तमेवैनान् प्रवर्त्तयन्त्यविस्रंश्साय ।।१३।। 'इन्द्रो मदाय वावृध' इत्यवर्द्धन्त ह्येतर्हि ।।१४।। तासु बार्हद्गिरम् ।।१५।। 'स्वादोरित्था विषूवत' इति विषुवान् वै पञ्चममहस्तासु रायोवाजीयम् ।।१६।। इन्द्रो यतीन् सालावृकेभ्यः प्रायच्छत्तेषां त्रय उदशिष्यन्त पृथुरश्मिर्बृहद्गिरीरायोवाजस्तेऽब्रुवन् को न इमान् पुत्रान् भरिष्यतीत्यहमितीन्द्रोऽब्रवीत्तानधिनिधाय परिचार्य्यं चरन्वर्द्धयंश्स्तान् वर्द्धयित्वाब्रवीत् कुमारका वरान् वृणीध्वमित, क्षत्रं मह्यमित्यब्रवीत् पृथुरश्मिस्तस्मा एतेन पार्थुरश्मेन क्षत्रं प्रायच्छत् क्षत्रकाम एतेन स्तुवीत क्षत्रस्यैवास्य प्रकाशो भवति, ब्रह्मवर्चसं मह्यमित्यब्रवीद् बृहद्गिरिस्तस्मा एतेन बार्हद्गिरेण ब्रह्मवर्चसं प्रायच्छत् ब्रह्मवर्चसकाम एतेन स्तुवीत ब्रह्मवर्चसी भवती, पशून् मह्यमित्यब्रवीद्रायोवाज

स्तस्मा एतेन रायोवाजीयेन पशून् प्रायच्छत् पशुकाम एतेन स्तुवीत पशुमान् भवति ।।१७।। पार्थुरश्मंरराजन्याय ब्रह्मसाम कुर्य्यात् बार्हद्गिरं ब्राह्मणाय रायोवाजीयं वैश्याय स्वेनैवैनांस्तद्रूपेण समर्द्धयति स्तोमः ।।१८।।

पञ्चमः खण्डः

'असाव्यंशुर्म्मदाये' ति गायत्री भवति मदवद्धै रसवत्तृतीयसवनं मदमेव तद्रसं दधाति ।।१।। 'अभिद्युम्नं बृहद्यश' इत्यभीति रथन्तरस्य रूपं बृहदिति बृहत उभयोः सह रूपमुपैत्युभौ हि वर्णावेतदहः ।। २।। 'प्राणा शिशुर्महीना'मिति सिमानांरूपं मह्यो हि सिमाः स्वेनैवैना-स्तद्रूपेण समर्द्धयति ।। ३।। 'पवस्व वाजसातय' इति वैष्णव्योऽनुष्टुभो भवन्ति ।।४।। यज्ञो वै विष्णुर्यदत्र नापि क्रियते तद्विष्णुना यज्ञेनापि करोति ।।५।। 'इन्दुर्वाजी पवते गोन्योघा' इति सिमानांरूपं स्वेनैवैनास्तद्रूपेण समर्द्धयति ।।६।। त्रिष्टुभः सत्यो जगत्यो रूपेण तस्माज्जगतीनांल्लोके क्रियन्ते ।।७।। गायत्रं भवति यदेव गायत्रस्य ब्राह्मणम् ।।८।। सन्तनि भवति पञ्चमस्याह्नः सन्तत्यै ।। ९।। वाग्वा एषा प्रतता यद्द्वादशाहस्तस्या एष विषुवान् यत् पञ्चममहस्तामेवैतेन सन्तनोति ।।१०।। च्यावनं भवति ।।११।। प्रजापतिर्वै च्यावनं प्रजायते बहुर्भवति च्यावनेन तुष्टवानः ।।१२।। एभ्यो वै लोकेभ्यो वृष्टिरपाक्रामत्तां प्रजापतिश्च्यावनेनाच्यावयद्यदच्यावयत्तच्च्यावनस्य च्यावनत्वं च्यावयति वृष्टिञ्च्यावनेन तुष्टुवानः ।।१३।। क्रोशं भवति ।।१४।। एतेन वा इन्द्र इन्द्रक्रोशे विश्वामित्रजमदग्नी इमागाव इत्यक्रोशत् पशूनामवरुध्यै क्रोशं क्रियते ।।१५।। गौरीवितं भवति यदेव गौरीवितस्य ब्राह्मणम् ।।१६।। ऋषभः शक्वरो भवति ।।१७।।

पशवो वै शक्वर्य्यः पशुष्वेव तन्मिथुनमप्यर्ज्जति प्रजात्यै न ह वा अनृषभाः पशवः प्रजायन्ते ।।१८।। पार्थं भवति ।।१९।। एतेन वै पृथुर्वैन्य उभयेषां पशूनामाधिपत्यमाश्नुतोभयेषां पशूनामाधिपत्यमश्नुते पार्थेन तुष्टुवानः ।। २०।। अष्टेडः पदस्तोभो भवति ।। २१।। 'इन्द्रोवृत्राय वज्रमुदयच्छत्तं षोडशभिर्भोगैः पर्य्यभुजत् स एतं पदस्तोभमपश्यत्तेनापावेष्टयदपवेष्टयन्निव गायेत् पाप्मनोऽपहत्यै ।। २२।। पाप्मा वाव स तमगृह्णात्तं पदस्तोभे-नापाहतापपाप्मानꣳहते पद स्तोभेन तुष्टुवानः ।। २३।। पदो-रुत्तममपश्यत्तत्पदस्तोभस्य पदस्तोभत्वम् ।। २४।। द्वादशनिधनो भवति प्रतिष्ठायै ।। २५।। दाशस्पत्यं भवति ।। २६।। यां वै गां प्रशꣳसन्ति दाशस्पत्येति तां प्रशꣳसन्त्यहरेवैतेन प्रशꣳसन्ति ।। २७।। निधनान्ताः पवमाना भवन्त्यह्नो धृत्यै स्तोमः ।। २८।।

षष्ठः खण्डः

'आते अग्न इधीमही'ति ।।१।। अपच्छिदिव वा एतद्यज्ञकाण्डं यदुक्थानि यदेति सलोमत्वायैव ।।२।। 'इन्द्राय साम गायते'ति पूर्णाः ककुभस्तेनानशनायुको भवति ।।३।। पुरुषो वै ककुप् पुरुषमेव तन्मध्यतः प्रीणाति ।।४।। 'असावि सोम इन्द्रत' इति सिमानाꣳरूपꣳस्वेनैवैनाꣳस्तद्रूपेण समर्द्धयति ।।५।। सञ्जयं भवति ।।६।। देवाश्च वा असुराश्च समदधत समदधत यतरे नः सञ्जयाꣳस्तेषां नः पशवोऽसानिति ते देवा असुरान् सञ्जयेन समजयन् यत्समजयꣳस्तस्मात्सञ्जयं पशूनामवरुध्यै सञ्जयं क्रियते ।।७।। सौमित्रं भवति ।।८।। दीर्घजिह्वी वा इदꣳरक्षो यज्ञहा यज्ञियानवलिहत्य-चरत्तामिन्द्रः कयाचन मायया हन्तुं नाशꣳसताथ ह सुमित्रः कुत्सः कल्याण आस तमब्रवीदिमामच्छाब्रूष्वेति तामच्छाब्रूतसैनमब्रवीन्नाहैव-

तन्नु शुश्रुव प्रियमिव तु मे हृदयस्येति तामज्ञपयत्ताꣳसꣳस्कृतेऽहतां तद्वाव तौ तर्ह्यकामयेतां कामसनि साम सौमित्रं काममेवैतेनाव–रुन्धे ॥९॥ सुमित्रः सन् क्रूरमकरित्येनं वागभ्यवदत्तꣳशुगार्थत्स–तपोऽतप्यत स एतत्सौमित्रमपश्यत्तेनशुचमपाहतापशुचꣳहते सौमित्रेण तुष्टुवानः ॥१०॥ महावैश्वामित्रं भवति ॥११॥ पाप्मानꣳहत्वा यदमहीयन्त तत्महावैश्वामित्रस्य महावैश्वामित्रत्वम् ॥१२॥ 'हयाइहया ओहहे' ति पशूने वैतेन न्यौहन्त ॥१३॥ त्रीडं भवति त्रिरात्रस्य धृत्यै ॥१४॥ द्रवन्तीमिडामुत्तमामुपयन्ति षष्ठस्याह्नः सन्तत्यै ॥१५॥ त्रिणव एव स्तोमो भवति प्रतिष्ठायै पुष्ट्यै त्रिवृद्वा एष पुष्टः ॥१६॥

सप्तमः खण्डः

'ज्योतिर्यज्ञस्य पवते मधुप्रियमि'ति षष्ठस्याह्नः प्रतिपद्भवति ॥१॥ ज्योतिर्वै गायत्री छन्दसां ज्योती रेवती साम्नां ज्योतिस्त्रयस्त्रिꣳशः स्तोमानां ज्योतिरेव तत्सम्यक् सन्दधात्यपि ह पुत्रस्य पुत्रो ज्योतिष्मान् भवति ॥२॥ 'मधुप्रियमि'ति पशवो वै रेवत्यो मधुप्रियं तदेव तदभिवदति ॥३॥ 'मदिन्तमो मत्सरइन्द्रियोरस' इतीन्द्रियं वै वीर्य्यं रसः पशवस्तदेव तदभिवदति ॥४॥ 'असृक्षत प्रवाजिन' इत्यनुरूपो भवति ॥५॥ सृष्टानीव ह्येतर्ह्यहानि ॥६॥ पूर्वमुच्चैव तद्रूपमपरेण रूपेणानुवदति यत्पूर्व्वꣳरूपमपरेण रूपेणानु–वदति तदनुरूपस्यानुरूपत्वमनुरूपएनं पुत्रो जायते य एवं वेद स्तोत्रीयानुरूपौ तृचौ भवतः प्राणापानानामवरुध्यै ॥७॥ दशर्च्चौ भवतो दशाक्षरा विराड् वैराजमन्नमन्नाद्यस्यावरुध्यै ॥८॥ उत्तरो दशर्च्चो भवति सोदर्क इन्द्रियस्य वीर्य्यस्य रसस्यानतिक्षाराय ॥९॥ यत्र वै देवा इन्द्रियं वीर्य्यꣳरसमपश्यꣳस्तदनुन्यतुदन् ॥१०॥

चतुर्ऋचो भवति प्रतिष्ठायै ।।११।। ध्वस्रे वै पुरुषन्ती तरन्त–पुरुमीढाभ्यां वैददश्विभ्याꣳसहस्राण्यदिच्छतां तावैक्षेतां कथं नाविदमात्तमप्रतिगृहीतꣳस्यादिति तौ प्रत्यैतां ध्वस्रयोः पुरुषन्त्योरा सहस्राणि दद्महे तरत्समन्दी धावतीति ततो वै तत्तयोरात्तमप्रति–गृहीतमभवत् ।।१२।। आत्तमस्याप्रतिगृहीतं भवति य एवं वेद ।।१३।। विनाराशꣳसो भवत्युभयस्यान्नाद्यस्यावरुध्यै मानुषस्य च दैवस्य च ।।१४।। तृच उत्तमो भवति येनैव प्राणेन प्रयन्ति तमभ्युद्यन्ति ।।१५।। त्रयस्त्रिꣳश एव स्तोमो भवति प्रतिष्ठायै देवतासु वा एष प्रतिष्ठितः।।१६।।

अष्टमः खण्डः

'इमꣳस्तोममर्हते जातवेदस' इत्याग्नेयमाज्यं भवति सोदर्क–मिन्द्रियस्य वीर्य्यस्य रसस्यानतिक्षाराय यत्र वै देवा इन्द्रियं वीर्य्यꣳरसमपश्यꣳस्तदनुन्यतुदन् ।।१।। 'प्रतिवाꣳसूर उदित' इति सूरवन्मैत्रावरुणम् ।। २।। अन्तो वै सूरोऽन्त एतत् षष्ठमहरह्नामन्त एव तदन्ते न स्तुवते प्रतिष्ठायै ।।३।। 'भिन्धि विश्वा अपद्विष' इत्यैन्द्रꣳसोदर्कमिन्द्रियस्य वीर्य्यस्य रसस्यानतिक्षाराय यत्र वै देवा इन्द्रियं वीर्य्यꣳरसमपश्यꣳस्तदनुन्यतुदन् ।।४।। 'यज्ञस्य हिस्थं ऋत्विज'त्यैन्द्राग्नꣳसोदर्कमिन्द्रियस्य वीर्य्यस्य रसस्यानतिक्षाराय यत्र वै देवा इन्द्रियं वीर्य्यꣳरसमपश्यꣳस्तदनुन्यतुदन् स्तोमः ।।५।।

नवमः खण्डः

'इन्द्रायेन्दो मरुत्वत' इति मरुत्वत्यो गायत्र्यो भवन्ति ।।१।। मरुत्वद्धि माध्यन्दिनꣳसवनम् ।। २।। 'मृज्यमानः सुहस्त्ये'ति सिमानाꣳरूपम् ।। ३।।

समानं वै सिमानाञ्च रूपं रेवतीनाञ्च सिमाभ्यो ह्यधिरेवत्यः प्रजायन्ते ।।४।। 'एतमुत्यन्दशक्षिप' इत्यादित्या आदित्या वा इमाः प्रजास्तासामेव मध्यतः प्रतितिष्ठति।। ५।। गायत्र्यः सत्यस्त्रिष्टुभो रूपेण तस्मात्त्रिष्टुभां लोके क्रियन्ते ।।६।। गायत्रं भवति यदेव गायत्रस्य ब्राह्मणम् ।।७।। इषोवृधीयं भवति ।।८।। पशवो वा इषोवृधीयं पशूनामवरुध्या इषे वै पञ्चममहर्वृधेषष्ठमवर्द्धन्त ह्येतर्हि यजमानमेवैतेन वर्द्धयन्ति ।।९।। क्रौञ्चं भवति ।।१०।। क्रुङ्ङेष्यमहरविन्ददेष्यमिव वै षष्ठमहरेवैतेन विन्दन्ति ।।११।। वाजदावर्य्यो भवन्ति ।।१२।। अन्नं वै वाजोऽन्नाद्यस्यावरुध्यै यदा हि वा अन्नमथ गौरथाश्वोऽथ पुरुषो वाजी ।।१३।। रेवत्यो भवन्ति प्रतिष्ठायै ।।१४।। षण्णिधना षड्रात्रस्य धृत्यै ।।१५।। आपो वै रेवत्यस्ता यत् पृष्ठं कुर्युरपशुर्यजमानः स्यात् पशूनस्य निर्द्दहेयुर्यत्र वा आपो वीव वर्त्तन्ते तदोषधयो जायन्तेऽथ यत्रावतिष्ठन्ते निर्म्मृतुकास्तत्र भवन्ति तस्मात् पवमाने कुर्वन्ति पराचा हि पवमानेन स्तुवते ।।१६।। मेथी वा इषोवृधीयꣳरज्जुः क्रौञ्चं वत्सो वाजदावर्य्यो रेवत्यो मातरो यदेतान्येवꣳसामानि क्रियन्त एवमेव प्रत्तां दुग्धे ।।१७।। औक्ष्णोरन्ध्रे भवतः ।।१८।। उक्ष्णोरन्ध्रो वा एताभ्यां काव्योऽञ्जसा स्वर्गं लोकमपश्यत् स्वर्गस्य लोकस्यानुख्यात्यै स्वर्गाल्लोकान्न च्यवते तुष्टुवानः ।।१९।। वाजजिद्भवति सर्वस्याप्त्यै सर्वस्य जित्यै सर्वं वा एते वाजं जयन्ति ये षष्ठमहरागच्छन्ति ।।२०।। अन्नं वै वाजोऽन्नाद्यस्यावरुध्यै ।।२१।। वरुणसाम भवति ।।२२।। एतेन वै वरुणो राज्यमाधिपत्यम–गच्छद्यशोऽभवद्राज्यमाधिपत्यं गच्छति यशो वरुणसाम्ना तुष्टुवानः ।।२३।।

अङ्गिरसां गोष्ठो भवति ।। २४।। पशवो वै रेवत्यो गोष्ठमेव तत्पशुभ्यः पर्य्यस्यन्ति तमेवैनान् प्रवर्त्तयन्त्यविस्रंस्साय ।। २५।। इहवद्वामदेव्यं भवति ।। २६।। एतेन वै वामदेवोऽन्नस्य पुरोधाम– गच्छदन्नं वै ब्रह्मणः पुरोधान्नस्यावरुध्यै ।। २७।। गायत्रीषु स्तुवन्ति प्रतिष्ठायै ब्रह्मंवर्च्चसाय येनैव प्राणेन प्रयन्ति तमभ्युद्यन्ति ।। २८।। इन्द्रवत्यो गायत्र्यो भवन्ति तदु त्रैष्टुभाद्रूपान्नयन्ति स्तोमः ।। २९।।

दशमः खण्डः

यातयामान्यन्यानि छन्दांस्स्ययातयामा गायत्री तस्माद्गायत्रीषु स्तुवन्ति ।।१।। 'सुरूपकृत्नु मूतय' इत्यभ्यारम्भेण षट्पदाः षष्ठस्याह्नो रूपं तेन षष्ठमहरारभन्ते सन्तत्यै ।। २।। 'उभे यदिन्द्र रोदसी' इति षट्पदाः षष्ठस्याह्नो रूपं तेन षष्ठमहरारभन्ते सन्तत्यै ।। ३।। रेवतीषु वारवन्तीयं पृष्ठं भवति ।।४।। अपां वा एष रसो यद्रेवत्यो रेवतीनांस्रसो यद्वारवन्तीयंस्सरसा एव तद्रेवतीः प्रयुङ्क्ते यद्वारवन्तीयेन पृष्ठेन स्तुवते ।।५।। रेवद्वा एतद्रैवत्यं यद्वारवन्तीयमस्य रेवान् रैवत्यो जायते ।।६।। रेवान् भवति य एवं वेद ।।७।। केशिने वा एतद्दाल्भ्याय सामाविरभवत्तदेनम– ब्रवीदगातारो मा गायन्ति मा मयोद्गासिषुरिति कथं त आगा भगव इत्यब्रवीदागेयमेवास्म्यागायन्निव गायेत्प्रतिष्ठायै तदलम्भं पारिजानतं पश्चादक्षंश्शयानमेतामागां गायन्तमजानत्तमब्रवीत् पुरस्त्वादधा इति तमब्रुवन् को न्वयं कस्मा अलमित्यलन्नु वै मह्यमिति तदलम्भस्यालम्भत्वम् ।।८।। इहेहेति गायेत्प्रतिष्ठायै ।। ९।। ऋषभो रैवतो भवति ।।१०।। पशवो वै रैवत्यः पशुष्वेव तन्मिथुन मप्यर्ज्जति प्रजात्यै न ह वा अनृषभाः पशवः प्रजायन्ते ।।११।।

श्येनो भवति ॥१२॥ श्येनो ह वै पूर्वप्रेतानि वयाँस्याप्नोति पूर्व्वप्रेतानीव वै पूर्वाण्यहानि तेषामाप्त्यै श्येनः क्रियते ॥१३॥ श्येनो वा एतदहः सम्पारयितुमर्हति स हि वयसामाशिष्ठस्तस्या-नपहननाय सम्पारणायैतत् क्रियतेऽन्तो हि षष्ठञ्चाहः सप्तमञ्च ॥१४॥ ब्रह्मवादिनो वदन्ति यद् बृहदायतनानि पृष्ठान्यथैते द्वे गायत्र्यौ द्वे जगत्यौ क्व तर्हि बृहत्यो भवन्तीति ॥१५॥ ये द्वे जगत्योः पदे ते गायत्र्या उप सम्पद्येते तत् सर्व्वा बृहत्यो भवन्त्यायतने पृष्ठानि यातयत्यायतनवान् भवति ॥१६॥ षट्पदासु स्तुवन्ति षड्रात्रस्य धृत्यै ॥१७॥ सप्तपदया यजति सप्तमस्याह्नः सन्तत्यै स्तोमः ॥१८॥

एकादशः खण्डः

'परिस्वानो गिरिष्ठा' इति परिवत्यो गायत्र्यो भवन्ति सर्व्वस्य पर्य्याप्त्यै ॥१॥ 'स सुन्वेयो वसूनामि'ति पशवो वै वसु पशूनाम' वरुध्यै ॥२॥ 'तं वः सखायो मदाये'ति वालखिल्याः ॥३॥ वालखिल्यावेतौ तृचौ षष्ठे चाहनि सप्तमे च ॥४॥ यदेतौ वालखिल्यौ तृचौ भवतोऽह्नोरेव व्यतिषङ्गाया व्यवस्रंसाय सन्तत्यै ॥५॥ 'सोमाः पवन्त इन्दव' इत्यनुष्टुभो निभसदो भवन्ति प्रतिष्ठायै ॥६॥ 'अया पवा पवस्वैना वसूनी'ति त्रिष्टुभस्सत्यो जगत्यो रूपेण तस्माज्जगतीनां लोके क्रियन्ते ॥७॥ गायत्रं भवति यदेव गायत्रस्य ब्राह्मणम् ॥८॥ वैदन्वतानि भवन्ति ॥९॥ विदन्वान्वै भार्गव इन्द्रस्य प्रत्यहंस्तंशुगार्च्छत् स तपोऽतप्यत स एतानि वैदन्वतान्यपश्यत्तैः शुचमपाहतापशुचंहते वैदन्वता-स्तुष्टुवानः ॥१०॥ भरद्वाजस्य लोम भवति पशवो वै लोम पशूनामवरुध्यै ॥११॥

तदु दीर्घमित्याहुरायुर्वै दीर्घमायुषोऽवरुध्यै ।।१२।। कार्णश्रवसं भवति शृण्वन्ति तुष्टुवानम् ।।१३।। कर्णश्रवा वा एत दाङ्गिरसः पशुकामः सामापश्यत्तेन सहस्रं पशूनसृजत यदेतत्साम भवति पशूनां पुष्ट्यै ।।१४।। गौरीवितं भवति यदेव गौरीवितस्य ब्राह्मणम् ।।१५।। मधुश्चुन्निधनं भवति ।।१६।। परमस्यान्नाद्यस्याव-रुध्यै परमं वा एतदन्नाद्यं यन्मधु ।।१७।। प्रजापतेर्वा एतौ स्तनौ यद् घृतश्चुन्निधनञ्च मधुश्च्युन्निधनञ्च यज्ञो वै प्रजापतिस्तमेताभ्यां दुग्धे यं कामं कामयते तन्दुग्धे ।।१८।। क्रुङ्ङेष्यमहरविन्ददेष्यमिव वै षष्ठमहरहरेवैताभ्यां विन्दन्ति ।।२०।। श्नौष्ठं भवति ।।२१।। श्नुष्टिर्वा एतेनाङ्गिरसोऽञ्जसा स्वर्गं लोकमपश्यत् स्वर्गस्य लोकस्यानुख्यात्यै स्वर्गाल्लोकान्न च्यवते तुष्टुवानः ।।२२।। अग्नेर्वा एतद्वैश्वानरस्य साम दीदिहीति निधनमुपयन्ति दीदायेव ह्यग्निर्वैश्वानरः ।।२३।। निधनान्ताः पवमाना भवन्त्यह्नो धृत्यै स्तोमः ।।२४।।

द्वादशः खण्डः

ब्रह्मवादिनो वदन्ति प्रायणतो द्विपदाः कार्य्या ३ उदयनता ३ इति ।।१।। उदयनतएव कार्य्याः पुरुषो वै द्विपदाः प्रतिष्ठायै ।।२।। वाचा वै सर्वं यज्ञं तन्वते तस्मात्सर्वां वाचं पुरुषो वदति सर्वा ह्यस्मिन् सꣳस्तुता प्रतितिष्ठति ।।३।। गूर्द्दो भवति ।।४।। गौपायनानां वै सत्रमासीनानां किरातकुल्या वसुरमाये अन्तः परिध्यसून् प्राकिरतां ते 'अग्ने त्वन्नो अन्तम'इत्यग्निमुपासीदꣳस्तेनासूनस्पृण्वꣳस्तद्वाव ते तर्ह्यकामयन्त कामसनि साम गूर्दः काममेवैतेनावरुन्धे ।।५।। गोतमस्य भद्रं भवति ।।६।।

आशिषमेवास्मा एतेनाशास्ते साम हि सत्याशीः ।।७।। एतेन वै गोतमो जेमानं महिमानमगच्छत् तस्माद्ये च पराञ्चो गोतमाद्ये चार्वाञ्चस्त उभये गोतम ऋषयो ब्रुवते ।।८।। उद्वंशपुत्रो भवति ।।९।। यद्वा उद्वंशीयं तदुद्वंशपुत्रः ।।१०।। अर्द्धेडामति-स्वरति ।।११।। तस्मादूधर्द्धारा अति क्षरन्तीडायामन्ततः पशुषु प्रतितिष्ठति ।।१२।। क्लृप्त उपरिष्टाच्छ्क् साम च विमुच्येते अभ्युस्वरेण सप्तममहः स्वरति सन्तत्यै ।।१३।। ऊहुषीव वा एतर्हि वाग्यदा षडहः सन्तिष्ठते न बहु वदेन्नान्यं पृच्छेन्नान्यस्मै प्रब्रूयात् ।।१४।। मधु वाशयेद् घृतं वा यथोहुषो बहं प्रत्यनक्ति तथा तत् ।।१५।। त्रयत्रिंश एव स्तोमो भवति प्रतिष्ठायै देवतासु वा एष प्रतिष्ठितः ।।१६।।

।।इति त्रयोदशोऽध्यायः।।



चतुर्दशोऽध्यायः

प्रथमः खण्डः

आप्यन्ते वा एतत् स्तोमाश्छन्दांꣳसि यत् षडह आप्यते ।।१।। आप्ते षडहे छन्दांꣳसि स्तोमान् कृत्वा प्रयन्ति ।। २।। 'प्रकाव्यमुशने वब्रुवाण' इति गायत्र्या रूपेण प्रयन्ति ।। ३।। इयं वै गायत्र्यस्यामेव प्रतिष्ठाय प्रयन्ति ।।४।। त्रिष्टुप् प्रतिपद्भवति ।।५।। ओजोवीर्य्यं त्रिष्टुबोजस्येव वीर्य्ये पराक्रम्य प्रयन्ति ।।६।। स्तोत्रीयस्तृचो भवति प्राणापानानामवरुध्यै ।।७।। हरिवत्यो भवन्ति छन्दोमानामयात-यामतायै ।।८।। द्वादशर्च्चो भवतः ।।९।। द्वादशमासाः संवत्सरः संवत्सरमेव तत्पूर्वस्मै षडहाय प्रत्युद्यच्छति सवीवधतायै ।।१०।। चतुर्विंꣳशतिर्भवन्ति चतुर्विंꣳशतिरर्द्धमासाः संवत्सरः संवत्सरमेव तत्पूर्वस्मै षडहाय प्रत्युद्यच्छति सवीवधतायै ।।११।। दृत ऐन्द्रोत इति होवाचाभिप्रतारी काक्षसेनिर्ये महावृक्षस्याग्रं गच्छन्ति क्व ते ततो भवन्ति प्र राजन् पक्षिणः पतन्त्यवापक्षाः पद्यन्ते ।।१२।। यो वै विद्वांꣳसस्ते पक्षिणो येऽविद्वाँसस्तेऽपक्षास्त्रिवृत्पञ्चदशावेव स्तोमौ पक्षौ कृत्वा स्वर्गं लोकं प्रयन्ति ।।१३।। चतुर्विंꣳश एव स्तोमो भवति प्रतिष्ठायै तेजसे ब्रह्मवर्चसाय ।।१४।।

द्वितीयः खण्डः

'मूर्द्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या' इत्याग्नेयमाज्यं भवति ।।१।। मूर्द्धा वा एष दिवो यस्तृतीयस्त्रिरात्रः ।।२।। 'वैश्वानर मृत आजातमग्नि'मिति वैश्वानर इति वा अग्नेः प्रियं धाम प्रियेणैवैनं तद्धाम्ना परोक्षमुपशिक्षति ।।३।।

'प्र वो मित्राय गायते'ति द्यावापृथिवीयं मैत्रावरुणं द्यावा–पृथिवी वै मित्रावरुणयो: प्रियं धाम प्रियेणैवैनौ तद्धाम्ना परोक्षमुप शिक्षति ।।४।। 'इन्द्रायाहि चित्रभान' वित्यार्भवमैन्द्रमृभवो वा इन्द्रस्य प्रियं धाम प्रियेणैवैनं परोक्षमुपशिक्षति ।।५।। 'तमीडिष्वयो अर्चिषे'त्यनिरुक्तमैन्द्राग्नं देवतानामनभिधर्षायोत्तमार्द्धे निराह देवतानामप्रणाशाय स्तोम: ।।६।।

तृतीय: खण्ड:

'वृषा पवस्व धारये'ति गायत्री भवत्यह्नो धृत्यै ।।१।। वृषण्वत्यस्त्रिष्टुभो रूपेण त्रैष्टुभश्ह्येतदह: ।।२।। 'पुनान: सोमध्‍ ाारये'ति धृत्यै ।।३।। 'प्रो अयासीदिन्दुरिन्द्रस्य निष्कृत'मिति प्रवत्यो भवन्ति प्रणिनीषेण्यमिव ह्येतदह: ।।४।। जगत्य: सत्यस्त्रिष्टुभो रूपेण तस्मात्त्रिष्टुभां लोके क्रियते ।।५।। गायत्रं भवति यदेव गायत्रस्य ब्राह्मणम् ।।६।। सन्तनि भवति सप्तमस्याह्न: सन्तत्यै ।।७।। यथा वै व्योकसौ विप्रद्रवत एवमेते षष्ठश्चाह: सप्तमश्च विप्रद्रवतस्तौ यथा समानीय संयुज्यादेवमेवैते एतेन साम्ना संयुनक्ति ।।८।। सौपर्णं भवति स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै ।।९।। यज्ञो वै देवेभ्योऽपाक्रामत्स सुपर्णरूपं कृत्वा चरत्तं देवा एतै: सामभिरारभन्त यज्ञइव वा एष यच्छन्दोमा यज्ञस्यैवैष आरम्भ: ।।१०।। रोहितकूलीयं भवत्याजिजित्यायै ।।११।। एतेन वै विश्वामित्रो रोहिताभ्याश्ंरोहित कूलआजिमजयत् ।।१२।। विश्वामित्रो भरतानां मनस्सत्या–यात्सौदन्तिभिर्नाम जनयतयाश्ंशं प्रास्यते मां मां यूयं वस्निकाङ्क्षयायेमानि मह्यं यूयं पूरयाय यदीमा विदश्ंरोहितावशमाचितं कूलमुद्वहात इति स एतेन सामनी अपश्यत्ताभ्यां युक्त्वा प्रासेधत्स उदजयत् ।।१३।।

आजिर्वा एष प्रततो यद्द्वादशाहस्तस्यैते उज्जित्यै ।।१४।। कण्वरथन्तरं भवति ।।१५।। तेजो वा एतद्रथन्तरस्य यत्कण्व-रथन्तरꣳसरसमेव तद्रथन्तरं प्रयुङ्क्ते यत्कण्वरथन्तरेण सप्तमेऽहनि स्तुवते ।।१६।। जामि द्वादशाहस्यास्तीति ह स्माहोग्रदेवो राजनि-र्बार्हतँ षष्ठमहर्बार्हतꣳसप्तमं यत्कण्वरथन्तरं भवति तेनाजामि ।।१७।। गौङ्गवं भवति ।।१८।। अग्निरकामयतान्नादः स्यामिति स तपोऽतप्यत स एतद्गौङ्गवमपश्यत्तेनान्नादोऽभवद्यदन्नं वित्वा गर्द्दद्यदङ्गूयत्तद्गौङ्गवस्य गौङ्गवत्वमन्नाद्यस्यावरुध्यै गौङ्गवं क्रियते ।।१९।। यत्साम देवताः प्रशꣳसति तेन यजमानाः सत्याशिषः सत्याशिषोऽसामेति वै सत्रमासते सत्याशिष एव भवति ।। २०।। आयास्यं भवति तिरश्चीन-निधनं प्रतिष्ठायै ।।२१।। अयास्यो वा आङ्गिरस आदित्यानां दीक्षितानामन्नमाश्नात् स व्यभ्रꣳशत स एतान्यायास्यान्यपश्यत्तै-रात्मानꣳसमश्रीणाद्विभ्रष्टमिव वै सप्तममहर्य्यदेतत्साम भवत्यहरेव तेन सꣳश्रीणाति ।।२२।। प्रवद्भार्गवं भवति ।।२३।। प्रवता वै देवाः स्वर्गं लोकं प्रायन्नुद्वतोदायन् ।।२४।। निधनान्ताः पवमाना भवन्त्यह्नो धृत्यै स्तोमः ।।२५।।

चतुर्थः खण्डः

'वयं घत्वा सुतावन्त' इति सतो बृहत्यो वर्षीयश्छन्द आक्रमतेऽनपभ्रꣳशाय ।।१।। 'नकिष्टं कर्म्मणानश'दिति बृहत्यः सत्योऽभ्यारम्भेण जगत्यः ।।२।। अपभ्रꣳश इव वा एष यज्ज्यायसः स्तोमात्कनीयांसं स्तोममुपयन्ति यदेता अभ्यारम्भेण जगत्यो भवन्त्यह्न एव प्रयुत्तम्भाय ।।३।। अभिनिधनं काण्वं भवति ।।४।। अभि-निधनेन वा इन्द्रो वृत्राय वज्रं प्राहरत्तमस्तृणुत स्तृणुते भ्रातृव्यमभि-निधनेन तुष्टुवानः ।।५।।

वैखानसं भवति ॥६॥ वैखानसा वा ऋषय इन्द्रस्य प्रिया आसङ्स्तान्रहस्युर्देवमलिम्लुङ्मुनिमरणोऽमारयत्ते देवा अब्रुवन् क्वतर्षयोऽभूवन्निति तान् प्रैषमैच्छत्तान्नाविन्दत्स इमान् लोकानेक-धारेणापुनात्तान्मुनिमरणेऽविन्दत्तानेतेन साम्ना समैरयत्तद्वाव स तर्ह्यकामयत कामसनि साम वैखानसं काममेवैतेनावरुन्धे स्तोमः ॥७॥

पञ्चमः खण्डः

'यस्ते मदो वरेण्य' इति गायत्रीं भवति मदवद्वै रसवत् तृतीयसवनं मदमेव तद्रसं दधाति ॥१॥ 'एषस्य धारया सुत' इति ककुभः सत्योऽभ्यारम्भेण त्रिष्टुभः ॥२॥ अपभ्रङ्श इव वा एष यत् ज्यायसः स्तोमात्कनीयांसङ्स्तोममुपयन्ति यदेता अभ्यारम्भेण त्रिष्टुभो भवन्त्यह्न एव प्रत्युत्तम्भाय ॥३॥ 'सखाय आ निषीदते'ति वालखिल्या वालखिल्यावेतौ तृचौ षष्ठे चाहनि सप्तमे च यदेतौ वालखिल्यौ तृचौ भवतोऽह्नोरेव व्यतिषङ्गाया-व्यवस्रङ्साय सन्तत्यै ॥४॥ 'पुरोजिती वो अन्धस' इति विराडन्नं विराडन्नाद्यस्यावरुध्यै ॥५॥ 'प्रवाज्यक्षा' रित्यक्षर पङ्क्तिः स्तोमानां प्रभूतिः ॥६॥ अथो एतर्ह्येवैतर्हि छन्दोयातयाम यदक्षरपङ्क्ति-स्तेन छन्दोमाअयातयामानः क्रियन्ते ॥७॥ ब्रह्मवादिनो वदन्ति यत् षडहे स्तोमाश्छन्दाङ्स्याप्यन्ते किं छन्दसश्छन्दोमा इत्येतच्छन्दसो यदेता अक्षरपङ्क्तय इति ब्रूयात् ॥८॥ 'ये सोमासः परावती'ति परावतमिव वा एतर्हि यज्ञोगतस्तमेवैतेनान्विच्छन्ति ॥९॥ गायत्र्यः सत्यो जगत्यो रूपेण तस्माज्जगतीनां लोके क्रियन्ते ॥१०॥ गायत्रं भवति यदेव गायत्र्यस्य ब्राह्मणम् ॥११॥ दक्षणिधनं भवति ॥१२॥

प्रजापतिः प्रजा असृजत ता अस्मात् सृष्टा अबलाइवाच्छदयꣳ—स्तास्वेतेन साम्ना दक्षायेत्योजो वीर्य्यमदधाद्यदेतत् साम भवत्योज एव वीर्य्यमात्मन्धत्ते ।।१३।। शार्करं भवति ।।१४।। इन्द्रꣳसर्वाणि भूतान्यस्तुवन् स शर्करꣳशिशुमारर्षिमुपेत्याब्रवीत् स्तुहिमेति सोऽपः प्रस्कन्दन्नब्रवीदेतावतोऽहं त्वाꣳस्तुयामिति तस्मादपां वेगमवेजयत स हीन इवामन्यत स एतत्सामापश्यत्तेनापोनसमाश्नुत तद्वाव स तर्ह्यकामयत कामसनि साम शार्करं काममेवैतेनावरुन्धे ।।१५।। प्लवो भवति ।।१६।। समुद्रं वा एते प्रस्नान्तीत्याहुर्य्ये द्वादशाह—मुपयन्तीति यो वा अप्लवः समुद्रं प्रस्नाति न स तत उदेति यत् प्लवो भवति स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै ।।१७।। 'अति विश्वानि दुरिता तरे'मेति यदेवैषां दुष्टुतं दुःशस्तं तदेतेन तरन्ति ।।१८।। एकादशाक्षरणिधनो भवत्येकादशाक्षरा त्रिष्टुबोजोवीर्य्यं त्रिष्टुबोजस्येव वीर्य्ये प्रतितिष्ठति ।।१९।। गौरीवितं भवति यदेव गौरीवितस्य ब्राह्मणम् ।।२०।। कार्त्तयशं भवति ।।२१।। हीति निधनमुपयन्ति पाप्मनोऽपहत्यै ।।२२।। अपपाप्मानꣳहते कार्त्तयशेन तुष्टुवानः ।।२३।। सौहविषं भवति ।।२४।। सुहविर्व्वा एतेनाङ्गिरसोऽञ्जसा स्वर्गं लोकमपश्यत् स्वर्गस्य लोकस्यानुख्यात्यै स्वर्गाल्लोकान्न च्यवते तुष्टुवानः ।।२५।। ब्रह्मवादिनो वदन्ति यत् षडहे स्तोमाश्छन्दाꣳस्याप्यन्ते किं छन्दसश्छन्दोमा इति पुरुष—श्छन्दस इति ब्रूयात्पुरुषो वै पाङ्क्तः पुरुषो द्विपदा छन्दोमाना—मयातयामतायै ।।२६।। जराबोधीयं भवत्यन्नाद्यस्यावरुध्यै ।।२७।। अन्नं वै जराबोधीयं मुखं गायत्री मुख एव तदन्नं धत्तेऽन्नमत्ति ।।२८।। अन्नादो भवति य एवं वेद ।।२९।।

गायत्रीषु स्तुवन्ति प्रतिष्ठायै ब्रह्मवर्च्चसाय येनैव प्राणेन प्रयन्ति तमभ्युद्यन्ति ।।३०।। इडान्ताः पावमाना भवन्ति पशवो वा इडाः पशवश्छन्दोमाः पशुष्वेव तत्पशून्दधाति स्तोमः ।।३१।।

षष्ठः खण्डः

'आ ते वत्सो मनो यम'दित्यपच्छिदिव वा एतद्यज्ञकाण्डं यदुक्थानि यदेति सलोमत्वायैव ।।१।। 'त्वं न इन्द्राभरे'ति पूर्णाः ककुभः ।।२।। अपभ्रंश इव वा एष यज्ज्यायसः स्तोमात्कनीयांसंस्तोममुपयन्ति यदेताः पूर्णाः ककुभो भवन्त्यनप–भ्रंशाय ।।३।। 'यदिन्द्र चित्र मं इह नास्ति त्वादातमद्रिवो राधस्तन्नो विदद्वस उभयाहस्त्याभरे'ति राद्धिमेवैतेनावरुन्धे ।।४।। वात्सं भवति ।।५।। वत्सश्च वै मेधातिथिश्च काण्वावास्तां तं वत्सं मेधातिथिराक्रोशदब्राह्मणोऽसि शूद्रापुत्र इति सोऽब्रवीद्दते–नाग्निं व्ययाव यतरो नौ ब्रह्मीयानिति वात्सेन वत्सो व्यैन्मैधातिथेन मेधातिथिस्तस्य न लोम च नौषत्तद्धाव स तर्ह्य–कामयत कामसनि साम वात्सं काममेवैतेनावरुन्धे ।।६।। सौश्रवसं भवति ।।७।। उपगुर्व्वै सौश्रवसः कुत्सस्यौरवस्य पुरोहित आसीत् स कुत्सः पर्य्यशपद्य इन्द्रं यजाता इति स इन्द्रः सुश्रवस–मुपेत्याब्रवीद्यजस्व माशनायामि वा इति तमयजत स इन्द्रः पुरोडाश–हस्तः कुत्समुपेत्याब्रवीदयक्षत मा क्व ते परिशप्तमभूदिति कस्त्वा यष्टेति सुश्रवा इति स कुत्स औरव उपागाः सौश्रवसस्योद्गायत औदुम्बर्य्या शिरोऽच्छिनत्स शुश्रवा इन्द्रमब्रवीत्त्वत्तनाद्वै मेदमीद्दगु–पागादिति तमेतेन साम्ना समैरयत्तद्धाव स तर्ह्यकामयत कामसनि साम सौश्रवसं काममेवैतेनावरुन्धे ।।८।। वीङ्कं भवति ।।९।।

च्यवनो वै दाधीचोऽश्विनोः प्रिय आसीत्सोऽजीर्य्यत्तमेतेन साम्नाप्सु व्यैङ्कयेतां तं पुनर्य्युवानमकुरुतां तद्वाव तौ तर्ह्यकामयेतां कामसनि साम वीङ्कं काममेवैतेनावरुन्धे ।।१०।। चतुर्विंश एव स्तोमो भवति तेजसे ब्रह्मवर्च्चसाय ।।११।।

सप्तमः खण्डः

'शिशुञ्जज्ञानंहर्य्यतं मृजन्ती'त्यष्टमस्याह्नः प्रतिपद्भवति ।।१।। शिशुरिव वा एष सप्तमेनाह्ना जायते तमष्टमे नाह्ना मृजन्ति ।।२।। स्तोत्रीयस्तृचो भवति प्राणापानानामवरुध्यै ।।३।। हरिवत्यो भवन्ति छन्दोमानामयातयामतायै ।।४।। नवर्च्चा भवन्ति ।।५।। नव वै प्राणाः पशवश्छन्दोमाः पशुष्वेव तत्प्राणान्दधाति ।।६।। पञ्चर्च्चो भवति पञ्चपदाः पङ्क्तिः पाङ्क्तमन्नमन्नाद्यस्यावरुध्यै ।।७।। वाणवान् भवन्त्यन्तो वै वाणोऽन्त एतदष्टममहामन्त एव तदन्तेन स्तुवते प्रतिष्ठायै ।।८।। त्रयस्तृचा भवन्ति प्राणापानानां सन्तत्यै ।।९।। चतुश्चत्वारिंश एव स्तोमो भवत्योजस्येव तद्वीर्य्ये प्रतितिष्ठत्योजो वीर्य्यं त्रिष्टुप्।। १०।।

अष्टमः खण्डः

'अग्निं वो देवमग्निभिः सजोषा' इत्याग्नेयमाज्यं भवति ।।१।। अग्निभिरित्येव पूर्वाण्यहानि समिद्धान्यष्टममहरभिसमिन्धे ।।२।। 'मित्रं वयंहवामह' इति बार्हतं मैत्रावरुणम् ।।३।। उग्रगाधमिव वा एतद्यच्छन्दोमास्तद्यथाद उग्रगाधे व्यतिषज्य गाहन्त एवमेवै- तद्रूपे व्यतिषजति छन्दोमानामसं व्याथाय ।।४।। 'तमिन्द्रं वाजयामसी'त्यैन्द्रम् ।।५।। अष्टमेन वै देवा अहेन्द्रमवाजयन्नवमेन पाप्मानमघ्नन्नहरेवैतेन वाजयन्ति ।।६।।

'इन्द्रे अग्ना नमो बृहदि'ति बार्हतमैन्द्राग्नम् ।।७।। उग्र गाधमिव वा एतद्यच्छन्दोमास्तद्यथाद उग्रगाधे व्यतिषज्य गाहन्त एवमेवैतद्रूपे व्यतिषजति छन्दोमानामसंव्याथाय स्तोमः ।।८।।

नवमः खण्डः

'अध्वर्य्यो अद्रिभिः सुतमि'ति गायत्री भवत्यह्नो धृत्यै ।।१।। गायत्र्यः सत्यस्त्रिष्टुभोरूपेण त्रैष्टुभꣳह्येतदहः ।। २।। 'अभि सोमास आयव' इत्यभीति रथन्तरस्य रूपं बृहदिति बृहत उभयोः सह रूपमुपैत्युभौ हि वर्णावेतदहः ।। ३।। 'धर्त्ता दिवः पवते कृत्व्यो रस' इत्यधृत इव वा एष त्र्यहो यद्धर्त्तेति धृत्या एव ।।४।। जगत्यः सत्य स्त्रिटुभो रूपेण तस्मात्त्रिष्टुभां लोके क्रियन्ते ।।५।। गायत्रं भवति यदेव गायत्रस्य ब्राह्मणम् ।। ६।। वैरूपं भवति ।।७।। पशवो वै वैरुपं पशूनामवरुध्यै विरूपः संवत्सरो विरूपमन्नमन्नाद्यस्या–वरुध्यै ।।८।। आशुभार्गवं भवति ।।९।। अहर्वा एतदल्वीयत तद्देवा आशुनाभ्यधिन्वꣳस्तदाशोराशुत्वम् ।।१०।। मार्गीयवं भवति ।।११।। देवं वा एतं मृगयुरिति वदन्त्येतेन वै स उभयेषां पशूनामाधिपत्यमाश्नुतोभयेषां पशूनामाधिपत्यमश्नुते मार्गीयवेण तुष्टुवानः ।।१२।। सौमित्रं भवति ।।१३।। यदेव सौमित्रस्य ब्राह्मणम् ।।१४।। ऐढतं भवति ।।१५।। इढन्वा एतेन काव्योऽञ्जसा स्वर्गं लोकमपश्यत् स्वर्गस्य लोकस्यानुख्यात्यै स्वर्गाल्लोकान्न च्यवते तुष्टुवानः ।।१६।। साकमश्वं भवति यदेव साकमश्वस्य ब्राह्मणम् ।।१७।। तदु धुराꣳसामेत्याहुः प्राणा वै धुरः प्राणानाम–वरुध्यै ।।१८।। विलम्बसौपर्णं भवति ।।१९।। आत्मा वा एष सौपर्णानां यदष्टमेऽहनि पक्षावेतावभितो भवतो ये सप्तमनवमयोर्व्वीव वा अन्तरात्मा पक्षौ लम्बते यदन्तरात्मा पक्षौ विलम्बते तस्माद् विलम्बसौपर्णम् ।। २०।।

स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै सौपर्णं क्रियते ।। २१ ।। द्विहिङ्कारं वामदेव्यं भवत्यन्नाद्यस्यावरुध्यै ।। २२ ।। द्वितीयꣳह्येतद्रूपं यच्छन्दोमाः ।। २३ ।। पशवो वै वामदेव्यं पशवश्छन्दोमाः पशुष्वेव तत् पशून्दधाति ।। २४ ।। गायत्रपार्श्वं भवति ।। २४ ।। अहर्वा एतदल्वीयत तद्देवा गायत्रपार्श्वेन समतन्वꣳस्तस्माद् गायत्रपार्श्वम् ।। २६ ।। त्रिरात्रो यद्व्यशीर्यत तमेतैः सामभिरभिषज्यन् गायत्रपार्श्वेनोपायच्छन् सन्तनिना समतन्वन् सङ्कृतिना समस्कुर्वन् प्रतिष्ठितौ पूर्वौ त्रिरात्रावप्रतिष्ठित एष यदेतान्येवꣳसामानि क्रियन्त एतस्यैव प्रतिष्ठित्यै ।। २७ ।। पौरुहन्मनं भवति ।। २८ ।। पुरुहन्मा वा एतेन वैखानसोऽञ्जसा स्वर्गं लोकमपश्यत् स्वर्गस्य लोकस्यानुख्यात्यै स्वर्गाल्लोकान्न च्यवते तुष्टुवानः ।। २९ ।। अभ्याघात्यं भवत्यभ्याघात्य सामानो हि छन्दोमाः ।। ३० ।। द्वैगतं भवति ।। ३१ ।। द्विगद्वा एतेन भार्गवो द्विः स्वर्गं लोकमगच्छ-दागत्य पुनरगच्छद्द्वयोः कामयोरवरुध्यै द्वैगतं क्रियते ।। ३२ ।। हारायणं भवति ।। ३३ ।। इन्द्रस्तेजस्कामोहरस्कामस्तपोऽतप्यत, स एतद्धारायणमपश्यत्तेन तेजो हरोऽवारुन्ध तेजस्वी हरस्वी भवति हारायणेन तुष्टुवानः ।। ३४ ।। अछिद्रं भवति ।। ३५ ।। यद्वा एतस्याह्नश्छिद्रमासीत्तद्देवा अच्छिद्रेणाप्यौहꣳस्तदछिद्रस्या-च्छिद्रत्वम् ।। ३६ ।। बार्हदुक्थं भवति ।। ३७ ।। बृहदुक्थो वा एतेन वाम्नेयोऽन्नस्य पुरोधामगच्छदन्नं वै ब्रह्मणः पुरोधान्नाद्यस्याव-रुध्यै ।। ३८ ।। उद्वद्धार्गवं भवति ।। ३९ ।। प्रवता वै देवाः स्वर्गं लोकं प्रायन्नुद्वतोदायन् ।। ४० ।। निधनान्ताः पवमाना भवन्त्यह्नो धृत्यै स्तोमः ।। ४१ ।।

दशमः खण्डः

'क ईं वेद सुते सचे'ति सतोबृहत्यः ।।१।। अपभ्रंश्श इव वा एष यस्सप्तमेऽहनि सतो बृहत्यो भवन्ति नाष्टमे तस्मादष्टमे कार्य्या अपभ्रंश्शाय ।।२।। तदाहुः शिथिलमिव वा एतच्छन्दो यत्सतोबृहत्येषा वै प्रतिष्ठिता बृहती या पुनः पदा यदिन्द्र प्रागपागुद—गिति दिशां विमर्शः प्रतिष्ठित्यै ।।३।। तासु नैपातिथं ब्रह्मसाम ।।४।। सामार्षेयवत् स्वर्गाय युज्यते स्वर्गाल्लोकान्न च्यवते तुष्टुवानः ।।५।। 'उभयंश्शृणवच्च न' इति ।।६।। यच्च पृष्ठानि यानि चैतान्यहानि तेषामुभयेषांस्सन्तत्यै ।।७।। तासु वैयश्वम् ।।८।। व्यश्वो वा एतेनाङ्गिरसोऽञ्जसा स्वर्गं लोकमपश्यत् स्वर्गस्य लोकस्यानुख्यात्या एतत् पृष्ठाना मन्ततः क्रियते स्तोमः ।।९।।

एकादशः खण्डः

'पवस्व देव आयुष गिन्द्रं गच्छतु ते मद' इति गायत्री भवति मदवद्वै रसवत्तृतीयसवनं मदमेव तद्रसं दधाति ।।१।। 'अभिद्युम्नं बृहद्यश' इत्यभीति रथन्तरस्य रूपं बृहदिति बृहत उभयोः सह—रूपमुपैत्युभौ हि वर्णा वेतदहः ।।२।।

'प्राणाशिशुर्म्महीनामिति' प्राणवत्यो भवन्ति प्राणानेव तद्यजमाने दधाति ।।३।। 'अभी नो वाजसा तम'मित्यभीति रथन्तरस्य रूपंश्राथन्तरंश्ह्येतदहः ।।४।। 'पवस्व सोम महान् त्समुद्र' इत्यक्षर पङ्क्तिः स्तोमानां प्रभूतिरथो एतद्ध्येवैतर्हि छन्दोयातयाम यदक्षर पङ्क्तिस्तेन छन्दोमा अयातयामानः क्रियन्ते ब्रह्मवादिनो वदन्ति यत् षडहे स्तोमाश्छन्दांस्याप्यन्ते किं छन्दसश्छन्दोमा इत्येतच्छदसो यदेता अक्षरपङ्क्तय इति ब्रूयात् ।।५।।

'हिन्वन्ति सूर मुस्रय' इति गायत्र्यः सत्यो जगत्यो रूपेण तस्माज्जगतीनां लोके क्रियन्ते ।। ६।। गायत्रं भवति यदेव गायत्रस्य ब्राह्मणम् ।। ७।। स्वाशिरामर्को भवति ।। ८।। अन्नं वा अर्कोऽन्नाद्यस्यावरुध्यै प्राणा वै स्वाशिरः प्राणानामवरुध्यै ।। ९।। सुरूपं भवति ।। १०।। पशवो वै सुरूपं पशूनामवरुध्यै ।। ११।। भासं भवति भाति तुष्टुवानः ।। १२।। पदनिधनं राथन्तरं ह्येतदहः ।। १३।। स्वर्भानुर्वा आसुर आदित्यं तमसाविध्यत् स न व्यरोचत तस्यात्रिर्भासेन तमोऽपाहन् स व्यरोचत यद्वै तद्भा अभवत्तद्भासस्य भासत्वम् ।। १४।। तम इव वा एतान्यहानि यच्छन्दोमास्तेभ्य एतेन साम्ना विवासयति ।। १५।। काक्षीवतं भवति ।। १६।। कक्षीवान्वा एतेनौशिजः प्रजातिं भूमानमगच्छत् प्रजायते बहुर्भवति काक्षीवतेन तुष्टुवानः ।। १७।। आसितं भवति ।। १८।। असितो वा एतेन दैवलस्त्रयाणां लोकानां दृष्टिमपश्यत् त्रयाणां कामानामवरुध्या आसितं क्रियते ।। १९।। ऐषिरं भवति ।। २०।। प्रजापति र्वा ऐषिराणि प्रजायते बहुर्भवत्यैशिरेण तुष्टुवानः ।। २१।। त्रैतं भवति प्रतिष्ठायै ।। २२।। पदनिधनꣳराथन्तरꣳराथन्तरꣳह्येतदहः ।। २३।। नाथविन्दु साम विन्दते नाथं नाथविन्दून्येतावन्यहानि यत् छन्दोमा नाथमेवैतैर्विन्दते ।। २४।। गौरीवितं भवति यदेव गौरीवितस्य ब्राह्मणम् ।। २५।। कौत्सं भवति ।। २६।। एतेन वै कुत्सोऽन्धसो विपानमपश्यत् स ह स्म वै सुरादृतिनोपवसथं धावयत्युभयस्यान्नाद्यस्यावरुध्यै कौत्सं क्रियते ।। २७।। शुद्धाशुद्धीयं भवति ।। २८।। इन्द्रोयतीन् सालावृकेयेभ्यः प्रायच्छत्तमश्लीला वागभ्यवदत्सोऽशुद्धोऽमन्यत स एतच्छुद्धाशुद्धीयमपश्यत्तेनाशुध्यच्छुध्यति शुद्धाशुद्धीयेन तुष्टुवानः ।। २९।।

क्रौञ्चं भवति यदेव क्रौञ्चस्य ब्राह्मणं यत् द्वितीयेऽहनि ।।३०।। रयिष्ठं भवति ।।३१।। पशवो वै रयिष्ठं पशूनामवरुध्यै ।।३२।। औदलं भवति ।।३३।। उदलो वा एतेन वैश्वामित्रः प्रजातिं भूमानमगच्छत् प्रजायते बहुर्भवत्यौदलेन तुष्टुवानः ।।३४।। धर्म्मं भवति धर्म्मस्य धृत्यै ।।३५।। ब्रह्मवादिनो वदन्ति यत् षडहे स्तोमाश्छन्दाꣳस्याप्यन्ते किं छन्दसश्छन्दोमा इति पुरुषश्छन्दस इति ब्रूयात् पुरुषो वै पाङ्क्तः पुरुषो द्विपदाश्छन्दोमानामयात-यामतायै ।।३६।। विशोविशीयं भवति ।।३७।। अग्निरकामयत विशोविशोऽतिथिःस्यां विशोविश आतिथ्यमश्नुवीयेति स तपोऽतप्यत स एतद्विशोविशीयमपश्यत्तेन विशोविशोऽतिथिरभवत् विशोविश आतिथ्यमाश्नुत विशोविशोऽतिथिर्भवति विशोविश आतिथ्यमश्नुते विशोविशीयेन तुष्टुवानः ।।३८।। गायत्रीषु स्तुवन्ति प्रतिष्ठायै ब्रह्मवर्चसाय येनैव प्राणेन प्रयन्ति तमभ्युद्यन्ति ।।३९।। इडान्ताः पवमाना भवन्ति पशवो वा इडा पशव श्छन्दोमाः पशुष्वेव तत्पशून्दधाति स्तोमः ।।४०।।

द्वादशः खण्डः

'प्रेष्ठं वो अतिथिमि'त्यातिथ्यस्यैव तद्रूपं क्रियते ।।१।। 'एन्द्र नो गधि प्रिये'तीन्द्रियस्य वीर्य्यस्यावरुध्यै ।।२।। 'पुरां भिन्दुर्य्युवा कवि रमितौजा अजायत' इन्द्रो विश्वस्य कर्म्मणो धर्त्ता वज्री पुरुष्टुत' इति धृत्या एव ।।३।। औशनं भवति ।।४।। उशना वै काव्योऽकामयत यावानितरेषां काव्यानां लोकस्तावन्तꣳस्पृणुया-मिति स तपोऽतप्यत स एतदौशनमपश्यत्तेन तावन्तं लोकमस्पृणो-द्यावानितरेषां काव्यानामासीत्तद्वाव स तर्ह्यकामयत कामसनि सामौशनं काममेवैतेनावरुन्धे ।।५।।

सांवर्त्तं भवति ।।६।। देवानां वै यज्ञꣳरक्षाꣳस्यजिघाꣳसꣳ-स्तान्येतेन इन्द्रः संवर्त्तमुपावपद्यत् संवर्त्तमुपावपत्तस्मात् सांवर्त्तं पाप्मा वाव स तानसचत तं सांवर्त्तेनापाघ्नताप पाप्मानꣳहते सांवर्त्तेन तुष्टुवानः ।।७।। मारुतं भवति ।।८।। मासा वै रश्मयोमरुतो रश्मयो मरुतो वै देवानां भूयिष्ठा भूयिष्ठा असामेति वै सत्रमासते भूयिष्ठा एव भवन्तृयतुमन्ति पूर्वाण्यहान्यनृतवः छन्दोमा यदेतत्साम भवति तेनैतान्यहान्यृतुमन्ति भवन्ति ।।९।। चतुश्चत्वारिꣳश एव स्तोमो भवत्योजस्येव तद्वीर्य्ये प्रतितिष्ठत्योजो वीर्य्यं त्रिष्टुप् ।।१०।।

।।इति चतुर्दशोऽध्यायः।।



पञ्चदशोऽध्यायः

प्रथमः खण्डः

'अक्रान् त्समुद्रः परमे विधर्म्मन्नि'ति नवमस्याह्नः प्रतिपद्भवति ।।१।। परमं वा एतदहर्विधर्म विधर्म्म वा एतदन्यै-रहभिरहर्य्यन्नवमं ज्येष्ठꣳहि वरिष्ठम् ।।२।। 'मत्सि वायुमिष्टये राधसे न' इति वारुण्येषा भवति यद्वै यज्ञस्य दुरिष्टं तद्वरुणो गृह्णाति तदेव तदवयजति ।।३।। स्तोत्रीयस्तृचो भवति प्राणापानानामवरुध्यै ।।४।। दशर्च्चो भवति दशाक्षरा विराट् वैराज-मन्नमन्नाद्यस्यावरुध्यै ।।५।। सप्रभृतयो भवन्तीन्द्रियस्य वीर्य्यस्य रसस्यानतिक्षाराय यत्र वै देवा इन्द्रियं वीर्य्यं रसमपश्यꣳ-स्तदनुन्यतुदन् ।।६।। अष्टर्च्चो भवति ।।७।। अष्टाशफाः पशवः शफशस्तत्पशूनाप्नोति अष्टाक्षरा गायत्री तेजो ब्रह्मवर्चसं गायत्री तेज एव ब्रह्मवर्चसमवरुन्धे ।।८।। षड्टचा भवन्त्यृतूनां धृत्यै ।।९।। चत्वारः षड्टचा भवन्ति चतुर्विꣳशतिरर्द्धमासाः संवत्सरः संवत्सर एव प्रतितिष्ठति ।।१०।। स वानुत्तमः षड्टचो भवत्युभयस्य परोक्ष-प्रत्यक्षस्यावरुध्यै ।।११।। तृच उत्तमो भवति येनैव प्राणेन प्रयन्ति तमभ्युद्यन्ति ।।१२।। अष्टाचत्वारिꣳश एव स्तोमो भवति प्रतिष्ठायै प्रजात्यै ।।१३।।

द्वितीयः खण्डः

'अगन्म महा नमसा यविष्ठ' मित्याग्नेयमाज्यं भवति ।।१।। गच्छन्तीव वा एते ये नवममहर्गच्छन्ति ।।२।। 'यो दीदाय समिद्धःस्वे दुरोण' इति दीदायेव ह्येष यो नवभिरहर्भिस्तुष्टुवानः 'स्वाहुतमि'ति

स्वाहुतो ह्येष यो नवभिरहर्भिराहुतो 'विश्वत:प्रत्यञ्च' मिति विश्वतो–ह्येष प्रत्यङ् ।। ३।। 'त्वं वरुण उत मित्रो अग्न' इति वारुण्येका भवति यद्वै यज्ञस्य दुरिष्टं तद्वरुणो गृह्णाति तदेव तदवयजति ।। ४।। 'मित्रꣳहुवे पूतदक्षमि'ति राथन्तरं मैत्रावरुणम् ।। ५।। उग्रगाधमिव वा एतद्यच्छन्दोमास्तद्यथाद उग्रगाधे व्यतिषज्य गाहन्त एवमेवै–तद्रूपे व्यतिषजति छन्दोमानामसंव्याथाय ।। ६।। 'महाꣳइन्द्रो य ओजसे'त्यैन्द्रमष्टमेन वै देवा अह्नेन्द्रमवाजयन्नवमेन पाप्मानमघ्नन्न–हरेवैतेन महयन्ति ।। ७।। 'ता हुवे ययोरिदमि'ति राथन्तर–मैन्द्राग्नम् ।। ८।। उग्र गाधमिव वा एतद्यच्छन्दोमास्तद्यथाद उग्रगाधे व्यतिषज्य गाहन्त एव मेवै तद्रूपे व्यतिषजति छन्दोमाना–मसंव्याथाय स्तोम: ।। ९।।

तृतीय: खण्ड:

'पवमानस्य जिघ्नतो हरेश्चन्द्रा असृक्षते'ति हरिवत्यो गायत्र्यो भवन्ति च्छन्दोमानामयातयामतायै ।।१।। 'पवमानस्य जिघ्नत' इति वै बृहतो रूपꣳ'हरेश्चन्द्रा असृक्षते' ति जगत्या उभयो: सह रूपमुपैति साम्नश्च छन्दसश्च ।। २।। 'परीतो षिञ्चता सुत'मिति परिवत्यो भवन्त्यन्तो वै नवममहस्तस्यैता: पर्याप्त्यै ।। ३।। 'असावि सोमो अरुषो वृषा हरि'रिति जगत्य: सत्यस्त्रिष्टुभो रूपेण तस्मा–त्त्रिष्टुभां लोके क्रियन्ते ।।४।। भरद्वाजस्यादारसृद्भवति ।। ६।। दिवोदासं वै भरद्वाज पुरोहितं नाना जना: पर्य्ययतन्त स उपासीद–दृषे गातुं मे विन्देति तस्मा एतेन साम्ना गातुमविन्दद्गातुविद्वा एतत्सामानेनं दारेनासृन्मेति तददारसृतोऽदारसृत्वं विन्दते गातुं न दारेधावत्यदारसृता तुष्टुवान: ।। ७।। सुरूपं भवति यदेव सुरूपस्य ब्राह्मणम् ।। ८।।

हरिश्रीनिधनं भवति ।।९।। पशवो वै हरिश्रियः पशूनामव– रुध्यै श्रियञ्च हरश्चोपैति तुष्टुवानः ।।१०।। सैन्धुक्षितं भवति यदेव सैन्धुक्षितस्य ब्राह्मणम् ।।११।। गतनिधनं बाभ्रवं भवति गत्यै ।।१२।। बभ्रुर्वा एतेन कौम्भ्योऽञ्जसा स्वर्गं लोकमपश्यत् स्वर्गस्य लोकस्यानुख्यात्यै स्वर्गाल्लोकान्न च्यवते तुष्टुवानः ।।१३।। इडानाꣳसक्षारो भवति ।।१४।। पशवो वा इडा पशवश्छन्दोमाः पशुष्वेव तत्पशून्दधाति ।।१५।। ऋषभः पावमानो भवति ।।१६।। पशवो वै छन्दोमाः पशुष्वेव तन्मिथुनमप्यर्ज्जति प्रजात्यै न ह वा अनृषभाः पशवः प्रजायन्ते ।।१७।। पृष्ठं भवति ।।१८।। पृष्ठं वा एतदह्नां यन्नवमं पृष्ठ एव तत्पृष्ठेन स्तुवते प्रतिष्ठायै ।।१९।। कौल्मलबर्हिषं भवति ।।२०।। कौल्मलबर्हिर्वा एतेन स्वर्गं लोकमपश्यत् प्रजापतिं भूमानमगच्छत् प्रजायते बहुर्भवति कौल्मल– बर्हिषेण तुष्टुवानः ।।२१।। अर्कपुष्पं भवति ।।२२।। अन्नं वै देवा अर्क इति वदन्ति रसमस्य पुष्पमिति सरसमेवान्नाद्यमव– रुन्धेऽर्कपुष्पेण तुष्टुवानः ।।२३।। दैर्घश्रवसं भवति ।।२४।। दीर्घश्रवा वै राजन्य ऋषिर्ज्योगपरुद्धोऽशनायꣳश्चरन् स एतद्दैर्घश्रवसमपश्यत्तेन सर्व्वाभ्यो दिग्भ्योऽन्नाद्यमवारुन्ध सर्व्वाभ्यो दिग्भ्योऽन्नाद्य मवरुन्धे दैर्घश्रवसेन तुष्टुवानः ।।२५।। वैयश्वं भवति यदेव वैयश्वस्य ब्राह्मणम् ।।२६।। अभीशवं यदाभीशवस्येति ।।२७।। देवस्थानं भवति प्रतिष्ठायै संस्कृति भवति सꣳस्कृत्यै ।।२८।। अहर्वा एत– दल्वीयत तद्देवा देवस्थाने तिष्ठन्तः सङ्कृतिना समस्कुर्वꣳस्तत् सङ्कृतेः सङ्कृतित्वं देवस्थानेन वै देवाः स्वर्गे लोके प्रत्यतिष्ठन् स्वर्गे लोके प्रतितिष्ठामेत्येतत् ।।२९।। वरुणाय देवता राज्याय नातिष्ठन्त स एतद्देवस्थानमपश्यत्ततो वै तास्तस्मै राज्यायातिष्ठन्त तिष्ठन्तेऽस्मै समानाः श्रैष्ठ्याय ।।३०।।

क्षत्रस्येवास्य प्रकाशो भवति प्रतितिष्ठति य एवं वेद ।। ३१ ।। भर्गएव भर्गेण तुष्टुवानो भवति यशो यशसा ।। ३२ ।। वासिष्ठं भवति यदेव वासिष्ठस्य ब्राह्मणम् ।। ३३ ।। दीर्घतमसोऽर्को भवत्यन्नं वा अर्कोऽन्नाद्यस्यावरुध्यै ।। ३४ ।। सामराजं भवति साम्राज्य–माधिपत्यं गच्छति सामराज्ञा तुष्टुवानः ।। ३५ ।। तदु संवदित्याहुः संवता वै देवाः स्वर्गं लोकं प्रायन्नुद्धतोदायन् ।। ३६ ।। निधनान्ताः पवमाना भवन्त्यह्नो धृत्यै स्तोमः ।। ३७ ।।

चतुर्थः खण्डः

'श्रायन्त इव सूर्य्यमि'ति सूर्यवत्यो भवन्ति ।। १ ।। आदित्य–देवत्यꣳह्येतदहरन्तो वै सूरोऽन्त एतन्नवममह्नामन्त एव तदन्तेन स्तुवते प्रतिष्ठायै ।। २ ।। 'यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि मघवञ्छग्धि तव तन्न ऊतये विद्विषो वि मृधो जही'ति द्विषश्चैव मृधश्च नवमेनाह्ना विहत्य दशमेनाह्नोत्तिष्ठन्ति ।। ३ ।। श्रायन्तीयं भवति ।। ४ ।। श्रीर्वै श्रायन्तीयꣳश्रीर्न्नवममहः श्रियमेव तच्छ्रियां प्रतिष्ठापयति ।। ५ ।। समन्तं भवति ।। ६ ।। समन्तेन पशुकामः स्तुवीत पुरोधाकामः समन्तेन स्तुवीत ।। ७ ।। आग्नेयी पृथिव्याग्नेयो ब्राह्मण ऐन्द्री द्यौरैन्द्री राजन्योऽन्तरिक्षेण द्यावापृथिवी समन्ते अन्तरिक्षेणैवैनꣳसमन्तं करोति विन्दते पशून् प्र पुरोधा–माप्नोति य एवं विद्वान् समन्तेन स्तुते स्तोमः ।। ८ ।।

पञ्चमः खण्डः

'त्वꣳसोमासि धारयु'रिति गायत्रो भवत्यह्नो धृत्यै त्वमिति बृहतो रूपं बार्हतꣳह्येतदहः ।। १ ।। 'त्वꣳह्यङ्ग दैव्ये'ति त्वमिति बृहतो रूपं बार्हतꣳह्येतदहः ।। २ ।।

'पवस्व देव वीतय' इति बृहतो रूपं बार्हतꣳह्येतदहः ।। ३।। 'परित्यꣳहर्य्यतꣳहरि'मिति परिवत्यो भवन्त्यन्तो वै नवममहस्तस्यैताः पर्य्याप्त्यै ।। ४।। 'पवस्व सोम महे दक्षाये' त्यक्षरपङ्क्तिः स्तोमानां प्रभूतिरथो एतद्ध्येवैतर्हि च्छन्दोऽयातयाम यदक्षरपङ्क्तिस्तेन छन्दोमा अयातयामानः क्रियन्ते ब्रह्मवादिनो वदन्ति यत् षडहे स्तोमा– श्छन्दाꣳस्याप्यन्ते किं छन्दसश्छन्दोमा इत्येतच्छन्दसो यदेता अक्षर– पङ्क्तय इति ब्रूयात् ।। ५।। 'उपोषु जातमप्तुर'मिति गायत्र्यःसत्यो– जगत्यो रूपेण तस्मात् जगतीनां लोके क्रियन्ते ।। ६।। गायत्रं भवति यदेव गायत्रस्य ब्राह्मणम् ।। ७।। आश्वसूक्तं भवति ।। ८।। अग्निं वै पूर्वैरहभिराजुहोत्यथैतदादित्यदैवत्यमहः शुक्र आहुत इत्यसौ वा आदित्यः शुक्रस्तमेवैतेनाजुहोति ।। ९।। शाम्मदं भवति ।।१०।। शम्मद्वा एतेनाङ्गिरसोऽञ्जसा स्वर्गं लोकमपश्यत् स्वर्गस्य लोकस्यानुख्यात्यै स्वर्गाल्लोकान्न च्यवते तुष्टुवानः ।।११।। दावसुनिधनं भवति ।।१२।। आशिषमेवास्मा एतेनाशास्ते साम हि सत्याशीः ।।१३।। दावसुर्वा एतदाङ्गिरसः पशुकामः सामापश्यत्तेन सहस्रं पशूनसृजत यदेतत् साम भवति पशूनां पुष्ट्यै ।।१४।। प्रतीचिनेडं काशीतं भवति ।।१५।। पराचीभिर्वा अन्याभिरिडाभी– रेतो दधदेत्यथैतत्प्रतीचीनेडं काशीतं प्रजात्यै तस्मात्पराञ्चो गर्भाः सम्भवन्ति प्रत्यञ्चः प्रजायन्ते तस्मादु तेऽवाचीन बिलेभ्यो नाव– पद्यन्त एतेन ह्येव ते धृताः ।।१६।। हाविष्कृतं भवति प्रतिष्ठायै कृतानुवाद एव सः ।।१७।। सौपर्णं भवति यदेव सौपर्णस्य ब्राह्मणम् ।।१८।। वैश्वमनसं भवति ।।१९।। विश्वमनसं वा ऋषि मध्यायमुद्व्रजितꣳरक्षोऽगृह्णात्तमिन्द्रोऽचायदृषिं वै रक्षोऽग्रहीदिति, तमभ्यवददृषे कस्त्वैष इति, स्थाणुरिति ब्रूहीति रक्षोऽब्रवीत् स

स्थाणुरित्यब्रवीत्तस्मै वा एतेन प्रहरेत्यस्मा इषीकां वज्रं प्रयच्छन्न-ब्रवीत्तेनास्य सीमानमभिनत् सैषेन्द्रेणतेषीका पाप्मा वाव स तमगृह्णात्तं वैश्वमनसेनापाहतापपाप्मानꣳहते वैश्वमनसेन तुष्टुवानः ।। २०।। गौरीवितं भवति यदेव गौरीवितस्य ब्राह्मणम् ।। २१।। निहवो भवत्यन्नाद्यस्याऽवरुध्यै ।। २२।। हीति वा अन्नं प्रदीयत ईत्यग्निरन्नमत्ति ।। २३।। ऋषयो वा इन्द्रं प्रत्यक्षं नापश्यन् स वसिष्ठोऽकामयत कथमिन्द्रं प्रत्यक्षं पश्येयमिति स एतन्निहवमपश्यत्ततो वै स इन्द्रं प्रत्यक्षमपश्यत्, स एनमब्रवीद् ब्राह्मणं ते वक्ष्यामि यथा त्वत्पुरोहिता भरताः प्रजनिष्यन्तेऽथ मान्येभ ऋषिभ्यो मा प्रवोच इति तस्मा एतान् स्तोमभागानब्रवीत्ततो वै वसिष्ठपुरोहिता भरताः प्राजायन्त सेन्द्रं वा एतत्साम यदेतत्साम भवति सेन्द्रत्वाय ।। २४।। यद्वाहिष्ठीयं भवति ।। २५।। ब्रह्मयशसं वा एतानि सामान्यृचा श्रोत्रीयाणि ब्रह्मयशसी भवति यद्वाहिष्ठीयेन तुष्टुवानः ।। २६।। आसितं भवति यदेवासितस्य ब्राह्मणम् ।। २७।। साध्रं भवति सिद्ध्यै ।। २८।। आकूपारं भवति ।। २९।। अकूपारो वा एतेन कश्यपो जेमानं महिमानमगच्छज्जेमानं महिमानं गच्छत्याकूपारेण तुष्टुवानः ।। ३०।। विधर्म्म भवति धर्म्मस्य विधृत्यै ।। ३१।। ब्रह्मवादिनो वदन्ति यत् षडहे स्तोमाश्छन्दाꣳ-स्याप्यन्ते किं छन्दसश्छन्दोमा इति पुरुषच्छन्दस इति ब्रूयात् पुरुषो वै पाङ्क्तः पुरुषो द्विपदाच्छन्दोमानामयातयामतायै ।। ३२।। श्रुध्यं भवति ।। ३३।। पशवो वै श्रुध्यं पशूनामवरुध्यै ।। ३४।। प्रजापतिः पशूनसृजत तेऽस्मात् सृष्टा अपाक्रामꣳस्तानेतेन साम्ना श्रूधिया एहियेत्यन्वह्वयत्त एनमुपावर्त्तन्त यदेतत् साम भवति पशूना-मुपावृत्यै ।। ३५।।

उपैनं पशव आवर्त्तन्ते य एवं वेद ।। ३६।। गायत्रीषु स्तुवन्ति प्रतिष्ठायै ब्रह्मवर्च्चसाय येनैव प्राणेन प्रयन्ति तमभ्युद्यन्तीडान्ताः पवमाना भवन्ति पशवो वा इडा पशवश्छन्दोमाः पशुष्वेव तत्पशून्द-धाति स्तोमः ।। ३७।।

षष्ठः खण्डः

आग्नेयीषु पूर्वेषामह्नामुक्थानि प्रणयन्त्यथैतस्याह्न आग्नेय्यैन्द्रयां प्रणयन्त्युभयोरेव रूपयोः प्रतितिष्ठति ।। १ ।। ऐध्मवाहं भवति ।। २।। आग्नेय्यैन्द्रीषु स्तुवन्ति ब्रह्म चैव तत् क्षत्रञ्च सयुजी करोति ब्रह्मैव क्षत्रस्य पुरस्तान्निदधाति ब्रह्मणे क्षत्रञ्च विशञ्चानुगे करोति ।। ३।। त्रैककुभं भवति ।। ४।। ओजस्येव तद्वीर्य्ये प्रतितिष्ठत्योजो वीर्य्यं त्रैककुभम् ।। ५।। उद्वꣳशीयं भवति यदेवोद्वꣳशीयस्य ब्राह्मणम् ।। ६।। अष्टाचित्वारिꣳश एव स्तोमो भवति प्रतिष्ठायै प्रजात्यै ।। ७।।

सप्तमः खण्डः

गायत्रं वै सप्तममहस्त्रैष्टुभमष्टमञ्जागतं नवममथैतदानुष्टुभ-महर्य्यद्दशमम् ।। १।। तदाहुर्य्यदनुष्टुभꣳस्तोम्यां प्रत्यक्षमुपेयुः परम्परावतं यजमानो गच्छेन्न प्रतितिष्ठेदिति या वै चतुर्विꣳशति-र्गायत्र्यस्ता अष्टादशानुष्टुभोऽनुष्टुभमेव तत् स्तोम्यां परोक्षमुपयन्ति प्रतिष्ठायै प्रतितिष्ठति ।। २।। प्रजापतिं वा एतेनाह्ना परिवेविषति तन्न व्यववद्यं यद्वै श्रेष्ठे परिविष्यमाणोऽवदत्यन्नाद्यस्य सोवग्रह-स्तस्मान्न व्यववद्यमन्नाद्यस्यानवग्राहाय ।। ३।। तदु व्यववद्यं यथा श्रेष्ठाय बलिꣳहृयमाणं पन्थानं पर्य्यवनुदति गत्यै तथा तत् ।। ४।। यावत्यनुष्टुप्तावतीं वाचं सम्पाद्य विब्रूयुस्तद्वनतिरिक्तꣳस्वस्योचैव यज्ञस्यारिष्ट्यै ।। ५।।

अभि वा एते देवानारोहन्तीत्याहुर्य्ये दशभिरहर्भि: स्तुवत इति पञ्चानामह्नामनुरूपै: प्रत्यवयन्ति यथाभ्यारुह्य प्रत्यवरोहेत्तथा तन्नवर्च्चो भवति या एवामू: प्रयञ्छम्या अवदधाति ता एता उदस्यति ।।६।। वारुण्येका भवति यद्वै यज्ञस्य दुरिष्टं तद्वरुणो गृह्णाति तदेव तदवयजत्यादित्यैका भवतीयं वा अदितिरस्यामेव प्रतितिष्ठति ।।७।। चतुर्विंश एव स्तोमो भवति तेजसे ब्रह्मवर्च्चसाय ।।८।।

अष्टम: खण्ड:

'सुषमिद्धो न आवहे' त्याप्रिय आज्यानि भवन्ति ।।१।। प्रजापति: प्रजा असृजत सदुग्धो रिरिचानोऽमन्यत स एतान्याप्रियआज्यान्यपश्यत्तैरात्मानमाप्रीणात् दुग्धइव वा एष रिरिचानो यो दशभिरहर्भिस्तुष्टुवानो यदेतान्याप्रिय आज्यानि भवन्त्यात्मान-मेवैतैराप्रीणाति ।।२।। 'यदद्य सूर उदित' इति सूरवन्मैत्रावरुण-मन्तो वै सूरोऽन्त एतद्दशममह्नामन्त एव तदन्तेन स्तुवते प्रतिष्ठाया 'उत्वा मन्दन्तु सोमा' इत्युद्वदैन्द्रमुत्थानस्य रूपम् ।।३।। 'इन्द्राग्नी आगतं सुतमि'ति येनैव रूपेण प्रयन्ति तदभ्युद्यन्ती स्तोम: ।।४।।

नवम: खण्ड:

'उच्चा ते जात मन्धस' इत्युद्वत्यो गायत्र्यो भवन्त्युत्थानस्य रूपम् ।।१।। 'पुनान: सोमधारये'ति पन्थानमेव तत् पर्य्यवयन्ति ।।२।। 'आ जागृविर्विप्र ऋतं मतीना'मिति यदाप्ते प्रवती: कुर्य्युरतिपद्येरन्यदावत्यो भवन्त्यनतिपादाय ।।३।। गायत्रं भवति यदेव गायत्रस्य ब्राह्मणम् ।।४।। आमहीयवं भवति क्लृप्तिश्चान्नाद्यञ्च क्लृप्तिञ्चैवैतेनान्नाद्यञ्चाभ्युत्तिष्ठन्ति ।।५।।

आजिगं भवत्याजिजित्यायै ॥६॥ आजिर्वा एष प्रततो यत् द्वादशाहस्तस्यैतदुज्जित्यै ॥७॥ आभीकं भवत्यभिक्रान्त्यै ॥८॥ अङ्गिरसस्तपस्तेपानाः शुचमशोचꣳस्त एतत्सामापश्यꣳ-स्तानभीकेऽभ्यवर्षत्तेन शुचमशमयन्त यदभीकेऽभ्यवर्षत्तस्मादाभीकं यामेव पूर्वैरहर्भिः शुचꣳशोचन्ति तामेतेनात्र शमयित्वो-त्तिष्ठन्ति ॥९॥ उत्सेधो भवति ॥१०॥ उत्सेधेन वै देवाः पशू-नुदशेधन्निषेधेन पर्य्यगृह्णन् ॥११॥ अन्तरोत्सेधनिषेधौ यज्ञायज्ञीयम् ॥१२॥ पशवोऽन्नाद्यं यज्ञायज्ञीयं पशूनेव तदन्नाद्य-मुत्सेधनिषेधाभ्यां परिगृह्णाति ॥१३॥ माध्यन्दिने वै पवमाने देवा यज्ञायज्ञीयेन यज्ञं सꣳस्थाप्य स्वर्गं लोकमारोहꣳस्तद्य एवं वेद माध्यन्दिन एवैतत्पवमाने यज्ञायज्ञीयेंन यज्ञꣳसꣳस्थाप्य स्वर्गं लोकमारोहति ॥१४॥ अथो परोक्षमनुष्टुभं सम्पद्यतेऽहरेषा वै प्रत्यक्षमनुष्टुप् यद्यज्ञायज्ञीयं तद्यत्तृतीयसवने कुर्य्युः प्रत्यक्षमनुष्टुभ-मृच्छेयुस्तस्मान्मध्यन्दिने कुर्वन्ति तेन परोक्षमनुष्टुभमुपयन्ति ॥१५॥ गौरीवितं भवति ॥१६॥ एतद्वै यज्ञस्य श्वस्तनं यद्गौरीवितमेतदायतनो यजमानो यन्मध्यन्दिनो यद्गौरीवितं मध्यन्दिने भवति श्वस्तनमेव तद्यजमान आत्मन्धत्ते स्तोमः ॥१७॥

दशमः खण्डः

'कया नश्चित्र आभुवदि'ति कवत्यस्तेन प्राजापत्याः को हि प्रजापतिः प्रजापतिराप्त्यै ॥१॥ 'मा चिदन्य द्विशँसते'त्युत्थांनमे-तदाशिषोह्येतर्हि ॥२॥ 'उदु त्ये मधुमत्तमा' इत्युद्धत्य उदयनीयेऽहन्येतदाशिषोह्येवैतर्हि ॥३॥ 'तरोभि र्वो विद द्वसु'मिति स्तोमो वै तरो यज्ञो विदद्वसुः स्तोमेन वै यज्ञो युज्यते यत्तरोभि र्वो विदद्वसुमित्याह यज्ञमेव तद्यनक्ति ॥४॥

वामदेव्यस्यर्क्षु रथन्तरं पृष्ठं भवति गायत्री वै रथन्तरस्य योनिः स्वायामेव तद्योनौ रथन्तरं प्रतिष्ठापयति ।।५।। तेजो वै गायत्री छन्दसां तेजो रथन्तरꣳसाम्नां तेजश्चतुर्विंशस्तोमानां तेज– एव तत्सम्यक् सन्दधात्यपिह पुत्रस्य पुत्रस्तेजस्वी भवति ।।६।। अष्टाक्षरेण प्रथमाया ऋचः प्रस्तौत्यष्टा शफाꣳस्तत्पशूनवरुन्धे ।।७।। द्व्यक्षरेणोत्तरयोर्ऋचोः प्रस्तौति द्विपाद्यजमानो यजमानमेव यज्ञे पशुषु प्रतिष्ठापयति ।।८।। गायत्रं वै रथन्तरं गायत्रच्छन्दो यद्गायत्रीषु रथन्तरं भवति तेन स्वायां जनतायामृध्नोतीमे वै लोका गायत्री यद्गायत्रीषु रथन्तरं भवतीमानेव तल्लोकान् समाप्योत्तिष्ठन्ति ।।९।। मैधातिथं भवति ।।१०।। एतेन वै मेधातिथिः काण्वो विभिन्दुकाद् व्यूध्नीर्गा उदसृजत पशूनामवरुध्यै मैधातिथं क्रियते ।।११।। अभीवर्त्तो ब्रह्मसाम भवत्येकाक्षरणिधनः प्रतिष्ठायै ।।१२।। एकाक्षरा वै वाग्वाच्येव प्रतिष्ठायोत्तिष्ठन्ति ।।१३।। कालेयमच्छावाकसाम भवति ।।१४।। समान लोके वै कालेयञ्च रथन्तरञ्चेयं वै रथन्तरं पशवः कालेयमस्याञ्चैव पशुषु च प्रतिष्ठायोत्तिष्ठन्ति स्तोमः ।।१५।।

एकादशः खण्डः

'स्वादिष्ठया मंदिष्ठये'ति गायत्री भवति मदवद्धै रसवत्तृतीय सवनं मदमेव तद्रसं दधाति ।।१।। गायत्रं भवति यदेव गायत्रस्य ब्राह्मणम् ।।२।। सꣳहितं भवति द्व्यक्षरणिधनं प्रतिष्ठायै प्रतिष्ठायै– वोत्तिष्ठन्ति ।।३।। सफं भवति ।।४।। सफेन वै देवा इमान् लोकान् समाप्नुवन्यत्समाप्नुवꣳस्तत्सफस्य सफत्वमिमानेवैतेन लोकान् समाप्योत्तिष्ठन्ति ।।५।। रोहितकूलीयं भवति यदेव रोहितकूलीयस्य ब्राह्मणम् ।।६।। श्यावाश्वान्धीगवे भवतः समीच्यौ विराजौ दधात्यन्नाद्याय ।।७।।

पिपीलिकमध्यासु स्तुवन्ति ॥८॥ इन्द्रो वृत्रं हत्वा नास्तृषीति मन्यमानः परां परावतमगच्छत्स एतामनुष्टुभं व्यौहत्तां मध्ये व्यवासर्पीदिन्द्रगृहे वा ऐषोभये यजतेऽभय उत्तिष्ठति य एवं विद्वानेतासु स्तुते ॥९॥ यज्ञायज्ञीयनिधनꣳसौहविषं भवति यज्ञायज्ञीयादेव तत्तृतीयसवनेन यन्ति ॥१०॥ वाजजिद्भवति ॥११॥ सर्वस्याप्त्यै सर्व्वस्य जित्यै सर्वं वा एते वाजं जयन्ति ये दशममहरागच्छन्त्यन्नं वै वाजोऽन्नाद्यस्यावरुध्यै ॥१२॥ दशाक्षरं निधनमुपयन्ति दशरात्रस्य धृत्यै दशाक्षरा विराड्वैराजमन्नमन्नाद्यस्यावरुध्यै ॥१३॥ सूर्य्य वतीषु– स्तुवन्त्यतो वै सूरोऽन्त एतद्दशममह्नामन्तएव तदन्तेन स्तुवते प्रतिष्ठायै ॥१४॥ उपवत्यो भवन्ति प्रतिष्ठायै परिवत्यो भवन्ति सर्वस्य पर्य्याप्त्यै ॥१५॥ चतुर्विꣳशएव स्तोमो भवति तेजसे ब्रह्मवर्च्चसाय ॥१६॥

द्वादशः खण्डः

विराट्सु वामदेव्यमग्निष्टोमसाम भवति शान्त्यै क्लृप्त्यै ॥१॥ सद्वै वामदेव्यꣳसाम्नाꣳसद्विराट् छन्दसाꣳसत्त्रयस्त्रिꣳशः स्तोमानाꣳ– सतामन्तान् सन्धायोत्तिष्ठन्त्यपिह पुत्रस्य पुत्रः सत्वमश्नुते ॥२॥ ब्रह्मवादिनो वदन्ति यतः सत्रादुदस्थाता ३ स्थिता ३ दिति यद्यत इति ब्रूयुरप्रतिष्ठाना अप्रजसो भविष्यन्तीत्येनान् ब्रूयाद्यत् स्थितादिति ब्रूयुः स्थायुकैषाꣳश्रीर्भविष्यति न वसीयाꣳसो भविष्यन्तीत्येनान् ब्रूयात् पूर्णादेव पूर्णमभ्युदस्थामेति ब्रूयुः ॥३॥ एते वै पूर्णात् पूर्णमभ्युत्तिष्ठन्ति ये वामदेव्येन स्तुत्वोत्तिष्ठन्ति ॥४॥ अन्तरिक्षं वै वामदेव्यमन्तरिक्षेणेदꣳसर्वं पूर्णम् ॥५॥ एष वै समृद्धः स्तोमो यत् त्रयस्त्रिꣳशस्त्रयत्रिꣳशदक्षरासु समृद्धावेव प्रतितिष्ठन्ति ॥६॥

सर्वेषां वा एताश्छन्दसाꣳरूपं यत्त्रिपदास्तेन गायत्र्यो यदेकादशाक्षराणि पदानि तेन त्रिष्टुभो यत् द्वादशाक्षरं पदं तेन जगत्यो यत् त्रयस्त्रिꣳशदक्षरास्तेन विराजस्तेनैव चानुष्टुभो न ह्येकस्मादक्षराद्विराधयन्ति ।।७।। त्रयस्त्रिꣳशएव स्तोमो भवति प्रतिष्ठायै देवतासु वा एष प्रतिष्ठितः ।।८।।

।।इति पञ्चदशोऽध्यायः।।



षोडशोऽध्यायः

प्रथमः खण्डः

प्रजापतिर्वा इदमेक आसीन्नाहरासीन्न रात्रिरासीत्सोऽस्मिन्नन्धे तमसि प्रासर्पत्स ऐच्छत्स एतमभ्यपद्यत ततो वै तस्मै व्यौछद्—व्युष्टिर्वा एष आह्वयते यद्वै तज्ज्योतिरभवत्तत ज्योतिषो ज्योतिष्ट्वम् ।।१।। एष वाव प्रथमो यज्ञानां य एतेनानिष्ट्वाथान्येन यजते कर्त्तपत्यमेव तज्जीयते वा प्रवामीयते ।।२।। यथा वा इदमग्नेर्ज्जातादग्नयो विह्रियन्त एवमेतस्मादध्यन्ये यज्ञाविह्रयन्ते ।।३।। यो हि त्रिवृदन्यं यज्ञक्रतुमापद्यते सतं दीपयति यः पञ्चदशः स तं यः सप्तदशः स तं य एकविꣳशः स तम् ।।४।। एतत्तद्यदाहु—रेको यज्ञ इत्येतद्धि सर्वे ज्योतिष्टोमा भवन्ति ।।५।। अस्थूरिर्वा एष सन्ततो यज्ञो द्वौ द्वौ हि स्तोमौ सवनं वहतस्त्रिवृत्पञ्चदशौ प्रातःसवनं पञ्चदशसप्तदशौ माध्यन्दिनꣳसवनꣳसप्तदशैकविꣳशौ तृतीयसवनम् ।।६।। या मितदक्षिणैव स्यादेष एव कार्य्य इयं वै ज्योतिरियममितस्य यन्त्रिकैषा वा एतं यन्तुमर्हति ।।७।। तस्य नवतिशतꣳस्तोत्रीयास्तासां या अशीतिशतं ताः षट्त्रिꣳशिन्यो विराजः षड्तव ऋतुष्वेव विराजा प्रतितिष्ठति ।।८।। अथ या दशैषा वा आत्मन्या विराडेतस्यां वा इदं पुरुषः प्रतिष्ठितः ।।९।। गौश्चाश्वश्चाश्वतरश्च गर्द्दभश्चाजाश्चावयश्च व्रीहयश्चयवाश्च तिलाश्च माषाश्चैतस्यामेव विराजि प्रतितिष्ठति ।।१०।। तस्य द्वादशꣳशतं दक्षिणाः ।।११।। वीरहा वा एष देवानां यः सोममभिषुणोति याः शतं वैरं तद्देवानवदयतेऽथ या दशदशप्राणाꣳस्ताभिस्पृणोति यैकादश्यात्मानं तया या द्वादशी सैव दक्षिणा ।।१२।।

श्लेष्म वा एतद्यज्ञस्य यद्दक्षिणा न वा अश्लेष्मा रथो वहत्यथ यथाश्लेष्मवता यं कामं कामयते तमभ्यश्नुत एवमेतेन दक्षिणावता यं कामं कामयते तमभ्यश्नुते ।।१३।। शुभो वा एता यज्ञस्य यद्दक्षिणा यद्दक्षिणावता यजते शुभमेवास्मिन्दधाति ।।१४।।

द्वितीयः खण्डः

अथैष गौः ।।१।। गवा वै देवा असुरानेभ्यो लोकेभ्योऽनुदन्तैभ्यो लोकेभ्यो भ्रातृव्यं नुदते य एवं वेद ।। २।। यद्वै तद्देवा असुरानेभ्यो लोकेभ्यो गोवयꣳस्तद्गोर्गोत्वम् ।।३।। गोवयति पाप्मानं भ्रातृव्यं य एवं वेद ।।४।। तस्य पञ्चदशं बहिष्पवमानं वज्रो वै पञ्चदशो वज्रमेव तत्पुरस्तान्निदधाति तेन विजयते ।।५।। पशुस्तोमो वा एष एवमिव वै पशुः समाहितः शिरः स्थवीयोऽणीयस्यो ग्रीवा पार्श्वाभ्यां वरीयाꣳसक्थिभ्यां वरिष्ठः ।। ६।। यत् पञ्चदशं बहिष्पवमानं भवति त्रिवृन्त्याज्यानि सप्तदश माध्यन्दिनꣳसवनमेकविꣳशं तृतीयसवनꣳरूपेणैवैनं तत् समर्द्धयति ।।७।। एका सꣳस्तुतानां विराजमतिरिच्यते तस्मात् पशोः पश्चादतिरिक्तम् ।।८।।

तृतीयः खण्डः

अथैष आयुः ।।१।। आयुषा वै देवा असुरानायुवतायुते भ्रातृव्यं य एवं वेद ।।२।। स्वर्गकामो यजेत ।।३।। ऊर्ध्वाः स्तोमा यन्त्यनपभ्रꣳशाय ।।४।। एतेनैवामयाविनं याजयेदतिरात्रः कार्य्यः ।।५।। स गायत्रीꣳसम्पद्यते प्राणो गायत्र्यायुरेष आयुश्चैवास्मिन् प्राणञ्चोभे समीची दधाति ।।६।। स्वर्ग्या वा एते स्तोमा यत् ज्योतिर्भवति ज्योतिरेवास्मै स पुरस्ताद्धरत्यथैष गौरेकया विराज–मतिरिक्त आरम्भणमेव तदथैष आयुरेकस्या विराज ऊन आसाद एव सोऽथो ऊनातिरिक्तौ स्तोमौ मिथुनौ प्रजात्यै ।।७।।

एते वै त्रिकद्रुकाः स्तोमा एतैर्वा इन्द्रः सर्वां तृप्ति–मतृप्यत् ।।८।। तृप्यति प्रजया पशुभिर्य्य एवं वेद ।।९।।

चतुर्थः खण्डः

प्रजापतिः प्रजा असृजत ता अस्मै श्रैष्ठ्याय नातिष्ठन्त स आसां दिशां प्रजानाञ्च रसं प्रबृह्य स्रजं कृत्वा प्रत्यमुञ्चत ततोऽस्मै प्रजाः श्रैष्ठ्यायातिष्ठन्त ।।१।। तिष्ठन्तेऽस्मै समानाः श्रैष्ठ्याय य एवं वेद ।। २।। सोऽकामयतेन्द्रो मे प्रजायाꣳश्रेष्ठः स्यादिति तामस्मै स्रजं प्रत्यमुञ्चत्ततो वा इन्द्राय प्रजाः श्रैष्ठ्यायातिष्ठन्त तच्छिल्पं पश्यन्त्यो यत्पितर्य्यपश्यन् ।।३।। तस्माद्यः पुत्राणां दायं धनतममिवोपैति तं मन्यन्तेऽयमेवेदं भविष्यतीति ।।४।। ततो वा इदमिन्द्रो विश्वमजयद्यद्विश्वमजयत्तस्माद्विश्वजित् ।।५।। सोऽकामयत यन्मेऽनभिजितं तदभिजयेयमिति स एतमभिजितमपश्यत्तेनानभिजित–मभ्यजयत् ।।६।। यदभिजिद्भवत्यनभिजितस्याभिजित्यै ।।७।। तौ वा एताविन्द्रस्तोमौ वीर्य्यवन्तौ शिल्पं वा एतौ नामस्तोमा–वास्ताम् ।।८।। पश्यते गृहे शिल्पं य एवं वेद ।।९।। न वै यमौ नाम स्तोमौ स्तो यो यमाभ्यां यजेतैताभ्यां यजेत समृद्ध्यै ।।१०।। पुनरभ्यावर्त्तꣳस्तोमा भवन्ति पुनरभ्यावर्त्तꣳह्येताभ्यामिन्द्रोऽ–जितमजयत् ।।११।। त्रीꣳस्त्रिवृदभिजितः प्रणयति त्रीन् पञ्चदश–स्त्रीन् सप्तदशस्त्रीनेकविꣳशस्ते द्वादश सम्पद्यन्ते द्वादशमासाः संवत्सरः संवत्सरः प्रजापतिः प्रजापतिमेवाप्नोति ।।१२।। चतुर–स्त्रिवृद्विश्वजितः प्रणयति चतुरः पञ्चदशश्चतुरः सप्तदशस्ते द्वादश सम्पद्यन्ते द्वादशमासाः संवत्सरः संवत्सरः प्रजापतिः प्रजापति–मेवाप्नोति ।।१३।।

पञ्चमः खण्डः

'उप त्वा जामयो गिर' इत्युपवती प्रतिपद्भवति स्तोमस्य रूपम् ।।१।। 'प्राणैर्वा एष व्यृध्यत इत्याहुर्यः सर्वं ददाति सर्व्वान् स्तोमान् सर्व्वाणि पृष्ठान्युपैतीति यद्वायव्या भवति प्राणानाꣳ–समृद्ध्यै ।।२।। सरस्वतश्च सरस्वत्याश्चोत्तरे भवतः ।।३।। मिथुनं वा एतद्यत् सरस्वाꣳश्च सरस्वती च मिथुनमेवास्य यज्ञमुखे दधाति प्रजननाय ।।४।। सावित्री चतुर्थी भवति ।।५।। दुष्करं वा एष करोति यः सर्व्वं ददाति यत् सावित्री भवति सवितृप्रसूतं मे कर्म्मासदिति सवितृप्रसूतमेवास्य कर्म भवति ।।६।। ब्राह्मणस्पत्या पञ्चमी भवति ।।७।। ब्रह्म वै ब्रह्मणस्पतिर्ब्रह्मैवास्य यज्ञमुखे दधाति ।।८।। आग्निपावमानो षष्ठी भवति ।।९।। अग्निरेवैनं निष्टपतिः पवमानः पुनाति पूतमेवैनं यज्ञियं पृष्ठान्युपनयति ।।१०।। 'यन्ति वा एते पथ' इत्याहुर्ये सम्भार्य्याः कुर्वते ।।११।। पवमान उत्तमस्तृचो भवति तेन पथो नयन्ति ।।१२।। 'स तु वै पृष्ठैः स्तुवीते'त्याहुर्य एतानि बहिष्पवमाने युञ्ज्यादिति ।।१३।। उपवती प्रतिपद्भवत्युप वै रथन्तरꣳरथन्तमेवास्मै तया युनक्ति ।।१४।। सरस्वती द्वितीया भवति स्वर्गो लोकः सरस्वान् स्वर्गो लोको बृहद् बृहदेवास्मै तया युनक्ति ।।१५।। सरस्वत्यास्तृतीया भवति वाग्वै सरस्वती वाग्वैरूपं वैरूपमेवास्मै तया युनक्ति ।।१६।। सावित्री चतुर्थी भवति प्रजापतिर्वै सविता प्रजापतिर्वैराजं वैराजमेवास्मै तया युनक्ति ।।१७।। ब्राह्मणस्पत्या पञ्चमी भवति ब्रह्म वै ब्रह्मणस्पतिर्ब्रह्म शक्वर्य्यः शक्वरीरेवास्मै तया युनक्ति ।।१८।। आग्निपावमानी षष्ठी भवति गायत्री वै रेवती गायत्रच्छन्दा अग्नीरेवतीरेवास्मै तया युनक्ति ।।१९।।

न चत्वारि षड्भ्यो विभवन्ति यदनिरुक्तानि तेन विभवन्ति ।। २०।। सर्व्वाणि स्वाराण्याज्यानि तज्जामि नानादेवत्यैः स्तुवन्त्यजामितायै ।। २१।। 'सुषमिद्धो न आवहे'त्याप्रिय आज्यानि भवन्ति ।। २२।। प्रजापतिः प्रजा असृजत स दुग्धोरिरिचानोऽमन्यत स एतान्याप्रिय आज्यान्यपश्यत्तैरात्मान माप्रीणात् दुग्धइव वा एष रिरिचानो यः सर्वं ददाति यदाप्रिय आज्यानि भवन्त्यात्मानमेव तैराप्रीणाति ।। २३।। एतर्हि तु वै पृष्ठानि यथायतनं कल्पन्त इत्याहुर्यद्रथन्तरं प्रथमं बृहदुत्तमं मध्यइतराणीति ।। २४।। 'जामि वा एतद्यज्ञे क्रियत' इत्याहुर्य्यत्सर्व्वाणि निधनवन्ति सह क्रियन्त इति यदन्तरा सोमा यन्त्यन्तरोक्थानि शस्यन्तेऽन्तरा वषट्कुर्वन्ति तेनाजामि ।। २५।। व्यत्यासमिडाश्च निधनानि चाहु-स्तेनाजामि ।। २६।। च्यवन्ते वा एतद्देवत्यः स्वादायतनादित्याहुर्यत् त्रयस्त्रिंश्शात् स्तोमाद्यन्तीति यद्गायत्र्यो भवन्ति तेनायतनान्न च्यवन्ते या हि का च गायत्री सा रेवती ।। २७।।

षष्ठः खण्डः

'पशुभिर्वा एष व्यृध्यत' इत्याहुर्यः सर्वं ददातितच्छवीं परिधत्ते पशुभिरेव समृध्यते ।। १।। रोहिणी छवी भवत्येतद्वै पशूनां भूयिष्ठंश्रूपं यद्रोहितंश्साक्षादेवैनानवरुन्धे ।। २।। अरण्ये तिस्रो वसत्यारण्यं ताभिरन्नाद्यमवरुन्धे ।। ३।। उदुम्बरे वसत्यूर्गुदुम्बर ऊर्ज्जमेवावरुन्धे ।। ४।। खनित्रेण जीवत्यवृत्तिमपजयति ।। ५।। उभयतः क्ष्णुदभ्रिर्भवत्युभयत एवास्मा अन्नाद्यंश्रदत्यस्माच्च लोकाद-मुष्माच्च ।। ६।। निषादेषु तिस्रो वसत्यस्यां वा एते परीत्ताय देवास्यामन्नाद्यं तदवरुन्धे ।। ७।। जने तिस्रो वसति जन्यं ताभि-रन्नाद्यमवरुन्धे ।। ८।।

समानजने तिस्रः समानजन्यं ताभिः ।।९।। द्वादशैता रात्रयो भवन्ति द्वादशमासाः संवत्सरः संवत्सरमन्वन्नाद्यं प्रजायते तदेवाप्त्वावरुन्धे ।।१०।। संवत्सरं न याचेदामाद्यमिव वा एतद्यः सद्योदत्तं प्रत्यत्ति सद्यो वै देवानाꣳसंवत्सरः ।।११।। नोदीयमानं प्रति नुदेदन्नाद्यस्याप्रतिनोदाय ।।१२।। उष्णीषं बिभर्त्ति शिल्पत्वाय ।।१३।। न मृन्मयेन पिबेदाहुतिर्वा एषा यद् ब्राह्मणस्य मुखं न वै मृन्मयमाहुतिमानशेऽथ यदमृन्मयपो भवति स्व एव मुख आहुतिञ्जुहोति ।।१४।।

सप्तमः खण्डः

पञ्च विंशोऽग्निष्टोमः ।।१।। सर्व्वजिता वै देवाः सर्वमजयन् सर्वस्याप्त्यै सर्वस्य जित्यै सर्वमेवैतेनाप्नोति सर्वञ्जयति ।।२।। तस्य महाव्रतं पृष्ठम् ।।३।। अर्क्यं शस्यते ।।४।। चतुर्विंशतिः संवत्सरस्यार्द्धमासाः संवत्सरः पञ्चविंशोऽन्नं व्रतँ संवत्सरादेते-नान्नाद्यमवरुन्धे ।।५।। अन्नादो भवति य एवं वेद ।।६।। एतेन वै गौराङ्गिरसः सर्वं पाप्मानमतरत्सर्वं पाप्मानं तरत्येतेन स्तोमेन तुष्टुवानः ।।७।।

अष्टमः खण्डः

अथैष ज्योतिः ।।१।। पराङ्वै त्रिरात्रोऽर्वाङग्निष्टोमो यस्त्रिरात्रे विभ्रꣳशते न तस्मिन् पुनरस्त्यथ योऽग्निष्टोमे प्रायश्चित्तिमत्तदपि ह्येतेनैकविꣳशति दक्षिणेन पुनर्यजेत यस्मिन् ह्येव यज्ञक्रतौ विभ्रꣳ-शते सैव तस्य प्रायश्चित्तिः ।।२।। उपसदि सहस्रं प्रातरनुवाक-मन्वाह तदसौ लोकः सहस्रं दक्षिणास्तदन्तरिक्षꣳसहस्रमेतान्यक्षराणि तदयं लोक एषु लोकेषु प्रतितिष्ठति य एवं वेद ।।३।।

'ऋक्था वा अन्यत् सहस्र' मित्याहुरक्षरेस्था अन्यदिति यत् त्रिरात्रे दीयते तदृक्था अथ यदग्निष्टोमे तदक्षरेस्था ।।४।। यत् सहस्राक्षरासु ब्रह्मसाम भवति सहस्रस्यैव सा प्रतिष्टुतिः ।।५।। 'यावद्वै सहस्रं गाव उत्तराधरा' इत्याहुस्तावदस्मात् लोकात् स्वर्गो लोक इति तस्मादाहुः सहस्रयाजी वा इमान् लोकान् प्राप्नोति ।।६।। 'पशुभिर्वा एष व्यृध्यत' इत्याहुर्यः सद्यः सहस्रं ददातीति पङ्क्तिषु ब्रह्मसाम भवति पाङ्क्तो यज्ञः पाङ्क्ताः पशवो यज्ञएव पशुषु प्रतितिष्ठति ।।७।। त्रिवृतश्स्तोमश्सम्पद्यते विराजं छन्दः ।।८।। प्राणो वै त्रिवृदन्नं विराण्नवैव प्राण ऋतेऽन्नात्पारयति नान्नमृते प्राणात्प्राणेषु चैवान्नाद्ये च प्रतितिष्ठति ।।९।।

नवमः खण्डः

अथैष सर्व्वज्योतिः सर्वस्याप्तिः सर्वस्य जितिः सर्वमेवै–तेनाप्नोति सर्वं जयति ।।१।। परमो या एष यज्ञः परमश्सहस्रं परमतां गच्छति य एवं वेद ।।२।। तस्य द्विशताः स्तोत्रीया अन्तो वै वाचो द्विशतमन्तः सहस्रमन्त एव तदन्तं प्रतिष्ठापयति ।।३।। कृतस्तोमो वा एष सर्वमेवैतेनाप्नोति सर्वं जयति सर्वश्हि कृतेन जयति ।।४।। विराजश्सम्पद्यतेऽन्नं विराडन्नाद्यमेवावरुन्धे ।।५।। एकविंश्शोऽग्निष्टोमो भवति प्रतिष्ठा वा एकविंश्शोऽन्तत एव यज्ञस्य प्रतितिष्ठति ।।६।।

दशमः खण्डः

अथैष विश्वज्योतिरुक्थ्यः ।।१।। पशवो वा उक्थानि पशवो विश्वज्योतिर्विश्व एव ज्योतौ पशुषु प्रतितिष्ठति ।।२।। अहर्भिर्व्वै त्रिरात्र इमान् लोकानाप्नोति सवनैरेष उत्तरामुत्तरं त्रिरात्रस्याहर्वर्षीय

उत्तरमुत्तरमेतस्य सवनं वर्षीयस्तेन त्रिरात्रमाप्नोत्युत्तर उत्तर एषां लोकानां ज्यायाꣳस्तेनेमान् लोकानाप्नोति ।।३।। अस्थूरिर्वा एष सन्ततो यज्ञो द्वौ द्वौ हि स्तोमौ सवनं वहतः ।।४।। त्रिवृत्पञ्चदशौ प्रातःसवनꣳसप्तदशपञ्चविꣳशौ माध्यन्दिनꣳसवनं चतुर्विꣳशैकविꣳशौ तृतीयसवनम् ।।५।। यद्वै युक्ते सन्तत आधीयते वहति तद्यथा युक्ते सन्तत आदध्यादेवमेतस्मिन् सहस्रमाधीयते ।।६।। उभे बृहद्रथन्तरे भवतः ।।७।। इयं वै रथन्तरं द्यौर्बृहदेवा-स्माल्लोकाद्रायत्येवामुष्मादुभयोरनयोर्लोकयोः प्रतितिष्ठति ।।८।। अनुष्टुभ्याथर्वणं भवति ।।९।। भेषजं वै देवानामथर्वाणो भेषज्या-यैवारिष्ट्यै ।।१०।। उद्वꣳशीयमुक्थानामन्ततो भवति सर्व्वेषां वा एतत् पृष्ठानाꣳरूपꣳसर्वेष्वेव रूपेषु प्रतितिष्ठति ।।११।। उक्थो भवति पशवो वा उक्थानि पशवः सहस्रं पशुष्वेव तत्प-शून्दधाति ।।१२।।

एकादशः खण्डः

यो वा अग्निष्टोमे त्रिरात्रं प्रोतं विद्यात्सोऽग्निष्टोमे सहस्रं दद्यात् त्रिरात्रायतनꣳहि सहस्रम् ।।१।। 'उपास्मै गायता नरः' 'उपोषु जातमप्तुरं' 'पवस्व वाचो अग्रिय' इति प्रतिपदो भवन्त्येतद्वै त्रिरात्रमकः ।।२।। पवमाने रथन्तरं करोति पवमानस्यान्त्यं वामदेव्यं बृहत् पृष्ठम् ।।३।। इयं वै रथन्तरमन्तरिक्षं वामदेव्यं द्यौर्बृहदिमे लोकास्त्रिरात्रो यदेतानि सामानि सध्र्यञ्चि करोतीमानेव तल्लोकान् सन्दधाति तेन त्रिरात्रमाप्नोति ।।४।। ककुभं प्राचीमुदूहति ।।५।। पुरो ह्वोतया सत्या अपशुवीर्य्यं करोति ।।६।। तस्यामिडानाꣳ-संक्षारः पुरुषो वै ककुप् पशव इडानाꣳसंक्षार आत्मन्येव तत्पशून् प्रतिष्ठापयति ।।७।।

'प्रत्नं पीयूषं पूर्व्यं यदुक्थ' मिति सतोबृहत्यो भवन्ति ।।८।। सतोबृहत्यावै देवा इमान् लोकान् व्याप्नुवन्निमानेवैताभिर्ल्लोकान् व्याप्नोति ।।९।। ता वा एता गायत्र्यो यत्त्रिपदास्तेन गायत्र्यस्तावा एता जगत्यो यद् द्वादशाक्षराणि पदानि तेन जगत्यस्तावा एता बृहत्यो यत् षट्त्रिंशदक्षरास्तेन बृहत्यः सर्वेषां वा एताश्छन्दसाꣳरूपꣳसर्व्वाणि रूपाणि पशूनामवरुन्धे ।।१०।। एतद्वै प्रत्यक्षं महाव्रतं तस्य गायत्रꣳशिरो बृहद्रथन्तरे पक्षौ वामदेव्य–मात्मा यज्ञायज्ञीयं पुच्छं दक्षिणा एवार्क्यमेष वाव प्रत्यक्षं महाव्रतेन स्तुते य एतेन यजते ।।११।। तस्य बृहत्पृष्ठं पङ्क्तिषु ब्रह्मसाम तदाहुश्छन्दो व्याधीयते यद् बृहत्पृष्ठं भवति पङ्क्तिषु ब्रह्मसामेति ।।१२।। श्रायन्तीयमेव कार्य्यं न छन्दो व्याधीयते ।।१३।। एषो सहस्रस्य प्रतिष्टुतिः ।।१४।। सहस्रमन्य मभितिष्ठतीत्याहुः सहस्रमन्योऽन्वातिष्ठतीति ।।१५।। ककुभं प्राचीमुदूहत्यथ यदेषा द्विपदा ककुभो लोके क्रियते सहस्रस्यैव सोऽन्वास्थायः ।।१६।। अनुष्टुभꣳसम्पद्यते वागनुष्टुव्वाक् त्रिरात्रस्तेन त्रिरात्रमाप्नोति ।।१७।।

द्वादशः खण्डः

आदित्याश्चाङ्गिरसश्चादीक्षन्त ते स्वर्गे लोकेऽस्पर्द्धन्त तेऽङ्गिरस आदित्येभ्यः श्वः सुत्यां प्राब्रुवꣳस्त आदित्या एतमपश्यꣳस्तꣳसद्यः परिक्रीयायास्यमुद्गातारं वृत्वा तेन स्तुत्वा स्वर्गं लोकमायन्न–हीयन्ताङ्गिरसः ।।१।। भ्रातृव्यवान्यजेत ।। २।। भवत्यात्मना परास्य भ्रातृव्यो भवति य एवं वेद ।।३।। तस्मा अमुमादित्यमश्वꣳश्वेतं कृत्वा दक्षिणामानयꣳस्तं प्रतिगृह्य व्यभ्रꣳशत स एतान्यायास्या–न्यपश्यत्तैरात्मानꣳसमश्रीणात् ।।४।। यदायास्यानि भवन्ति भेषजायैव शान्त्यै ।।५।।

स्वर्गकामो यजेत ।।६।। बृहतीᳩसम्पद्यते बृहत्या वै देवाः स्वर्गं लोकमायन् स्वर्गमेवैतेन लोकमाप्नोति ।।७।। पशुकामो यजेत ।।८।। पशवो वै बृहती पशुष्वेव प्रतितिष्ठति ।।९।।

त्रयोदशः खण्डः

एतस्यैवैकविᳩशमग्निष्टोमसाम कृत्वामयाविनं याजयेत् ।।१।। प्राणो वै त्रिवृत्प्राण आदित्यः प्राणैरेष व्यृध्यते य आमयावी प्राणैरेवैनᳩसमर्द्धयति ।।२।। विराजᳩसम्पद्यतेऽप वा एतस्मादन्नाद्यं क्रामति य आमयाव्यन्नं विराडन्नाद्य मेवास्मिन् दधाति ।।३।। एकविᳩशोऽग्निष्टोमो भवत्यप्रतिष्ठितो वा एष य आमयावी प्रतिष्ठैकविᳩशः प्रत्येव तिष्ठति ।।४।। एतेनैवान्नाद्य कामो वा प्रतिष्ठाकामो वा यजेतान्नं विराट् प्रतिष्ठैकविᳩशोत्त्यन्नं प्रतितिष्ठति ।।५।। उर्व्वरा वेदिर्भवत्येतद्वा अस्यावीर्य्यवत्तमं वीर्य्येणैव यज्ञᳩसमर्द्धयति ।।६।। खल उत्तरवेदिरत्र हि स रसः समवैति सरसमेव यज्ञं करोति ।।७।। खलेवाली यूपो भवत्येतया हि तᳩरसमुत्कृषन्ति ।।८।। त्रिवत्सः साण्डः सोमक्रयणः सेन्द्रत्वाय ।।९।। सर्व्वा दिशोऽश्वतरथाः सोमप्रवाका विधावन्ति ।।१०।। सर्व्वाभ्य एवास्मै दिग्भ्योऽन्नाद्यमवरुन्धे ।।११।। योजने चतुर्व्वाहिणा प्राच्यां दिशि प्राहैवमिव वा अध्वानो विमिता यैवाध्वनो मात्रा तां धावयन्ति त्रैपदे प्रतिष्ठवाहिनो-दीच्यां गव्यूतौ द्व्योगेन प्रतिच्यां क्रोशे स्थूरिणा दक्षिणैतद द्वै दिशाᳩरूपं यदेव दिशाᳩरूपन्तेन यज्ञᳩसमर्द्धयति ।।१२।। सक्षीरदृतयो रथा भवन्ति ततोऽयन्नवनीतमुदियात्तदाज्येऽपि कार्य्यᳩसद्यस्त्वाय ।।१३।।

चतुर्दशः खण्डः

अथैषोऽङ्गिरसामनुक्रीः ।।१।। एतेन वा अङ्गिरस आदित्यानाप्नुवन् यो हीन आनुजावरइव स्यात् स एतेन यजेताप्नोति पूर्व्वेषां प्रहामाप्नुवन् ह्येतेनाङ्गिरस आदित्यान् ।।२।। तस्य चतुर्विंशौ पवमानौ ।।३।। चतुर्विंशत्यक्षरा गायत्री गायत्र्या वै देवा इमान् लोकान् व्याप्नुवन्निमानेवैतेन लोकान् व्याप्नोति ।।४।। तेजो ब्रह्मवर्च्चसं गायत्री तेजएव ब्रह्मवर्च्चसमवरुन्धे प्राणो गायत्री प्रजननं प्राणादेव गायत्र्याः प्रजायते ।।५।। उभये स्तोमा युग्मन्तश्चायुजश्च तन्मिथुनं तस्मान्मिथुनात्प्रजायते ।।६।। विराजंःसम्पद्यतेऽन्नं विराडन्नाद्यमेवावरुन्धे ।।७।। एकविंशोऽग्निष्टोमो भवति प्रतिष्ठा वा एकविंशोन्तत एव यज्ञस्य प्रतितिष्ठति ।।८।।

पञ्चदशः खण्डः

अथैष विश्वजिच्छिल्पः ।।१।। शिल्पं वा एष स्तोमानां पश्यते गृहे शिल्पं य एवं वेद ।।२।। तस्याष्टादशौ पवमानौ ।।३।। चक्रीवान्वा एष यज्ञः कामाय यं कामं कामयते तमेतेनाभ्यश्नुते यत्र हि चक्रीवता कामयते तदभ्यश्नुते ।।४।। स्वर्गकामो यजेत ।।५।। स्वर्गो लोकः पृष्ठानि स्वर्गमेवैतेन लोकमाप्नोति ।।६।। तेजो ब्रह्मवर्च्चसं पृष्ठानि यदेकधा पृष्ठानि भवन्त्येकधैवास्मिंःस्तेजो ब्रह्मवर्च्चसं दधाति ।।७।। अन्नं पशवः पृष्ठानि यदेकधा पृष्ठानि भवन्त्येकधैवास्मिन्नन्नाद्यं पशून् दधाति ।।८।। तदाहुर्न्नालोकानि पृष्ठानि यदेकस्मिन्यज्ञक्रतौ समवरुध्यन्त ईश्वरो यजमानोऽ–प्रतिष्ठातोरिति ।।९।। एकविंशःहोतुः पृष्ठं भवति प्रतिष्ठा वा एकविंशोमध्यत एव यज्ञस्य प्रतितिष्ठत्येकविंशोऽग्निष्टोमो भवति प्रतिष्ठा वा एकविंशोऽन्तत एव यज्ञस्य प्रतितिष्ठति ।।१०।।

द्वावेता वेकविंशौ भवतो द्विपाद्यजमानो यजमानमेव यज्ञे पशुषु च प्रतिष्ठापयति ।।११।।

षोडशः खण्डः

अथैष एकत्रिकः प्रजापतेरुद्भित् ।।१।। एतेन वै प्रजापति–रेषां लोकानामुदभिनत् ।।२।। कृतस्तोमो वा एष उद्भिन्नꣳह्येव कृतस्य ।।३।। यदेकया स्तुवन्त्येको वै प्रजापतिः प्रजापतिमेवाप्नोत्यथ यत्तिसृभिस्त्रय इमे लोका एष्वेव लोकेषु प्रतितिष्ठति ।।४।। ता उ चतस्रः सम्पद्यन्ते चतुष्पादाः पशवः पशुष्वेव प्रतितिष्ठति ।।५।। गायत्रीꣳसम्पद्यते तेजो ब्रह्मवर्च्चसं गायत्री तेज एव ब्रह्मवर्च्चस–मवरुन्धे ।।६।। प्राणो गायत्री प्रजननं प्राणादेव गायत्र्याः प्रजायते ।।७।। 'अयारुचा हरिण्या पुनान' इत्यार्भवः पवमानः ।।८।। सर्वेषां वा एषा च्छन्दसाꣳरूपꣳसर्वेष्वेवच्छन्दः स्वार्भवं पवमानं प्रतिष्ठापयति ।।९।। तस्यां गायत्रपार्श्वं न गायत्रादेति न साम्नो न निधनात् ।।१०।।

।।इति षोडशोऽध्यायः।।



सप्तदशोऽध्याय:

प्रथम: खण्ड:

देवा वै स्वर्गं लोकमायँस्तेषां दैवा अहीयन्त व्रात्यां प्रवसन्तस्त आगच्छन् यतो देवा: स्वर्गं लोकमायँस्तेन तँस्तोमं न छन्दोऽविन्दन्येन तानाप्स्यँस्ते देवा मरुतोऽब्रुवन्नेतेभ्यस्तँस्तोमं तच्छन्द: प्रायच्छत येनास्मानाप्नवानिति तेभ्य एतँषोडशँस्तोमं प्रायच्छन् परोक्षमनुष्टुभं ततो वै ते तानाप्नुवन् ।।१।। हीना वा एते हीयन्ते ये व्रत्यां प्रवसन्ति न हि ब्रह्मचर्य्यं चरन्ति न कृषिं न वणिज्याँषोडशो वा एतत् स्तोम: समाप्तु मर्हति ।। २।। मरुत्स्तोमो वा एष यानि क्षुद्राणि छन्दाँसि तानि मरुताम् ।। ३।। ककुभं प्राचीमुदूहत्यथ यदेषा द्विपदा ककुभो लोके क्रियते रूपेणैवैनाँस्तत समर्द्धयति ।।४।। 'अधा हीन्द्र गिर्वण' इति विषमं छन्दो विषमइव वै व्रात: सर्वानिवैतान् समान् करोति ।।५।। तासु द्यौतानम् ।।६।। द्युतानो मारुतस्तेषां गृहपतिरासीत्त एतेन स्तोमेनायजन्त ते सर्व आर्ध्नुवन् यदेतत् साम भवत्यृध्या एव ।।७।। यन्निरुक्तं निधनमुपेयुर्गृहपतिरेवर्ध्नुयादपेतरान् आध्नीताथ यदनिरुक्तमुपयन्ति सर्वानिवैतानृद्धौ भूतौ प्रतिष्ठापयति ।।८।। गरगिरो वा एते ये ब्रह्माद्यं जन्यमन्नमदन्त्यदुरुक्तवाक्यं दुरुक्तमाहुरदण्ड्यं दण्डेन घ्नन्तश्चरन्त्यदीक्षिता दीक्षितवाचं वदन्ति षोडशो वा एतेषाँस्तोम: पाप्मानं निर्हन्तुमर्हति यदेते चत्वार: षोडशा भवन्ति तेन पाप्मनोऽधिनिर्मुच्यन्ते ।।९।। 'देवो वो द्रविणोदा' इत्यग्निष्टोमसाम कार्य्यं देवतास्वेवैनान् प्रतिष्ठापयति ।।१०।।

अथो खल्वाहु 'अदर्शि गातुवित्तम' इत्येव सतो बृहतीषु कार्य्यं विषमइव वै व्रात: सर्व्वानेवैनान् सतोबृहत: करोति ।।११।। तदाहु: शिथिलमिव वा एतत् छन्दश्चराचरं यत् सतो बृहती 'देवो वो द्रविणोदा' इत्येव कार्य्यम् ।।१२।। एषा वै प्रतिष्ठिता बृहती या पुन: पदा तद्यत्पदं पुनरारभते तस्मात्पुत्रो मातरमध्येति ।।१३।। उष्णीषञ्च प्रतोदश्च ज्याह्रणोडश्च विपथश्च फलकास्तीर्ण: कृष्णशं वास: कृष्णवलक्षे अजिने रजतो निष्कस्तद् गृहपते: ।।१४।। वलूकान्तानि दामतूषाणी तरेषां द्वे द्वे दामनी द्वे द्वे उपानहौ द्विषंहितान्यजिनानि ।।१५।। एतद् वै व्रात्यधनं यस्मा एतद्ददति तस्मिन्नेवमृजाना यन्ति ।।१६।। त्रयस्त्रिंशता त्रयस्त्रिंशता गृहपति मभिसमायन्ति त्रयस्त्रिंशद्वि देवा आर्ध्नुवन् ऋध्या एव ।।१७।।

द्वितीय: खण्ड:

अथैष षट्षोडशी ये नृशंसा निन्दिता: सन्तो व्रात्यां प्रवसेयुस्त एतेन यजेरन् ।।१।। अभिपूर्व्वेण वा एते पाप्मना गृहीता ये नृशंसा निन्दिता: सन्तो व्रात्यां प्रवसन्ति यत् षट्षोडशानि स्तोत्राणि भवन्ति तेन पाप्मनोऽधि निर्मुच्यन्ते ।।२।। यदेक–विंशोऽग्निष्टोमो भवति प्रतिष्ठा वा एकविंशोमध्यत एव यज्ञस्य प्रतितिष्ठन्ति ।।३।। उक्थो भवति पशवो वा उक्थानि पशवो नृशंसमग्रं परिणयन्ति पशुभिरेवैनानग्रं परिणयन्ति ।।४।।

तृतीय: खण्ड:

अथैष द्वि षोडशी ये कनिष्ठा: सन्तो व्रात्यां प्रसवेयुस्त एतेन यजेरन् ।।१।। हीना वा एते हीयन्ते ये कनिष्ठा: सन्तो व्रात्यां प्रवसन्ति यत्त्रिवृत: पवमाना भवन्ति मुखं वै त्रिवृत् स्तोमानां मुखत एवैनान् यज्ञस्य परिणयति ।।२।।

यद् वै षोडशे स्तोत्रे भवतस्तेन पाप्मनोऽधि निर्मुच्यन्ते ।। ३।। एकविंशाग्निष्टोमो भवति प्रतिष्ठा वा एकविंशोन्तत एव यज्ञस्य प्रतितिष्ठन्ति।। ४।।

चतुर्थः खण्डः

अथैष शमनीचामेढ्राणांस्तोमो ये ज्येष्ठाः सन्तो व्रात्यां प्रवसेयुस्त एतेन यजेरन् ।। १।। अग्रादग्रंरोहत्यूर्ध्वाः स्तोमा यन्त्यनपभ्रंशाय ।। २।। एतेन वै शमनीचामेढ्रा अयजन्त तेषां कुषीतकः सामश्रवसो गृहपतिरासीत्तान् लुशाकपिः खार्गलिरनु-व्याहरदवाकीर्षत कनीयांसौ स्तोमावुपागुरिति तस्मात्कौषीतकीनां न कश्चनातीव जिहीते यज्ञावकीर्णा हि ।। ३।।

पञ्चमः खण्डः

इन्द्रो वै त्रिशिरसं त्वाष्ट्रमहंस्तमश्लीला वागभ्यवदत् सोऽग्निमुपाधावत् स एतदग्निस्तोत्रमपश्यत्तदात्मन्यधि विधाय तेनैनमयाजयत्तेनास्याश्लीलां वाचमपाहन् ।। १।। अपाश्लीलां वाचंहते य एवं वेद ।। २।। योऽपूतइव स्यादग्निष्टुता यजेताग्निनैवास्य पाप्मानमपहत्य त्रिवृता तेजो ब्रह्मवर्च्चसं दधाति ।। ३।। तदाहुर्य्यत्त्रिवृद्भवत्येकस्मादेवाङ्गात् पाप्मानमपहन्ति मुखादेवेति ।। ४।। ज्योतिष्टोम एव कार्य्यः ।। ५।। यत्त्रिवृद्भवति यदेवास्य मुखतोऽपूतं तत्तेनापहन्ति यत् पञ्चदशो यदेवास्योरस्तो बाह्वोरपूतं तत्तेनापहन्ति यत् सप्तदशो यदेवास्य मध्यतोऽपूतं तत्तेनापहन्ति यदेकविंशो यदेवास्य पदोरष्ठीवतोरपूतं तत्तेनापहन्ति ।। ६।। वैश्वानरं वा एष प्रविशतीत्याहुर्य्योऽग्निष्टुता यजत इति वारवन्तीयमग्निष्टोमसाम कार्य्यं तस्य यदपूतं तदग्निः क्षापयत्यथेतरः शुचिः पूतउदेति ।। ७।।

षष्ठः खण्डः

त्रिवृदग्निष्टोमस्तस्य वायव्या स्वग्निष्टोमसाम ।।१।। ब्रह्मवर्च्चसकामो यजेत ।।२।। तेजो वै त्रिवृद् ब्रह्मवर्च्चसं यद्वायव्या स्वग्निष्टोमसाम भवत्युपैवैनं तद्धमति ।।३।। यथा हिरण्यं निष्टपेदेवमेनमग्निष्टुन्निष्टपति ।।४।।

सप्तमः खण्डः

एतस्यैव रेवतीषु वारवन्तीयमग्निष्टोमसाम कृत्वा पशुकामो यजेत ।।१।। जरत्कक्षो वा एष योऽपशुर्य्यथा वै जरत्कक्षे पशवो न रमन्त एवमेतस्मिन् पशवो न रमन्ते योऽपशुर्य्यदा वै जरत्कक्षमग्निर्द्दहत्यथैनमभिवर्षत्यथास्मिन्नोषधयो जायन्तेऽथ वै तस्मिन् पशवो रमन्ते ।।२।। रमन्तेऽस्मिन् पशवो य एवं वेद ।।३।। यदेवास्यापशव्यं तदग्निष्टुन्निर्दहति यदग्निष्टुन्निर्दहति तदद्भीरेवतीभिः शमयति ।।४।।

अष्टमः खण्डः

ज्योतिष्टोमेनाग्निष्टुता यज्ञ विभ्रष्टो यजेत ।।१।। यस्मिन् वा यज्ञक्रतौ विभ्रंशेत ।।२।। अग्निर्वा एतस्य हव्यमत्ति यो यज्ञे विभ्रंशते न देवता हव्यं गमयत्यग्निमेवैकधर्ध्नोति ।।३।। यद्वै संशीर्य्यतेऽथान्यन्निष्कुर्वन्ति न तेन तद्याति यदा वाव तन्निष्कुर्वन्त्यथ तद्याति येष्वेव स्तोमेषु विभ्रंशते यस्मिन् यज्ञक्रतौ तैरेव यजेत येश्वेव स्तोमेषु विभ्रंशते यस्मिन् यज्ञक्रतौ तेश्वेव प्रतितिष्ठति ।।४।।

नवमः खण्डः

सप्तदशेनाग्निष्टुतान्नाद्यकामो यजेत ।।१।। अन्नं वै सप्तदशोऽग्निरन्नाद्यस्य प्रदाताग्निरेवास्मा अन्नाद्यं प्रयच्छति ।।२।।

अन्नादो भवति य एवं वेद ।।३।। सर्वः सप्तदशो भवति प्रजापतिर्वै सप्तदशः प्रजापतिमेवाप्नोति ।।४।।

दशमः खण्डः

त्रिवृदग्निष्टोमस्तस्यानिरुक्तं प्रातःसवनम् ।।१।। प्रजापतिः प्रजा असृजत ता अस्मात्सृष्टा अपाक्रामन् स एतदनिरुक्तं प्रातः सवनमपश्यत्तेनासां मध्यं व्यवैत्ता एनमुपावर्त्तन्त पर्य्येनमाविशन् ।। २।। ग्रामकामो यजेत यदेतदनिरुक्तं प्रातःसवनं भवति मध्यमेवासां व्यवैत्युपैनमावर्त्तन्ते पर्य्येनं विशन्ति ।।३।। स एष प्रजापतेर–पूर्वोनास्मात् पूर्वो भवति य एवं वेद ।।४।।

एकादशः खण्डः

त्रिवृदग्निष्टोमः ।।१।। तस्य प्रातःसवने सन्नेषु नाराशꣳसेष्वेका–दशदक्षिणाव्यादिशत्यश्वद्वादशा माध्यन्दिने ता उभयोरपाकरोत्येकादश तृतीय सवने ता वशायामपाकरोति ।। २।। त्रयस्त्रिꣳशद्देवता दक्षिणा भवन्ति त्रयस्त्रिꣳशद्देवता देवता एवाप्नोत्यश्वश्चतुस्त्रिꣳशो दक्षिणानां प्रजापतिश्चतुस्त्रिꣳशो देवतानां प्रजापतिमेवाप्नोति ।।३।। स एष बृहस्पति सवो बृहस्पतिरकामयत देवानां पुरोधां गच्छेयमिति स एतेनायजत स देवानां पुरोधामगच्छत् ।।४।। गच्छति पुरोधां य एवं वेद ।।५।। स एष स्थपति सवो यꣳस्थापत्यायाभिषिञ्चेरन् स एतेन यजेत ।।६।। गच्छति स्थपत्यं य एवं वेद ।।७।। कृष्णा–जिनेऽध्यभिषिच्यत एतद् वै प्रत्यक्षं ब्रह्मवर्च्चसं ब्रह्मवर्च्चस एवाध्यभिषिच्यते ।।८।। आज्येनाभिषिच्यते तेज आज्यं तेज आत्मन्धत्ते ।।९।।

द्वादशः खण्डः

त्रिवृदग्निष्टोमः स सर्व्वस्वारो यः कामयेतानामयतामुं लोकमियामिति स एतेन यजेत ।।१।। प्राणो वै त्रिवृत्प्राणः स्वरः प्राणानेवास्य बहिर्णिरादधाति ताजक् प्रमीयते ।।२।। त्रिवृद् वै स्तोमानां क्षेपिष्ठो यत्त्रिवृद्धवत्याशीयः सङ्गच्छाता इत्यनन्तो वै स्वरोऽनन्तोऽसौ लोकोऽनन्तमेवैनꣳस्वर्गं लोकं गमयति ।।३।। अभिवत्यः प्रवत्यो भवन्त्यस्मादेवैनं लोकात् स्वर्गं लोकं गमयन्ति ।।४।। आर्भपवमाने स्तूयमान औदुम्बर्य्या दक्षिणा प्रावृतो निपद्यते तदेव सङ्गच्छते ।।५।। स एष शुनस्कर्णस्तोम एतेन वै शुन स्कर्णोबाष्किहोऽयजततस्माच्छुनस्कर्णस्तोम इत्याख्यायते ।।६।।

त्रयोदशः खण्डः

त्रिवृदग्निष्टोमो वैश्वदेवस्य लोकः ।।१।। आग्नेयी प्रतिपद् वैश्वदेवः पशुर्बार्हस्पत्यानूबन्ध्या ।।२।। न यूपं मिन्वन्ति नोत्तरवेदिं निवपन्ति ।।३।। परिधौ पशुं नियुञ्जन्ति ।।४।। पञ्चाशद्दक्षिणा ।।५।। अहतं वसानोऽवभृथादुदैति चतुरोमासो न माꣳसमश्नाति न स्त्रियमुपैति ।।६।। ततश्चतुर्षु मासेषु वरुणप्रघासानां लोके द्विदिवः ।।७।। वारुणी प्रतिपन्मारुतः पशुः ।।८।। कवती प्रतिपद्वारुणः पशुः ।।९।। मैत्रावरुण्यनूबन्ध्या मिन्वन्ति यूपं न्युत्तरवेदिं वपन्ति यूपे पशू नियुञ्जन्ति ।।१०।। शतं दक्षिणा अहतं वसानोऽवभृथादुदेति चतुरोमासो न माꣳसमश्नाति न स्त्रियमुपैति।।११।। ततश्चतुर्षु मासेषु साकमेधानां लोके त्रिरात्रः ।।१२।। अनीकवती प्रतिपदाग्नेयः पशुर्म्मारुती प्रतिपदैन्द्राग्नः पशुर्वैश्वकर्म्मणी प्रतिपदेकादशिनीपशवः सौर्य्यानूबन्ध्यामिन्वन्ति यूपं

न्युत्तरवेदिं वपन्ति यूपे पशू नियुञ्जन्ति पञ्चाशच्छतं दक्षिणा ।।१३।। अहतं वसानोऽवभृथादुदैति चतुरोमासो न माꣳसमश्नाति न स्त्रियमुपैति ।।१४।। ततश्चतुर्षु मासेषु शुनासीर्य्यस्य लोके ज्योतिष्टोमोऽग्निष्टोमः ।।१५।। उपवती प्रतिपद्वायव्यः पशुराश्वि- न्यनूबन्ध्या मिन्वन्ति यूपं न्युत्तरवेदिं वपन्ति यूपे पशुं नियुञ्जन्ति द्वादशशतं दक्षिणा ।।१६।। अग्निः संवत्सरः सूर्य्यः परिवत्सरश्चन्द्रमा इदावत्सरो वायुरनु वत्सरोऽग्निꣳसंवत्सरं वैश्वदेवेनाप्नोति सूर्य्यं परिवत्सरं वरुणप्रघासैश्चन्द्रमसमिदावत्सरꣳसाकमेधैर्वायुमनुवत्सरꣳ शुनासीर्य्येण ।।१७।। हविर्य्यज्ञैर्वै देवा इमं लोकमभ्यजयन्नन्तरिक्षं पशुमद्भिः सोमैरमुमिमानेवैतेन लोकानाप्नोत्येषु लोकेषु प्रतितिष्ठति य एवं वेद ।।१८।।

चतुर्दशः खण्डः

यदाग्निहोत्रं जुहोत्यथ दशगृहमेधिन आप्नोत्येकया रात्र्या, यदा दशसंवत्सरानग्निहोत्रं जुहोत्यथ दर्शपूर्णमासयाजिनमाप्नोति, यदा दश संवत्सरान् दर्शपूर्णमासाभ्यां यजतेऽथाग्निष्टोम- याजिनमाप्नोति, यदा दशभिरग्निष्टोमैर्य्यजतेऽथ सहस्रयाजिनमाप्नोति, यदा दशभिः सहस्रैर्य्यजतेऽथाऽयुतयाजिनमाप्नोति, यदा दशभिरयुतैर्य्यजतेऽथ प्रयुत याजिनमाप्नोति, यदा दशभिः प्रयुतैर्य्यजतेऽथनियुतयाजिनमाप्नोति, यदा दशभिर्न्नियुतैर्य्यजतेऽथा- र्बुदयाजिनमाप्नोति, यदा दशभिरर्बुदैर्य्यजतेऽथन्यर्बुद याजिनमाप्नोति, यदा दशभिर्न्यर्बुदैर्य्यजतेऽथ निखर्व्वकयाजिनमाप्नोति, यदा दशभिर्न्निखर्व्वकैर्य्यजतेऽथ बद्वयाजिनमाप्नोति, यदा दशभिर्बद्वै- र्य्यजतेऽथाक्षितयाजिनमाप्नोति, यदा दशभिरक्षितैर्य्यजतेऽथ गौर्भवति,

यदा गौर्भवत्यथाग्निर्भवति यदाग्निर्भवत्यथ संवत्सरस्य गृहपतिमाप्नोति ।।१।। यदा संवत्सरस्य गृहपतिर्भवत्यथ वैश्वदेवस्य मात्रामाप्नोत्यतो वा इतरे परस्तरां परस्तरामेव सर्वे ।।२।। एतानेव लोकानाप्नोत्येतान् लोकाञ्जयति य एवं वेद ।।३।।

।।इति सप्तदशोऽध्यायः।।



अष्टादशोऽध्यायः

प्रथमः खण्ड

सप्तदशोऽग्निष्टोमः।। १।। देवाश्च वा असुराश्च प्रजापतेर्याः पुत्रा आसꣳस्तेऽसुराभूयाꣳसो बलीयाꣳस आसन् कनीयाꣳसो देवास्ते देवाः प्रजापतिमुपाधावन् स एतमुपहव्यमपशत् ।। २।। स ऐक्षत यन्निरुक्तमाहरिष्याम्यसुरामे यज्ञꣳहनिष्यन्तीति सोऽनिरुक्त-माहरत् ।। ३।। स उत्तमे स्तोत्रे 'देवो वो द्रविणोदा' इति देवानभिपर्य्यावर्त्तत ।। ४।। ततो देवा अभवन् परासुराः ।। ५।। भवत्यात्मना पराऽस्य भ्रातृव्यो भवति य एवं वेद ।। ६।। अथो खल्वाहुः 'यज्ञायज्ञा वो अग्नय' इत्येव कार्य्यम् ।। ७।। अग्निर्वै सर्वा देवतास्तेन न देवतानां काञ्चनान्तरेति ।। ८।। इन्द्रो यतीन् सालावृकेभ्यः प्रायच्छत्तमश्लीला वागभ्यवदत् स प्रजापति-मुपाधावत्तस्मा एतमुपहव्यं प्रायच्छत्तं विश्वे देवा उपाह्वयन्त यदुपाह्वयन्त तस्मादुप हव्यः ।। ९।। अभिशस्यमानं याजयेत् ।।१०।। देवता वा एतं परिवृजन्ति यमनृतमभिशꣳसन्ति देवता एवास्यान्नमा-दयन्ति ।।११।। तस्य पूतस्य स्वदितस्यमनुष्या अन्नमदन्ति ।।१२।। ग्रामकामो यजेत।।१३।। मारुती भवति मरुतो वै देवानां विशो विशमेवास्मा अनुनियुक्त्यनपक्रामुकास्माद्विड्भवति ।।१४।। पशुकामो यजेत पौषी भवति ।।१५।। पशवो वै पूषा पशूनेवावरुन्धे ।।१६।। वैश्वदेवी भवति विश्वे ह्येनं देवा उपाह्वयन्त ।।१७।। बृहत्सामा भवति ।।१८।। प्रजापतिर्ह्येनमिन्द्राय प्रायच्छत् ।।१९।। अश्वः श्यावो दक्षिणा ।।२०।। स ह्यनिरुक्तः ।।२१।। स ब्रह्मणे देयः ।।२२।।

ब्रह्मा वा ऋत्विजामनिरुक्त: स्वेनैवैनं तद्रुपेण समर्द्धयति ।। २३।। यावद्ध वै कुमारे सद्योजात एनो नास्मिंश्स्तावच्च नैनो भवति य एवं वेद ।। २४।।

द्वितीय: खण्ड:

सप्तदशोऽग्निष्टोम: ।।१।। तस्य द्वादश दीक्षोपसद: ।। २।। स्वर्ग कामो यजेत ।। ३।। द्वादशमासा: संवत्सर: संवत्सर: स्वर्गोलोक: स्वर्गमेवैतेन लोकमाप्नोति ।। ४।। घृतव्रतो भवति ।। ५।। देवव्रतं वै घृतं देवव्रतेनैव देवता अप्येति ।। ६।। उत्तरेणोत्तरेण काण्डेनोपैत्युत्तर उत्तर एषां लोकानां ज्यायान् स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै ।। ७।। बृहत् सामा भवति बृहता वै देवा: स्वर्गं लोकमायन् स्वर्गमेवैतेन लोकमाप्नोति ।। ८।। ऋतमुक्त्वा प्रसर्पन्त्यृतेनैवैनंश् स्वर्गं लोकं गमयन्ति ।। ९।। सोमचमसो दक्षिणा देवतयैव देवता अप्येति ।। १०।। औदुम्बरो भवत्यूर्गुदुम्बर ऊर्ज्जमेवावरुन्धे ।। ११।। सगोत्राय ब्रह्मणे देय: सोमपीथस्याविदोहाय ।। १२।। सर्व: सप्तदशो भवति ।। १३।। द्वादशमासा: पञ्चर्त्तव: स वै संवत्सर: संवत्सर: स्वर्गोलोक: स्वर्गमेवैतेन लोकमाप्नोति ।। १४।।

तृतीय: खण्ड:

सप्तदशोऽग्निष्टोम: ।।१।। तस्य दीक्षणीयायामिष्टौ द्वादश–मानश्हिरण्यं ददाति चतुर्विंश्शतिमानं प्रायणीयायां द्वे चतुर्विंश्शतिमाने आतिथ्यायां चत्वारि चतुर्विंश्शतिमानानि प्रात: प्रथमायामुपसद्यष्टौ चतुर्विंश्शतिमानान्यपराह्णे प्रथमायामुपसदि षोडशचतुर्विंश्शतिमानानि प्रातर्म्मध्यमायामुपसदि द्वात्रिंश्शतं चतुर्विंश्शतिमानान्यपराह्णे मध्यमायामुपसदि चतु:षष्टिं चतुर्विंश्शतिमानानि प्रातरुत्तमाया–

मुपसद्यष्टाविंश्शति शतं चतुर्विंश्शतिमानान्यपराह्ण उत्तमायामुपसदि द्वे अष्टाविंश्शतिशतमाने अग्नीषोमीयस्य पशोर्वपायाम् चत्वार्य्यष्टाविंश्शतिशतमानानि प्रातः पशोर्वपायामष्टावष्टा–विंश्शतिशतमानानि प्रातः सवने सन्नेषु नाराशंश्सेषु षोडशाष्टाविंश्शतिशतमानानि माध्यन्दिने सवनेऽनडुच्छतञ्च रुक्मी होतुः स्रगुद्गातुर्द्वात्रिंश्शतमष्टाविंश्शतिशतमानानि तृतीयसवनेषु सन्नेषु नाराशंश्सेषु चतुःषष्टिमष्टाविंश्शतिंशतमानान्युदयनीयायामिष्टौष्टा–विंश्शतिशतमष्टाविंश्शतिशतमानानि वशायां वपायाम् ।। २।। एष वा अनडुहो लोकमाप्नोति य एवं वेद ।। ३।। एष वै ज्योतिष्मन्तं पुण्यं लोकं जयति य एवं विद्वानेतेन यजते ।। ४।।

चतुर्थः खण्डः

सप्तदशोऽग्निष्टोमः ।।१।। तस्य प्रातःसवनीयान् सोमान् प्रतिदुहा श्रीणाति शृतेन मध्यन्दिने दध्ना तृतीयसवने ।। २।। पशुकामो यजेत ।। ३।। यत् सर्वाणि सवनान्याशीर्व्वन्ति भवन्त्यनुसवनमेवैनं पशुभिः समर्द्धयति प्रजात्वस्य मीलितेव भवति शुक्रिये हि सवने पयसा श्रीणाति ।।४।। वैश्यं याजयेत् ।।५।। एतद्वै वैश्यस्य समृद्धं यत्पशवः पशुभिरेवैनंश्समर्द्धयति ।। ६।। तस्य कण्वरथन्तरं पृष्ठम् ।। ७।। सदोविशीयं ब्रह्मसाम ।। ८।। पशवो वै कण्वरथन्तरं पशवः सदोविशीयमभि पूर्वनिवास्मिन् पशून् दधाति ।। ९।। सर्वः सप्तदशो भवति ।।१०।। द्वादशमासाः पञ्चर्त्तवः स वै संवत्सरः संवत्सरं पशवोऽनुप्रजायन्ते तानेवाप्त्वा वरुन्धे ।।११।।

पञ्चमः खण्डः

सप्तदश उक्थ्यः ।।१।। इन्द्रो वृत्रमहन् स विष्वङ्वीर्येण व्यार्च्छत्तस्मै देवाः प्रायश्चितिमैच्छंश्स्तं न किञ्चनाधिनोत्तं तीव्रसोम

एवाधिनोत् ।।२।। सोमातिपवितं याजयेत्।। ३।। छिद्रइव वा एष यश्सोमोऽतिपवते यत्तीव्रसोमेन यजते पिहित्या एवाच्छिद्रतायै ।।४।। राजानमपरुद्धं याजयेत् ।।५।। विडवा एतमतिपवते यो राजा– वरुध्यते यत्तीव्रसोमेन यजते पिहित्या एवाच्छिद्रतायै ।।६।। ग्रामकामो यजेत् ।।७।। ग्रामो वा एतमति पवते योऽलं ग्रामाय सन् ग्रामं न विन्दते यत्तीव्रसोमेन यजते पिहित्या एवाच्छिद्रतायै ।।८।। प्रजाकामो यजेत प्रजा वा एतमतिपवते योऽलं प्रजायाः सन् प्रजां न विन्दते यत्तीव्रसोमेन यजते पिहित्या एवाच्छिद्रतायै ।।९।। पशुकामो यजेत पशवो वा एतमतिपवन्ते योऽलं पशुभ्यः सन् पशूं न विन्दते यत्तीव्रसोमेन यजते पिहित्या एवाच्छिद्रतायै ।।१०।। आमयाविनं याजयेत् प्राणा वा एत मतिपवन्ते य आमयावी यत्तीव्रसोमेन यजते पिहित्या एवाच्छिद्रतायै ।।११।। शतमाशिरं दुहन्ति तीव्रयन्त्येवैनम् ।।१२।। तत्ता उ एव दक्षिणाः ।।१३।। अभ्यभिसोमानुन्नयन्ति तीव्रएनं धिनवदित्युभावध्वर्य्यू सर्वे चमसाध्वर्य्यवोऽच्छावाकाय प्रतिगृणन्ति तीव्रयन्त्येवैनम् ।।१४।। तदभक्षयन्त ऋत्विजश्चमसानवजिघ्रति तीव्रयन्त्येवैनं तत्तानच्छावाकस्यस्तोत्रे भक्षन्ति तीव्रयन्त्येवैनम् ।।१५।। तद्यत् सवनानि व्यवभक्षयेयुरपक्रामुका यजमानाच्छ्रीः स्यात् सकृत्सकृत्सवनानामन्ततो भक्षयन्ति सवनानामसंभेदाय ।।१६।। रथन्तरं साम भवति ।।१७।। इयं वै रथन्तरमस्यां वा एष न प्रतितिष्ठति यो न प्रतितिष्ठत्यस्यामेवैनं प्रतिष्ठापयति ।।१८।। श्रायन्तीयं ब्रह्मसाम भवत्येतदेवास्मिञ्छ्रीणाति ।।१९।। यज्ञायज्ञीयमनुष्टुभि भवति।। २०।। वागनुष्टुप् वाचोरसो यज्ञायज्ञीयं वाच्येवास्यरसं दधाति ।।२१।।

विशोविशीयमग्निष्टोमसाम भवत्येतदेवास्मिन् सर्वं प्रतिष्ठापयति ।। २२।। उद्वंशीयमुक्थानामन्ततो भवति सर्वेषां वा एतत्पृष्ठानांरूपंसर्वेष्वेवरूपेषु प्रतितिष्ठति ।। २३।। उक्थ्यो भवति पशवो वा उक्थानि पशुष्वेव प्रतितिष्ठति ।। २४।।

षष्ठः खण्डः

सप्तदश उक्थ्य षोडशिमान् सप्तदशी ।।१।। यावान्वै प्रजापति रूर्ध्वस्तावांस्तिर्य्यक् ।।२।। यावन्त इमे लोका ऊर्ध्वास्तावन्त स्तीर्य्यञ्चः ।। ३।। वाजपेययाजी वाव प्रजापतिमाप्नोति ।।४।। यत् सप्तदशस्तोत्राणि तेनोर्ध्वमाप्नोति यत्सर्वः सप्तदशस्तेन तिर्य्यञ्चम् ।।५।। तस्य नानावीर्य्याणि सवनानि ।।६।। अनिरुक्तं प्रातःसवनं वाजवन् माध्यन्दिनंसवनं चित्रवत् तृतीयसवनम् ।।७।। यदनिरुक्तं प्रातःसवनं भवत्यनिरुक्तो वै प्रजापतिः प्रजापतिमेवाप्नोति यद्वाजवन् माध्यन्दिनंसवनमन्नं वै वाजोऽन्नाद्यस्यावरुध्यै यच्चित्रवत् तृतीयसवनंस्वर्गस्य लोकस्यसमष्ट्यै ।।८।। वियोनिर्वाजपेयइत्याहुः प्राजापत्यस्स निरुक्त सामेति यदनिरुक्तं प्रातःसवनं तेन सयोनिः ।। ९।। रथन्तरंसाम भवत्याशीय उज्झित्यै ।।१०।। इयं वै रथन्तरमस्यामेवाध्यभिषिच्यते ।।११।। तस्माद्वाजपेययाज्य—प्रत्यवरोही ।।१२।। अस्यांहि सोऽध्यभिषिच्यते ।।१३।। अभीवर्त्तो ब्रह्मसाम भवति ब्रह्मणो वा एष ऋषभ ऋषभतामेवैनं गमयति ।।१४।। यज्ञायज्ञीयमनुष्टुभि भवति वागनुष्टुब् वाचोरसो यज्ञायज्ञीयं वाच्येवास्य रसं दधाति ।।१५।। वारवन्तीयमग्निष्टोमसाम भवतीन्द्रियस्य वीर्य्यस्य परिगृहीत्यै ।।१६।। उद्वंशीयमुक्थानामन्ततो भवति सर्वेषां वा एतत् पृष्ठानांरूपंसर्वेष्वेव रूपेषु प्रतितिष्ठति ।।१७।। गौरीवितंषोडशिसाम भवति ।।१८।।

अतिरिक्तं गौरीवितमतिरिक्तः षोडश्यतिरिक्तएवातिरिक्तं दधाति ।।१९।। तदाहुर्ज्जामि वा एतद्यज्ञे क्रियते यदुद्वंशीयाद्गौरीवितेनस्तुवते स्वारात् स्वारेणेति ।।२०।। न जाम्यस्ति सवनंसन्तिष्ठते ।।२१।। उक्थंशस्यते वषट्कारोऽन्तरा तेनाजामि ।।२२।। अपच्छिदिव वा एतद्यज्ञकाण्डं यत् षोडशी तेनाजामि ।।२३।। यज्ञारण्ये सन्तिष्ठत इत्याहुरत्युक्थान्येत्यति षोडशिनं न रात्रिं प्राप्नोतीति ।।२४।। विष्णोः शिपिविष्टवतीषु बृहदुत्तमं भवति ।।२५।। एषा वै प्रजापतेः पशुष्ठा तनूर्य्यच्छिपिविष्टः प्राणो बृहत् प्राणएव पशुषु प्रतितिष्ठति ।।२६।। बृहत्तां स्तुवन्ति बृहदमुं लोकमाप्तुमर्हति तमेवाप्नोति ।।२७।।

सप्तमः खण्डः

प्रजापतिरकामयत वाजमाप्नुयांस्वर्गं लोकमिति स एतं वाजपेयमपश्यद्वाजपेयो वा एष वाजमेवैतेन स्वर्गं लोकमाप्नोति ।।१।। शुक्रवत्यो ज्योतिष्मत्यः प्रातःसवने भवन्ति तेजो ब्रह्मवर्च्चसं ताभिरवरुन्धे ।।२।। वाजवत्यो मध्यन्दिने भवन्ति स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै ।।३।। अन्नवत्यो गणवत्यः पशुमत्यस्तृतीयसवने भवन्ति भूमानं ताभिरवरुन्धे ।।४।। सर्वः सप्तदशो भवति प्रजापतिर्वै सप्तदशः प्रजाप्रतिमेवाप्नोति ।।५।। हिरण्यस्रज ऋत्विजो भवन्ति महसएव तद्रूपं क्रियते ।।६।। एष मेऽमुष्मिन् लोके प्रकाशोऽसदिति ।।७।। ज्योतिर्वै हिरण्यं ज्योतिरेवास्मिन्दधाति ।।८।। आजिं धावन्ति यजमानमुज्जापयन्ति स्वर्गमेवैनं तल्लोकमुज्जापयन्ति ।।९।। नाकंरोहति स्वर्गमेव तल्लोकंरोहति ।।१०।। सरजसे रोहति मनुष्यलोकादेवै-नमन्तर्द्दधति ।।११।।

वाजिनाꣳसाम ब्रह्मा रथचक्रेऽभिगायति वाजो वै स्वर्गोलोकः स्वर्गमेवैनं तल्लोकमुज्जापयति ।।१२।। विष्णोः शिपिविष्टवतीषु बृहदुत्तमं भवति स्वर्गमेव तल्लोकꣳरूढ्वा ब्रध्नस्य विष्टपमभ्यति क्रामति ।।१३।।

अष्टमः खण्डः

अग्निष्टोमं प्रथममाहरति यज्ञमुखं वा अग्निष्टोमो यज्ञमुखमेवारभ्य सर्वमाक्रमते ।।१।। अथैषोऽभिषेचनीयः ।।२।। तस्य द्वात्रिꣳशाः पवमाना द्वित्रिꣳशदक्षरारनुष्टुब्वागनुष्टुब्यावती वाक् तयैव सूयते ।।३।। तदाहुः सꣳशर इव वा एष छन्दसां यद्विषमास्तोमा अयथापूर्वमिति ।।४।। यत्समाः पवमानास्तेनासꣳशरस्तेन यथापूर्वम् ।।५।। आत्मना वा अग्निष्टोमेनर्ध्नोत्यात्मना पुण्यो भवत्यथ यदुक्थानि पशवो वा उक्थानि विडुक्थानि यदुक्थानि भवन्त्यनुसन्तत्या एव ।।६।। 'वायो शुक्रो अयामित' इति वायव्या प्रतिपद्भवति वाग्वै वायुर्वाचमेवास्य यज्ञमुखे युनक्ति तयाभिषिच्यते सर्वस्या एव वाचः सूयते सर्वा एनं वाचो राजेति वदन्ति ।।७।। सम्भार्य्या भवन्ति पृष्ठान्येव ताभिर्य्युनक्ति यन्नानादेवत्यास्तेन युनक्ति वीर्य्यं वै पृष्ठानि वीर्य्य एवाध्यभिषिच्यते ।।८।। यन्ति वा एते यज्ञमुखादित्याहुर्य्ये सम्भार्य्याः कुर्वत इति ।।९।। यत् 'पवस्व वाचो अग्रिय' इति तेन यज्ञमुखान्नयन्ति ।।१०।। 'दविद्युतत्या रुचे'ति छन्दसाꣳरूपं छन्दाꣳस्येवास्य यज्ञमुखे युनक्ति तैरभिषिच्यते ।।११।। 'एत मु त्यं दश क्षिप' इत्यादित्या आदित्या वा इमाः प्रजास्तासामेव मध्यतः सूयते ।।१२।। 'पवस्वेन्दो वृषा सुत' इति वृषणवत्यो भवन्ति त्रिष्टुभो रूपं वीर्य्यं वै त्रिष्टुप् वीर्य्य एवाध्यभिषिच्यते ।।१३।।

'उत्ते शुष्मास ईरत' इत्युद्वत्यो भवन्त्युद्वद्वा अनुष्टुभो रूपमानुष्टुभो राजन्यस्तस्मादुद्वत्यो भवन्ति ।।१४।। 'पवमानस्य ते कव' इति प्राणानां क्लृप्त्यै ।।१५।। 'अध क्षपा परिष्कृत' इत्यनुष्टुप् प्रथमाऽनुष्टुबुत्तमा वाग्वा अनुष्टुप् वाचैव प्रयन्ति वाचमभ्युद्यन्ति ।।१६।। छिन्नमिव वा एतद्यदेकर्च्चा यदेतावानुष्टुभौ तृचावभितो भवतो बहवः पुरएतारो भवन्ति बहवः पश्चापिनः ।।१७।। सौर्य्यानुष्टुबुत्तमा भवति स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै ।।१८।।

नवमः खण्डः

वरुणस्य वै सुषुवाणस्य भर्गोऽपाक्रामत्स त्रेधापतद्—भृगुस्तृतीयमभवच्छ्रायन्तीयं तृतीयमपस्तृतीयं प्राविशत् ।।१।। यद्भार्गवोहोता भवति तेनैव तदिन्द्रियं वीर्य्यमाप्त्वावरुन्धे यत् श्रायन्तीयं ब्रह्मसाम भवति तेनैव तदिन्द्रियं वीर्य्यमाप्त्वावरुन्धे यत् पुष्करस्रजं प्रतिमुञ्चते तेनैव तदिन्द्रियं वीर्य्यमाप्त्वावरुन्धे ।। २।। दशमी भवति ।। ३।। दशचमसा दशचमसाध्वर्य्यवो दश दश चमसमभयन्त्यादशमात् पुरुषदन्वाख्याय प्रसर्पन्ति दशसमृद्धो ह्येष यज्ञ एनं वाव ते तद्यज्ञमन्वैच्छन्य एतेन यजत एतदेवेन्द्रियं वीर्य्यमाप्त्वास्मिन् दधाति।। ४।। सर्वः सप्तदशो भवति द्वादशमासाः पञ्चर्त्तवः स वै संवत्सरः संवत्सरादेवेन्द्रियं वीर्य्यमाप्त्वावरुन्धे ।। ५।। इन्द्रो वृत्रमहं स्तस्येयं चित्राण्युपैद्रूपाण्यसौ नक्षत्राणामवकाशेन पुण्डरीकं जायते यत् पुष्करस्रजं प्रतिमुञ्चते वृत्रस्यैव तद्रूपं क्षत्रं प्रतिमुञ्चते ।। ६।। द्वादशपुष्करा भवति द्वादशमासाः संवत्सरः संवत्सरेऽन्तर्भूतञ्च भव्यञ्च भूतेन चैवैनं भव्येन च समर्द्धयति ।। ७।। स्रगुद्गातुस्सौर्य्य उद्गाता न वै तस्मै व्यौच्छदथो व्येवास्मै वासयति ।। ८।।

रुक्मोहोतुराग्नेयो होताथो अमुमेवास्मा आदित्यमुन्नयति ।। ९।। प्राकाशा वध्ध्वर्य्योर्य्यमाविव ह्यध्वर्य्यू अथो चक्षुषी एवास्मिन् दधाति ।।१०।। अश्वः प्रस्तोतुः प्राजापत्योऽश्वः प्राजापत्यः प्रस्तोताथो प्रेव ह्यश्वः प्रोथति प्रेव प्रस्तोता स्तौति ।।११।। धेनुः प्रतिहर्त्तुः पय एवास्मिन् दधाति ।।१२।। वशा मैत्रावरुणस्य वशं मा नयादिति ।।१३।। ऋषभो ब्राह्मणाच्छंसिनो वीर्य्यं वा ऋषभो वीर्य्यमेवास्मिन् दधाति ।।१४।। वासः पोतुः पवित्रत्वाय ।।१५।। वरासी नेष्टुरनुलम्बेवह्येषा होत्रा ।।१६।। स्थूरियवाचितमच्छावाकस्य स्थूरिरिवह्येषा होत्राथो निर्व्वरुणत्वायैव यवा न वै तर्हि सदस्यां दक्षिणा अभ्यभवन्नथो अस्य त एव तेनाभीष्टाः प्रीता भवन्ति ।।१७।। अनड्वानग्नीधो युक्त्यै ।।१८।। अजः सुब्रह्मण्यायै ।।१९।। वत्सतर्य्युन्नेतुः साण्डः स्त्रिवत्सो ग्रावस्तुतो मिथुनत्वाय ।।२०।। द्वादशपष्ठौह्यो गर्भिण्यो ब्रह्मणो द्वादशमासाः संवत्सरः संवत्सर एव प्रतितिष्ठत्यथ यद्गर्भिण्यो वाग्वै धेनुर्म्मन्त्रो गर्भो वाच्ये वास्य मन्त्रं दधात्यामन्त्रणीयो भवत्यथ यद्धेनुभव्या द्वादश पयांसि तान्येवास्मिन् दधाति तस्मादाहुः पयस्वी राजा पुण्य इति ।।२१।।

दशमः खण्डः

यो वै सवादेति नैनंसव उपनमत्यथ यः सामभ्य एति पापीयान् सुषुवाणो भवति ।।१।। सम्भार्य्या भवन्ति पृष्ठान्येव ताभिर्य्युनक्ति ।।२।। एतानि वाव सामानि यत् पृष्ठानि ।।३।। यत् संभार्य्या भवन्ति तदेव सामभ्यो नैति ।।४।। यानि देवराज्ञां–सामानि तैरमुष्मिन् लोक ऋद्ध्नोति यानि मनुष्यराज्ञां तैरस्मिन्नुभयोरनयोर्ल्लोकयोर्ऋद्ध्नोति देवलोके च मनुष्यलोके च ।।५।।

साम त्रिष्टुभ्यध्यभिषिच्यते वीर्य्यं वै सामत्रिष्टुप् वीर्य्य एवाध्यभिषिच्यते।। ६।। एकादश राजसामानि भवन्त्येकादशाक्षरा त्रिष्टुबोजोवीर्य्यं त्रिष्टुबोजस्येव वीर्य्येऽध्यभिषिच्यते ।।७।। यत् त्रिवृतमभिषेचनीये कुर्युर्ब्रह्मक्षत्रायापि दध्युर्य्यत्त्रिवृतमुद्धरन्ति ब्रह्म तत् क्षत्रादुद्धरन्ति तस्माद्धरतां प्रतिदण्डा ब्राह्मणा न हि तं त्रिवृतमभिषेचनीये कुर्वन्ति ।।८।। एकविंशशोऽभिषेचनीयस्योत्तमः सप्तदशो दशपेय एकविंशः केशवपनीयस्य प्रथमःक्षत्रं वा एकविंशो विट् सप्तदशः क्षत्रेणैवास्मै विशमुभयतः परिगृह्णात्यनपक्रामुकास्माद्विट् भवति ।। ९।। यद्वै राजसूयेनाभिषिच्यते तत् स्वर्गं लोकमारोहति स यदिमं लोकं नोपावरोहेदति जनं वा गच्छेदुद्वामाद्येद्यदेषोऽर्वाचीनस्तोमः केशवपनीयो भवत्यस्य लोकस्यानुद्वानाय यथा शाखायाः शाखामालम्भ-मुपावरोहेदेवमेतेनेमं लोकमुपावरोहति प्रतिष्ठायै ।।१०।।

एकादशः खण्डः

इन्द्रोवृत्रमहन् स विष्यङ्वीर्य्येण व्यभ्रंशत स एतच्छ्रायन्तीय-मपश्यत्तेनात्मानंसमश्रीणादिन्द्रियेण वा एष वीर्य्येण व्यृध्यते यो राजसूयेनाभिषिच्यते वृत्रंहि हन्ति यच्छ्रायन्तीयं ब्रह्मसाम भवति पुनरेवात्मानंसंश्रीणाति ।।१।। यज्ञायज्ञीयमनुष्टुभि भवति वाचा वा एष व्यृध्यते यो राजसूयेनाभिषिच्यते वृत्रंहि हन्ति वागनुष्टुब्वाचो रसो यज्ञायज्ञीयं वाच्येवास्य रसं दधाति ।।२।। वारवन्तीय-मग्निष्टोमसाम भवतीन्द्रियेण वा एष वीर्य्येण व्यृध्यते यो राजसूयेनाभिषिच्यते वृत्रंहि हन्ति यद्वारवन्तीयमग्निष्टोमसाम भवतीन्द्रियस्य वीर्य्यस्य परिगृहीत्यै ।। ३।।

अश्रयन्वाव श्रायन्तीयेनावारयन्त वारवन्तीयेनेन्द्रियस्य वा एषा वीर्य्यस्य परिगृहीतिः ।।४।। अप्रतिष्ठितो वा एष यो राजसूयेनाभिषिच्यते यदा वा एतेन द्विरात्रेण यजतेऽथैव प्रतिष्ठा ।।५।। यावन्ति संवत्सरस्याहोरात्राणि तावत्य एताः स्तोत्रीयाः संवत्सर एव प्रतितिष्ठति ।।६।। अग्निष्टोमः पूर्वमहरतिरात्र उत्तरं नानैवाहोरात्रयोः प्रतितिष्ठति ।।७।। अमावास्यायां पूर्व्वमहरुदृष्ट उत्तरं नानैवार्द्धमासयोः प्रतितिष्ठति पौर्णमास्यां पूर्व्वम–हर्व्यष्टकायामुत्तरं नानैवमासोः प्रतितिष्ठति तदाहुर्य्ये एव समानपक्षे पुण्याहनी स्यातां तयोरेव कार्य्यंऽसमृद्ध्यै ।।८।। अपशव्यो द्विरात्र इत्याहुर्द्वे ह्येते छन्दसी गायत्रञ्च त्रैष्टुभञ्च जगतीमन्तर्य्यन्तीति न तेन जगती कृता यत्तृतीयसवने क्रियते ।।९।। यदा वा एषा हीनस्याहर्भजते साह्नस्य वा सवनमथैव जगती कृता त्रैशोकमुत्तर स्याह्नो ब्रह्मसाम भवति वैखानसमच्छावाकसाम यच्छुक्रिये सवने क्रियेते तेनैव जगती कृता तेन पशव्यः ।।१०।। व्युष्टिर्वा एष द्विरात्रोव्येवास्मै वासयति ।।११।।

।।इति अष्टादशोऽध्यायः।।



एकोनविंशोऽध्यायः

प्रथमः खण्डः

अथैष राट् ।।१।। यो राज्य आशङ्समानो राज्यं न प्राप्नुयात् स एतेन यजेत राजैवैनङ्राजानं करोति तं तु वैराजेति वदेयुर्य्यङ्—राजा राजानङ्कुर्य्याद्राजैवैनङ्राजानं करोति ।।२।। छन्दोऽन्ये यज्ञाः सम्पद्यन्ते स्तोममेषवीर्य्यं वै स्तोमोवीर्य्य एवाध्यभिषिच्यते ।।३।। अष्टावेकविङ्शाः सङ्स्तुतो भवत्यष्टौ वै वीराराष्ट्रङ्समुद्यच्छन्ति राजभ्राता च राजपुत्रश्च पुरोहितश्च महिषी च सूतश्च ग्रामणी च क्षत्ता च संग्रहीता चैते वै वीरा राष्ट्रङ्समुद्यच्छन्त्येतेष्वे—वाध्यभिषिच्यते ।।४।। क्षत्रं वा एकविङ्शः प्रतिष्ठा क्षत्रस्येवास्य प्रकाशो भवति प्रतितिष्ठति य एवं वेद ।।५।।

द्वितीयः खण्डः

अथैष विराडन्नाद्यकामो यजेत ।।१।। परोक्षमन्ये यज्ञा विराजङ्—सम्पद्यन्ते प्रत्यक्षमेष विराजङ् सम्पन्नः ।।२।। प्रत्यक्षमेतेनान्नाद्यमव—रुन्धेऽन्नादो भवति य एवं वेद ।।३।। सर्व्वो दशदशी भवति दशाक्षरा विराड्वैराजमन्नमन्नाद्यस्यावरुध्यै ।।४।। ता उ पञ्च पञ्च भवन्ति पाङ्क्तो यज्ञः पाङ्क्ताः पशवो यज्ञएव पशुषु प्रतितिष्ठति ।।५।। एतेनैव प्रतिष्ठाकामो यजेत दशभिर्वा इदं पुरुषः प्रतिष्ठितोऽस्यामेव प्रतितिष्ठति ।।६।।

तृतीयः खण्डः

अथैष औपशदः ।।१।। गन्धर्वाप्सरसाङ्स्तोमः प्रजाकामो यजेत गन्धर्वाप्सरसो वै मनुष्यस्य प्रजाया वा प्रजस्ताया वेशते तेषामत्र

सोमपीथस्तान् स्वेन भागधेयेन प्रीणाति तेऽस्मै तृप्ताः प्रीताः प्रजां प्रयच्छन्ति ।।२।। एकैका स्तोत्रीयोपजायते प्रजामेवास्मा उप जनयति ।।३।। ककुभं प्राचीमुदूहति पुरुषो वै ककुब्गार्भ एव स मध्यतो धीयते ।।४।। अथ यदेषा द्विपदा ककुभो लोके क्रियते गर्भमेव तद्धितं प्रजनयति ।।५।। च्यावनं भवति प्रजातिर्वै च्यावनम् ।।६।। प्रजायते बहुर्भवति य एवं वेद ।।७।। वसिष्ठस्य जनित्रे भवती वसिष्ठो वा एते पुत्रहतः सामनी अपश्यत् स प्रजया पशुभिः प्राजायत यदेते सामनी भवतः प्रजान्त्यै ।।८।। द्वे सꣳस्तुतानां विराजमतिरिच्येते द्वे स्त्रिया ऊने प्रजननाय प्रजननमेव तत्क्रियते प्रजात्यै ।।९।।

चतुर्थः खण्डः

अथैष पुनस्तोमः ।।१।। यो बहु प्रतिगृह्य गरगीरिव मन्येत स एतेन यजेत ।।२।। यैकादशी यदेव पूर्ववयसे बहु प्रतिगृह्णाति यद्गरं गिरति यदनन्नमत्ति प्रातःसवनाय तन्निहरति ।।३।। अथ या द्वादशी यदेवोत्तरवयसे बहु प्रतिगृह्णाति यद्गरं गिरति यदनन्नमत्ति तृतीयसवनाय तन्निहरति ।।४।। वैराजो वै पुरुषः स मध्यतोऽशुद्धो मध्यत एवैनं पाप्मनो मुञ्चति ।।५।। शुद्धाशुद्धीये भवतः ।।६।। इन्द्रो यतीन् सालावृकेयेभ्यः प्रायच्छत्तमश्लीला वागभ्यवदत्सोऽ–शुद्धोऽमन्यत स एते शुद्धाशुद्धीये अपश्यत्ताभ्यामशुध्यत् ।।७।। यदेव बहु प्रतिगृह्णाति यदनन्नमत्ति यदशुद्धो मन्यते तदेताभ्याꣳ शुध्यति ।।८।। गौषूक्तञ्चाश्वसूक्तञ्च भवतः ।।९।। गौषूक्तिश्चाश्वसूक्तिश्च बहु प्रतिगृह्य गरगिरावमन्येतां तावेते सामनी अपश्यतां ताभ्यां गरं निरघ्नातां यदेव बहु प्रतिगृह्णाति यद्गरं गिरति यदनन्नमत्ति तदेताभ्यां निर्हते ।।१०।।

पञ्चदश स्तोत्राणि भवन्त्योजो वीर्य्यं पञ्चदशः पाप्मन एवैनं मुक्त्वौजसा वीर्य्येण समर्द्धयति ।।११।।

पञ्चमः खण्डः

अथैष चतुष्टोमः ।।१।। पशुकामो यजेत ।। २।। यच्चतसृभि–र्बहिष्पवमानं भवति चतुष्पादाः पशवः पशूनेवा वरुन्धे ।। ३।। यदष्टाभिराज्यान्यष्टाशफाः पशवः शफाशस्तत् पशूनाप्नोति ।।४।। यत् द्वादशो माध्यन्दिनः पवमानो द्वादशमासाः संवत्सरः संवत्सरं पशवोऽनु प्रजायन्ते तानेवावरुन्धे ।।५।। यत् षोडशानि पृष्ठानि षोडश कलाः पशवः कलाश–स्तत्पशूनाप्नोति ।।६।। यद्विंश्श आर्भवः पाङ्क्तत्वमेषां तदाप्नोति ।।७।। यच्चतुर्विंश्शोऽग्निष्टोमश्चतुर्विंश्शत्यक्षरा गायत्री तेजो ब्रह्मवर्च्चसं गायत्री तेजएव ब्रह्मवर्च्चसमवरुन्धै ।।८।। प्राणो गायत्री प्रजननं प्राणादेव गायत्र्याः प्रजायते ।।९।। एकंसाम बहूनि छन्दांसि तस्मादेको बहून् पोषान् पुष्यति ।।१०।। आत्मा वा अग्निष्टोमः पशवश्छन्दांस्यात्मन्येव तत्पशून् प्रतिष्ठापयति नोक्थोनाग्निष्टोमो न हि ग्राम्याः पशवो नारण्याः ।।११।।

षष्ठः खण्डः

अथ यस्य चत्वारि स्तोत्राणि चतसृभिश्चत्वार्य्यष्टाभिश्चत्वारि द्वादशभिश्चत्वारि षोडशभिस्स गां नातिवदति ।।१।। षोडश कलाः पशवः कलाशस्तत्प्रशूनाप्नोति ।।२।। उक्थः षोडशिमान् भवति पशवो वा उक्थानि वज्रः षोडशी वज्रेणै वास्मै पशून् परिगृह्णात्यनपक्रामुका अस्मात्पशवो भवन्ति नोक्थो नातिरात्रो न हि ग्राम्याः पशवो नारण्याः ।।३।।

सप्तमः खण्डः

अमुराणां वै बलस्तमसा प्रावृतोऽश्मापिधानश्चासीत्तस्मिन् गव्यं वस्वन्तरासीत्तं देवानाशक्नुवन् भेत्तुं ते बृहस्पतिमब्रुवन्निमान्नउत्सृजेति स उद्भिदैव बलं व्यच्यावयद्बलभिदाभिनत्तानुत्सेधे नैवोदसृज-न्निषेधेन पर्य्यगृह्णात् ।।१।। पशुकामो यजेत ।। २।। यदुद्भिदा यजते बलमेवास्मै विच्यावयति यद् बलभिदा बलमेवास्मै भिनत्ति।। ३।। उत्सेधनिषेधौ ब्रह्मसामनी भवत उत्सेधेनैवास्मै पशूनुत्सिध्य निषेधेन परिगृह्णाति ।।४।। 'यज्ञइन्द्रमवर्द्धय'दिति ब्रह्मणआज्यꣳरूपेण समृद्धम् ।।५।। सप्तिदशौ भवतो यत्सप्तभिः स्तुवन्ति सप्तग्राम्याः पशवः पशूनेवावरुन्धे सप्तपदा शक्वरी पशवः शक्वरी पशूनेवाव-रुन्धेऽथ यत्सप्तदशभिः प्रजापतिर्वै सप्तदशः प्रजापति-मेवाप्नोति ।।६।। गायत्रीꣳसम्पद्यते तेजो ब्रह्मवर्च्चसं गायत्री तेजएव ब्रह्मवर्च्चसमवरुन्धे प्राणो गायत्री प्रजननं प्राणादेव गायत्र्याः प्रजायते ।।७।।

अष्टमः खण्डः

अथैषोऽपचितिरपचितिकामो यजेतापचित्यवास्मा अपचितिं विन्दति ।।१।। तस्य चतुर्विꣳशौ पवमानौ चतुर्विꣳशत्यक्षरा गायत्री तेजो ब्रह्मवर्चसं गायत्री तेजसैवास्मै ब्रह्मवर्चसेनापचितिं विन्दति ।। २।। उभे बृहद्रथन्तरे भवत उभाभ्यामेवास्मै बृहद्रथन्तराभ्यामपचितिं विन्दति ।। ३।। भर्गयशसी भवती भर्गेणैवास्मै भर्गो दधाति यशसा यशः ।।४।। उभये स्तोमा युग्मन्तश्चायुजश्चोभयैरेवास्मैस्तोमैरपचितिं विन्दति ।।५।। तदाहुर्विलोमानस्तोमा ईश्वरा यजमानं विक्षेतोर्व्युह्यति-यन्तीति ।।६।। एकविꣳशोग्निष्टोमो भवति प्रतिष्ठा वा एकविꣳशोऽन्तत एव यज्ञस्य प्रतितिष्ठति ।।७।।

नवमः खण्डः

अथैष सर्व्वस्तोमोऽपचितिरपचितिकामो यजेत सर्वैरेवा-स्मैस्तोमैरपचितिं विन्दति ।।१।। विराजंऽसम्पद्यत एष वा अपचितोयोऽन्नादोऽन्नं विराडन्नाद्यमेवास्मिन्दधाति ।।२।। उभे बृहद्रथन्तरे भवतो भर्गयशसी भवत उभये स्तोमाश्छन्दोमाश्च पृष्ठ्याश्च उभयैरेवास्मैस्तोमैरपचितिं विन्दति ।।३।। तस्य छन्दोमाः पृष्ठानि पशवो वै छन्दोमा अन्नं पृष्ठान्यभिपूर्वमेवास्मिन्नन्नाद्यं पशून्दधाति यच्छन्दोभवाꣳस्तेन द्वादशाह याजिनमाप्नोति ।।४।। तदाहुर्न्नानालोकाः स्तोमाश्छन्दोमाश्च पृष्ठ्याश्च यदेकस्मिन् यज्ञक्रतौ समवरुध्यन्त ईश्वरा यजमानोऽप्रतिष्ठातोरिति ।।५।। एकविꣳशोऽग्निष्टोमो भवति प्रतिष्ठा वा एकविꣳशः प्रतिष्ठामेव तदभ्यायन्ति ।।६।।

दशमः खण्डः

पक्षी वा एष स्तोमः ।।१।। पक्ष्येष निधीयते ।।२।। न वा अपक्षः पक्षिणमाप्नोत्यथ यदेष पक्षी पक्षिणि निधीयते तस्मात्पक्षिणः पक्षैः पतन्ति ।।३।। पक्षी ज्योतिष्मान् पुण्यान् लोकान् सञ्चरति य एवं वेद ।।४।। त्रिवृतावभितो भवतस्तेजो ब्रह्मवर्च्चसं त्रिवृत्तेजएव ब्रह्मवर्च्चसमवरुन्धे ।।५।। अथ पञ्चदशौ वीर्य्यं वै पञ्चदशो वीर्य्यमेवावरुन्धे ।।६।। अथ सप्तदशौ पशवो वै सप्तदशः पशूनेवावरुन्धे ।।७।। अथैकविꣳशो प्रतिष्ठा वा एकविꣳशे मध्यत एव यज्ञस्य प्रतितिष्ठति ।।८।। अथ त्रिणवाविमे वै लोकास्त्रिणव एष्वेव लोकेषु प्रतितिष्ठति ।।९।। अथ त्रयस्त्रिꣳशौ वर्म्म वै त्रयस्त्रिꣳशः ।।१०।। वर्म्मस्वानां भवति य एवं वेद ।।११।। एष वाव ब्रध्नस्य विष्टपो यदेतौ त्रयस्त्रिꣳशौ मध्यतः सन्धीयेते तेन ब्रध्नस्य विष्टपमारोहति ।।१२।।

मध्यतो वा अग्निर्वरिष्ठस्तस्मादेति स्तोमा मध्यतो वरिष्ठाः क्रियन्ते ।।१३।। त्रिवृता प्रैति त्रिवृतोदेति प्राणो वै त्रिवृत्प्राणेनेव प्रैतिप्राणमभ्यूदेति ।।१४।।

एकादशः खण्डः

अथैष ज्योतिः ।।१।। तस्य त्रिवृद्बहिष्पवमानं पञ्चदशान्याज्यानि चतुर्विंश्शो माध्यन्दिनः पवमानः सप्तदशानि पृष्ठानि ।। २।। प्राणो वै त्रिवृदात्मा पञ्चदशः ।।३।। मुखं गायत्र्यन्नंस्सप्तदशो मुखत एव तदन्नं धत्ते ।।४।। अन्नमत्त्यन्नादो भवति य एवं वेद ।।५।। माध्यन्दिनेन वै पवमानेन देवाः स्वर्गं लोकमायन्यदेष चतुर्विंश्शो माध्यन्दिनः पवमानो भवति स्वर्गस्य लोस्याक्रान्त्यै चतुर्विंश्शत्यक्षरा गायत्री तेजो ब्रह्मवर्च्चसं गायत्री तेजएव ब्रह्मवर्च्चसमवरुन्धे प्राणो गायत्री प्रजननं प्राणादेव गायत्र्याः प्रजायते ।।६।। उभये स्तोमा युग्मन्तश्चायुजश्च तन्मिथुनं तस्मान्मिथुनात् प्रजायते ।।७।। पक्षि वा एतच्छन्दः पक्षी ज्योतिष्मान् पुण्यान् लोकान् सञ्चरति य एवं वेद ।।८।। मध्यतो वा अग्निर्वरिष्ठस्तस्मादेतेस्तोमा मध्यतो वरिष्ठाः क्रियन्ते ।।९।। एका सं्स्तुतानां विराजमतिरिच्यत एकाकिन–मेवैनमन्नाद्यस्याध्यक्षं करोति ।।१०।। ज्योति र्वा एषाऽग्निष्टोमो ज्योतिष्मन्तं पुण्यं लोकं जयति य एवं विद्वानेतेन यजते ।।११।।

द्वादशः खण्डः

अथैष ऋषभः ।।१।। ऋषभो वा एष स्तोमानामृषभतां गच्छति य एवं वेद ।।२।। राजन्यं याजयेदृषभो वै पशूनामधिपतीराजन्यो मनुष्याणां यो वा अस्ति सोऽधिपतिः ।।३।। अधिपतिः समानानां भवति य एवं वेद ।।४।।

तस्य सदोविशीयं माध्यन्दिने पवमाने भवति विशमेवास्मै सवनाभ्यां परिगृह्णात्यनपक्रामुकास्माद्विड् भवति ॥५॥ समन्तं भवति समन्तामेवास्मै विशं करोत्यनपक्रामुकास्मा द्विड् भवति ॥६॥ उभे बृहद्रथन्तरे भवत इयं वै रथन्तरं द्यौर्बृहदेवास्माल्लोकाद्धाय–त्येवामुस्मादुभयोरनयोर्लोकयोः प्रतितिष्ठति ॥७॥ अनुष्टुभि बृहद्भवत्यन्तो वा अनुष्टुप् छन्दसामन्तो बृहत् साम्नामन्तो राजन्यो मनुष्याणामन्त एव तदन्तं प्रतिष्ठापयति तस्माद्यो राजन्यानाꣳहीयते न स पुनरग्रं पर्य्येति ॥८॥

त्रयोदशः खण्डः

यो वै वाजपेयः स राजसूयो यो राजसूयः स वरुणसवो थैष गोसवः स्वाराज्यो यज्ञः ॥१॥ स्वाराज्यं गच्छति य एवं वेद ॥२॥ प्रजापतिर्हि स्वाराज्यं परमेष्ठी स्वाराज्यम् ॥३॥ परमेष्ठितां गच्छति य एवं वेद ॥४॥ उभे बृहद्रथन्तरे भवतस्तद्धि स्वाराज्यꣳस्वाराज्यं गच्छति य एवं वेद ॥५॥ अयुतं दक्षिणास्तद्धि स्वाराज्यꣳस्वाराज्यं गच्छति य एवं वेद ॥६॥ प्रतिदुहाभिषिच्यते तद्धि स्वाराज्यꣳ–स्वाराज्यं गच्छति य एवं वेद ॥७॥ बृहतः स्तोत्रं प्रत्यभिषिच्यते तद्धि स्वाराज्यꣳ स्वाराज्यं गच्छति य एवं वेद ॥८॥ अनुद्धते दक्षिणत आहवनीयस्याभिषिच्यतेऽस्यामेवानन्तर्हितेऽध्यभि–षिच्यते ॥९॥ सर्वः षट्त्रिꣳशस्तेन गोसवः ॥१०॥

चतुर्दशः खण्डः

अथैष मरुत्स्तोम एतेन वै मरुतोऽपरिमितां पुष्टिमपुष्यन्नपरिमितां पुष्टिं पुष्यति य एवं वेद ॥१॥ यद्गणशः स्तोमास्तेन मरुत्स्तोमो गणशो हि मरुतः ॥२॥ एतेनैव त्रीन् याजयेत् ॥३॥

यत् त्रीणि त्रिवृन्ति स्तोत्राणि भवन्ति नाना ब्रह्मवर्च्चसे प्रतितिष्ठन्ति ।।४।। यत् त्रीणि पञ्चदशानि नानावीर्य्ये ।।५।। यत् त्रीणि सप्तदशानि नाना पशुषु ।।६।। यत् त्रीण्येकविंशानि नाना प्रतितिष्ठन्ति ।।७।। प्रतितिष्ठति य एवं वेद ।।८।।

पञ्चदशः खण्डः

अथैष इन्द्राग्न्योः कुलायः प्रजाकामो वा पशुकामो वा यजेत प्रजा वै कुलायं पशवः कुलायं गृहाः कुलायं कुलायमेव भवति ।।१।। एतेनैव द्वौ याजयेत् ।।२।। यत् षट् त्रिवृन्तिस्तोत्राणि भवन्ति नाना ब्रह्मवर्च्चसे प्रतितिष्ठतो यत् द्वे पञ्चदशे नानावीर्य्ये यत् द्वे सप्तदशे नाना पशुषु यत् द्वे एकविंशे नाना प्रतितिष्ठतः प्रतितिष्ठति य एवं वेद ।।३।।

षोडशः खण्डः

अथैष पञ्चदश इन्द्रस्तोम उक्थ्यः ।।१।। एतेन वा इन्द्रोऽत्यन्या देवता अभवदत्यन्याः प्रजा भवति य एवं वेद ।।२।। राजन्यं याजयेत् ।।३।। सर्व्वः पञ्चदशो भवत्योजो वीर्य्यं पञ्चदश ओजसैवैनं वीर्य्येण समर्द्धयति ।।४।। ऐन्द्रीषु भवन्तीन्द्रियेणैवैनं वीर्य्येण समर्द्धयति ।।५।। उक्थ्यो भवति पशवो वा उक्थानि विडुक्थानि विशमेवास्मै पशूननुनियुनक्त्यनपक्रामुकास्माद्विड् भवति ।।६।। पञ्चदशस्तोत्राणि पञ्चदशानि भवन्त्योजो वीर्य्यं पञ्चदशोऽभिपूर्वमेवास्मिन्नोजो वीर्य्यन्दधाति ।।७।।

सप्तदशः खण्डः

अथैष इन्द्राग्न्योः स्तोम एतेन वा इन्द्राग्नी अत्यन्या देवता अभवतामत्यन्याः प्रजा भवति य एवं वेद ।।१।। त्रिवृत् पञ्चदशो भवति ।।२।।

ब्रह्म वै त्रिवृत् क्षत्रं पञ्चदशो ब्रह्मण इव चास्य क्षत्रस्येव च प्रकाशो भवति य एवं वेद ।। ३ ।। राजा च पुरोहितश्च यजेयाताम् ।। ४ ।। गायत्रीश्च जगतीश्च सम्पद्यते ।। ५ ।। तेजो ब्रह्मवर्च्चसं गायत्र्या ब्राह्मणोऽवरुन्धे विशꣳराजा जगत्या प्रविशति ।। ६ ।। पुरोधा कामो यजेत ।। ७ ।। बृहस्पतिरकामयत देवानां पुरोधां गच्छेयमिति स एतेनायजत स देवानां पुरोधामगच्छद्गच्छति पुरोधां य एवं वेद ।। ८ ।।

अष्टादशः खण्डः

अथैष विघनः ।। १ ।। इन्द्रोऽकामयत पाप्मानं भ्रातृव्यं विहन्यामिति स एतं विघनमपश्यत्तेन पाप्मानं भ्रातृव्यं व्यहन् विपाप्मानं भ्रातृव्यं हते य एवं वेद ।। २ ।। यत् त्रिवृद्भवति प्राणाꣳस्तेनाऽवरुन्धे यत् द्वादशः संवत्सरं तेन यत् पञ्चदशो वीर्य्यं तेन यत् सप्तदशोऽन्नाद्यं तेन यदेकविꣳशः प्रतिष्ठा तेन यन्नवदशः प्रजननं तेन यच्चतुर्विꣳशो ब्रह्मवर्च्चसं तेन यत्त्रिणवो वज्रं भ्रातृव्याय प्रहरति ।। ३ ।। पशुकामो यजेत बृहतीꣳ सम्पद्यते पशवो वै बृहती पशूनेवावरुन्धे ।। ४ ।। षडेता बृहत्यो भवन्ति षड्ऋतवः संवत्सरः संवत्सरं पशवोऽनु प्रजायन्ते तानेवाप्तावरुन्धे ।। ५ ।।

एकोनविंशः खण्डः

इन्द्रमदेव्यो माया असचन्त स प्रजापतिमुपाधावत्तस्मा एतं विघनं प्रायच्छत्तेन सर्वामृधो व्यहत यद्व्यहत तद्विघनस्य विघनत्वम् ।। १ ।। सर्वामृधो विहते य एवं विद्वान् विघनेन यजते यमेवं विद्वान् विघनेन याजयति ।। २ ।। पशुकामो यजेत पशवो वै बृहती पशुष्वेव प्रतितिष्ठति ।। ३ ।।

।। इति एकोनविंशोऽध्यायः ।।



विंशोऽध्याय:

प्रथम: खण्ड:

त्रिवृद् बहिष्पवमानं पञ्चदशान्याज्यानि पञ्चदशो माध्यन्दिन: पवमान: सप्तदशानि पृष्ठानि सप्तदश आर्भव एकविꣳशोग्निष्टोम: सोक्थ्य: पञ्चदशी रात्रिस्त्रिवृत्सन्धि: ।।१।। ज्योतिष्टोमेनाति–रात्रेणर्द्धिकामो यजेताभिक्रमो वा एषस्तोमानामभिक्रान्त्या अभिक्रान्तेन हि यज्ञस्यर्ध्नोति ।।२।। एषोऽग्निष्टोम एष उक्थ्य एषोऽतिरात्रोऽग्निष्टोमेन वै देवा इमं लोकमभ्यज–यन्नुक्थ्यैरन्तरिक्षꣳरात्र्यामुं लोकमजयन्नहोरात्राभ्यामभ्य वर्त्तन्त ।।३।। पराच्यो वा अन्या व्युच्छन्ति प्रतीच्योऽन्या एषा वाव प्रतीची व्युच्छति याश्विनेन व्युछति प्रतीचीरेवास्मा उषसो विवासयति ।।४।। द्वे सꣳस्तुतानां विराजमतिरिच्यते एषा वै स्तनवती विराट् यं कामं कामयते तमेतां दुग्धे ।।५।। त्रिवृता प्रैति त्रिवृतोदेति प्राणो वै त्रिवृत्प्राणेनैव प्रैति प्राणमभ्युदेति ।।६।।

द्वितीय: खण्ड:

त्रिवृद्बहिष्पवमानं पञ्चदशान्याज्यानि सप्तदशो माध्यन्दिन: पवमान एकविꣳशानि पृष्ठानि त्रिणव आर्भवस्त्रयस्त्रिꣳशोऽग्निष्टोम: प्रत्यवरोहीण्युक्थानि त्रिणवं प्रथमं द्वे एकविꣳशे सषोडशिके पञ्चदशी रात्रिस्त्रिवृत्सन्धि: ।।१।। सर्व्वस्तोमेनातिरात्रेण बुभूषन्यजेत सर्व्वस्याप्त्यै सर्व्वस्य जित्यै सर्वमेवैतेनाप्नोति सर्वं जयति ।।२।। यत्त्रिवृद् बहिष्पवमानं भवति तत्त्रिवृतꣳस्तोममाप्नोति गायत्रीं छन्दो यत् पञ्चदशान्याज्यानि तत् पञ्चदशꣳस्तोममाप्नोति त्रिष्टुभं छन्दो

यत्सप्तदशो माध्यन्दिनः पवमानस्तत्सप्तदशꣳस्तोममाप्नोति जगतीं छन्दो यदेकविꣳशानि पृष्ठानि तदेकविꣳशꣳस्तोममाप्नोत्यिनुष्टुभं छन्दो यत्त्रिणवꣳस्तोममाप्नोति पङ्क्तिं छन्दोयत्त्रयस्त्रिꣳ–शोऽग्निष्टोमस्तत्त्रयस्त्रिꣳशꣳस्तोममाप्नोति विराजं छन्दोयदुष्णिक्ककुभौ क्रियेते तदुष्णिक्ककुभावाप्नोति यद्बृहतीषु सन्धिना स्तुवन्ति तद्बृहतीमाप्नोति यदाश्विनꣳशस्यते तत्सर्वमेवैतेनाप्नोति सर्वं जयति ।। ३ ।। प्राञ्चं वै त्रयस्त्रिꣳशो यज्ञं प्रभुजति तमध्वर्य्यु–रेकादशिन्या पुरस्तात्प्रत्युद्यच्छत्येकादश रशना एकादश पशव एकादश यूपा भवन्ति, तत्त्रयस्त्रिꣳशे त्रयस्त्रिꣳशं प्रतिष्ठापयति ।। ४ ।। तया समुद्यतया रात्र्या यं यं कामं कामयते तं तं अभ्यश्नुते यं यं कामं कामयते तं तं अभ्यश्नुते य एवं वेद ।। ५ ।।

तृतीयः खण्डः

त्रिवृद्बहिष्पवमानं पञ्चदशान्याज्यानि सप्तदशो माध्यन्दिनः पवमान एकविꣳशꣳहोतुः पृष्ठं छन्दोमा इतराणि त्रिणव आर्भवस्त्रयस्त्रिꣳशोऽग्निष्टोमः, प्रत्यवरोहीण्युक्थानि त्रिणवं प्रथममथैकविꣳशमथसप्तदशमेकविꣳशः षोड़शी, पञ्चदशी रात्रिस्त्रिवृत्सन्धिस्त्रिवृत् प्रथममतिरिक्तस्तोत्रमथपञ्चदशमथ–सप्तदशमथैकविꣳशम् ।। १ ।। प्रजापतिः पशूनसृजत तेऽस्मात् सृष्टा अपाक्रामꣳस्तानग्निष्टोमेन नाप्नोत्तानुक्थैर्न्नाप्नोत्तान् षोडशिना नाप्नोत्ताꣳरात्र्या नाप्नोत्तान् सन्धिना नाप्नोत्तानाश्विनेन नाप्नोत्तानग्निम–ब्रवीदिमान्म ईप्सेति तानग्निस्त्रिवृतास्तोमेन जराबोधीयेन साम्ना नाप्नोत्तानिन्द्रमब्रवीदिमान्म ईप्सेति तानिन्द्रः पञ्चदशेन स्तोमेन सत्रासाहीयेन साम्ना नाप्नोत्तान् विश्वान् देवानब्रवीदिमान्म ईप्सतेति तान्विश्वे देवाः सप्तदशेन स्तोमेन मार्गीयवेण साम्ना

नाप्नुवंस्तान्विष्णुमब्रवीदिमान्म ईप्सेति तान् विष्णुरेकविंशेन स्तोमेनाप्नोद्वारवन्तीयेनावारयत 'इदं विष्णुर्विचक्रम' इति व्यक्रमत ।। २।। यस्मात्प्रप्रेव पशवो भ्रंशेरन् स एतेन यजेत ।। ३।। एतेन वै देवा जैत्वानि जित्वा यं यं काममकामयन्त तं तमाप्नुवन् यं कामं कामयते तमेतेनाप्नोति ।। ४।। तदप्तोर्य्याम्नोऽप्तोर्य्या- मत्वम् ।। ५।।

चतुर्थः खण्डः

त्रिवृद् बहिष्पवमानं पञ्चदशंहोतुराज्यं नव सप्तदशानि स्तोत्राण्येकविंशोऽग्निष्टोम: सोक्थ: पञ्चदशी रात्रिस्त्रि- वृत्सन्धिः ।।१।। नवसप्तदशेनातिरात्रेण प्रजाकामो यजेत नव वै प्राणा: प्रजापतिः सप्तदश:, प्राणेभ्य एव तदधि प्रजापते: प्रजाः प्रजायन्ते ।। २।। ककुभं प्राचीमुदूहति पुरुषो वै ककुब् गर्भो वा एष मध्यतो धीयते ।। ३।। तस्यांसाकमश्वम् ।।४।। प्रजापतिः प्रजा असृजत तान् प्रजायन्त स एतत् सामापश्यत्ता अश्वो भूत्वाभ्यजिघ्रत्ता: प्राजायन्त प्रजनं वा एतत् साम ।। ५।। प्रजायते बहुर्भवति य एवं वेद ।।६।। द्विपदां ककुभो लोके करोति गर्भमेव तद्धितं मध्यत: प्रजनयति ।।७।। अतिरात्रो भवत्यहोरात्रे वा अनुप्रजा: प्रजायन्तेऽहोरात्रे एवानुप्रजया पशुभि: प्रजायते ।। ८।।

पञ्चमः खण्डः

त्रिवृद् बहिष्पवमानं पञ्चदशान्याज्यानि पञ्चदशो माध्यन्दिन: पवमान: सप्तदशानि पृष्ठानि सप्तदश आर्भव एकविंशोऽग्निष्टोम: सप्तदशान्युक्थानि पञ्चदशी रात्रिस्त्रिवृत्सन्धिः ।।१।। विषुवतातिरात्रेण ज्येष्ठं ज्यैष्ठिनेयं याजयेत् विषुवान् वा एष स्तोमानां विषुवानेव भवति ।।२।।

यदेकएकविंशो भवत्येकविंशो वा इतोऽसावादित्यो द्वादशमासाः पञ्चर्त्तवस्त्रय इमे लोका असावादित्य एकविंश आदित्यस्यै वैनं मात्रां गमयति ।।३।। एष वा उदेति न वा एनमन्यत् ज्योतिषां ज्योतिः प्रत्युदेति ।।४।। नैनमन्यः स्वेषु प्रत्युदेति य एवं वेद ।।५।।

षष्ठः खण्डः

पञ्चदशं बहिष्पवमानं त्रिवृन्त्याज्यानि सप्तदशं माध्यन्दिनं-सवनमेकविंशं तृतीयसवनंसोक्थं पञ्चदशी रात्रिस्त्रि-वृत्सन्धिर्गोष्टोमेनातिरात्रेण भ्रातृव्यवान्यजेत, गवा वै देवा असुरानेभ्यो लोकेभ्योऽनुदन्त, रात्र्यानपजय्यमजयन्नेभ्यो लोकेभ्यो भ्रातृव्यं प्रणुद्य रात्र्यानपजय्यं जयति ।।१।।

सप्तमः खण्डः

त्रिवृद् बहिष्पवमानं, पञ्चदशान्याज्यानि, सप्तदशं माध्यन्दिनं-सवनमेकविंशं तृतीयसवनं सोक्थं, पञ्चदशी रात्रिस्त्रि-वृत्सन्धिरायुष्टोमेनातिरात्रेण, स्वर्गकामो यजेतोर्ध्वाः स्तोमा यन्त्यनपभ्रंशाय यदतिरात्रो भवत्यहोरात्राभ्यामेव स्वर्गं लोकमेति ।।१।।

अष्टमः खण्डः

त्रिवृद् बहिष्पवमानं, पञ्चदशंहोतुराज्यंसप्तदशं मैत्रावरुणस्य, पञ्चदशं ब्राह्मणाच्छंसिनः सप्तदशमच्छावाकस्यैकविंशो माध्यन्दिनः पवमानः सप्तदशं होतुः पृष्ठमेकविंशं मैत्रावरुणस्य त्रिणवं ब्राह्मणाच्छंसिन, एकविंशमच्छावाकस्य त्रिणव आर्भवस्त्रयस्त्रिं-शोग्निष्टोमः, प्रत्यवरोहीण्युक्थानि त्रिणवं प्रथमं, द्वे एकविंशे,

स षोडशिके, पञ्चदशी रात्रिस्त्रिवृत्सन्धिरभिजितातिरात्रेण भ्रातृव्यवान्यजेताभिजिता वै देवा असुरानिमान् लोकानभ्यजयन्रा–त्र्यानपजय्यमजयन्नभिजितैव भ्रातृव्यमिमान् लोकानभिजित्य रात्र्यानपजय्यं जयति ।।१।।

नवमः खण्डः

त्रिवृद् बहिष्पवमानं, पञ्चदशꣳहोतुराज्यꣳसप्तदशं मैत्रावरुणस्यैकविꣳशं ब्राह्मणच्छꣳसिनः, पञ्चदशमच्छावाकस्य, सप्तदशो माध्यन्दिनः पवमान एकविꣳशं होतुः पृष्ठं, त्रिणवं मैत्रावरुणस्य, सप्तदशं ब्राह्मणाच्छꣳसिन, एकविꣳशमच्छावाकस्य, त्रिणव आर्भवस्त्रयस्त्रिꣳशोऽग्निष्टोमः प्रत्यवरोहीण्युक्थानि, त्रिणवं प्रथमं, द्वे एकविꣳशे सषोडशिके, पञ्चदशीरात्रिस्त्रिवृत्सन्धि–र्विश्वजितातिरात्रेण पशुकामो यजेत ।।१।। रेतो हि नाभा नेदिष्ठीयं, पशवो वालखिल्यायन्नाभा नेदिष्ठीयं पूर्वꣳशस्यत उत्तरा वालखिल्या रेतसस्तत्पशवः प्रजायन्ते रूपाणिविकरोति यद्वार्षाकपमृतुषु प्रतितिष्ठति यदेवयामरुत् ।। २।।

दशमः खण्डः

त्रिवृतातिरात्रेण ब्रह्मवर्च्चसकामो यजेत तेजो वै त्रिवृत् ब्रह्मवर्च्चसं तेजएव ब्रह्मवर्च्चसमवरुन्धे तेजसि ब्रह्मवर्च्चसे प्रतितिष्ठति पञ्चदशेनातिरात्रेण वीर्य्यकामो यजेतौजो वीर्य्यं पञ्चदश ओजएव वीर्य्यमवरुन्ध ओजसि वीर्य्ये प्रतितिष्ठति सप्तदशेनाति–रात्रेणान्नाद्यकामो यजेतान्नं वै सप्तदशोऽन्नाद्यमेवावरुन्ध एकविꣳशेनातिरात्रेण प्रतिष्ठाकामो यजेत प्रतिष्ठा वा एकविꣳशो यदतिरात्रो भवत्यहोरात्रयोरेव प्रतितिष्ठति ।।१।।

एकादश: खण्ड:

ज्योतिष्टोमोऽग्निष्टोम: पूर्वमह: सर्वस्तोमोऽतिरात्र उत्तरम् ।।१।। तस्य चतुर्विंꣳशं बहिष्पवमानं, पञ्चदशान्याज्यानि सप्तदशो माध्यन्दिन: पवमान, एकविंꣳशानि पृष्ठानि, त्रिणवआर्भवस्त्रयस्त्रिंꣳ-शोऽग्निष्टोम: प्रत्यवरोहीण्युक्थानि त्रिणवं प्रथममथैकविंꣳशमथ सप्तदशमेकविंꣳश: षोडशी, पञ्चदशी रात्रिस्त्रिवृत्सन्धि: ।। २।। अङ्गिरस: स्वर्गं लोकमायꣳस्तेषाꣳहविष्माꣳश्च हविष्कृच्चाङ्गि-रसात्वहीयेतां तावागच्छेतां यतोऽङ्गिरस: स्वर्गं लोकमायꣳ-स्तावतप्येतां तावेते सामनी अपश्यतां ताभ्यां द्विरात्रमतन्वातां तेन लोकमैताम् ।। ३।। य: पौण्योहीन इव स्यात् स एतेन यजेताप्नोति पूर्वेषां प्रहामाप्नुताꣳहि तावङ्गिरस: ।।४।। प्रजाकामो यजेत द्वितीयं ह्येतद्य त्प्रजा ।।५।। स्वर्गकामो यजेत द्वितीयाद्धि लोकात्परोलोकोऽभिप्रक्रम्यो दुराधो द्विरात्र इत्याहुर्यदग्निष्टोम: पूर्वमहर्भवत्युक्थ्यमन्तर्य्यन्ति यद्युक्थ्योऽग्निष्टोमम् ।।६।। यज्ज्योतिरुक्थ्य: पूर्वमहर्भवति नाग्निष्टोममन्तर्यन्ति नोक्थानि ।।७।। तदाहुरेषा वाव यज्ञस्य मात्रा यदग्निष्टोमो यदग्निष्टोम: पूर्वमहर्भवति यज्ञस्य मात्रां नाति क्रामत्यथोत्तरस्याह्न उक्थ्येभ्योऽधिरात्रिमुपयन्ति तेनोक्थान्यनन्तरितानि ।।८।। चतुर्विंꣳशं बहिष्पवमानं भवत्युत्तरस्याह्नश्चतुर्विंꣳशत्यक्षरा गायत्री प्रजननं गायत्री प्रजात्यै ।।९।। उभये स्तोमा युग्मन्तश्चायुजश्च तन्मिथुनं तस्मान्मिथुनात्प्रजायते ।।१०।। सर्वस्तोमोऽतिरात्रो भवति सर्वस्याप्त्यै सर्वस्य जित्यै सर्वमेवैतेनाप्नोति सर्वं जयति ।।११।।

द्वादश: खण्ड:

अथ यस्य ज्योतिरुक्थ्य: पूर्वमहर्भवत्यायुरतिरात्र उत्तरम् ।।१।।

तिस्रः पूर्वस्याह्नो विराजमतिरिच्यन्ते द्वाभ्यामुत्तरमहर्विराज-ऊनमूनातिरिक्तं वा अनुप्रजाः प्रजायन्ते ।। २ ।। प्रप्रजया प्रपशुभिर्ज्जायते य एवं वेद ।। ३ ।। एका सꣳस्तुतानां विराजमतिरिच्यत एकाकिनमेवैनमन्नाद्यस्याध्यक्षं करोति ।। ४ ।। एतेन वै चित्ररथं कापेया अयाजयꣳस्तमेकाकिनमन्नाद्यस्याध्यक्षमकुर्वꣳ-स्तस्माच्चैत्ररथीनामेकः क्षत्रपतिर्ज्जायतेऽनुलम्ब इव द्वितीयः ।। ५ ।।

त्रयोदशः खण्डः

अथ यस्य त्रिवृत्पञ्चदशोऽग्निष्टोमः पूर्वमहर्भवत्यायुरतिरात्र उत्तरम् ।। १ ।। मिथुनाभ्याꣳ स्तोमाभ्यामुत्तरमहः प्रजनयन्ति तत्प्रजातꣳश्च आरभन्ते चक्रे वा एते साकंवृती यत् त्रिवृत्पञ्चदशौ स्तोमौ यं कामं कामयते तमेतेनाभ्यश्नुते यत्र यत्र हि चक्रीवता कामयते तत्तदभ्यश्नुते ।। २ ।। अथ यदायुरतिरात्रो भवति प्रतिष्ठित्यै ।। ३ ।। एतेन वै कपिवनो भौवायन इष्ट्वा रूक्षतामगच्छत् ।। ४ ।। अरूक्षो भवति य एवं विद्वानेतेन यजते ।। ५ ।।

चतुर्दशः खण्डः

त्रिवृत्प्रातः सवनं, पञ्चदशं माध्यन्दिनꣳसवनꣳसप्तदशं तृतीयसवनं, पञ्चदशं प्रातःसवनं, सप्तदशं माध्यन्दिनꣳसवनमेकविꣳशं तृतीयसवनꣳसोक्थमेकविꣳशं प्रातःसवनं, त्रिणवं माध्यन्दिनꣳसवनं, त्रयस्त्रिꣳश आर्भवश्चतुस्त्रिꣳशोग्निष्टोम, एकविꣳशान्युक्थानि स षोडशिकानि षोडशं प्रथमꣳरात्रिषाम, पञ्चदशी रात्रिस्त्रि-वृत्सन्धिः ।। १ ।। प्रजापतिर्वा इदमेक आसीत्तस्य वागेव स्वमासीद्वाग् द्वितीया स ऐक्षतेमामेव वाचं विसृजा इयं वा इदꣳसर्वं विभवन्त्येष्यतीति स वाचं व्यसृजत सेदꣳसर्वं विभवन्त्यैत् सोर्ध्वोदातनोद्यपथापां धारा सन्ततैवं तस्या एति

तृतीयमच्छिनत्तद्भूमिरभवदभूदिव वा इदमिति तद्भूमेर्भूमित्वं केति तृतीयमच्छिनत्तदन्तरिक्षमभवदन्तरेव वा इदमिति तदन्तरिक्षस्यान्तरिक्षत्वंश्हो इति तृतीयमूर्ध्वमुदास्यत् तत् द्यौरभवद्द्युतदिव वा अदइति तद्दिवो दिवत्वम् ।। २।। 'एषा वाव प्रत्यक्षं वाग्यज्जिह्वाग्रेणैतद्वाचो वदति यदेति मध्येनैतद्वाचो वदति यत् केति सर्वयैतद्वाचो रसोऽध्यूर्ध्व उद्वदति यद्धो' इति ।। ३।। यदेतानि रूपाण्यन्वहं व्यज्यन्ते मुखतएव तद्वाचं विसृजन्ते मुखतो यज्ञियं कर्म्म ।। ४।। प्रजापतिर्वा इदमेकाक्षरां वाचंश्सतीं त्रेधाव्यकरोत्तइमे लोका अभवन् रूक्षा अनुपजीवना: स ऐक्षत कथमिमेलोकालोम गृह्णीयु: कथमुपजीवनीया: स्युरिति स एतं त्रिरात्रमपश्यत्तमाहरत्तेनेमान् लोकानन्वातनोत्ततो वा इमे लोका लोमागृह्णंश्स्तत उपजीवनीया अभवंश्स्त्रिरात्रस्य वा इदं पुष्टं त्रिरात्रस्योदरणं यदिदमेषु लोकेष्वधि ।। ५।। गच्छति पशूनां भूमानं द्विपदां चतुष्पदां य एवं वेद ।। ६।। प्रजापतिर्यद्वाचं व्यसृजत साक्षरदेवेति प्रथमं क्षेति द्वितीयं रेति तृतीयं येन येन वै रूपेण प्रजापतिर्वाचं व्यसृजत तेन तेन रूपेणाज्यानिचारभ्यन्तेऽहानि चाप्यन्ते ।। ७।। तदाहुर्ब्रह्मवादिनोऽक्षरेस्था वै त्रिरात्र इत्येकाक्षरा वै वाक् त्र्यक्षरमक्षरं त्र्यक्षर: पुरुष: स वा एनं वेदेत्याहुर्य्य एनं पुरुष सम्मितं वेदेति ।। ८।।

पञ्चदश: खण्ड:

एतेन वै देवा एषु लोकेष्वार्ध्नुवन्नेतेन स्वर्गं लोकमायन् ।। १।। वाग्वै त्रिरात्रो वाचो रूपेणाज्यानि चाहानि च विभज्यन्त एकाक्षरा वै वाक् त्र्यक्षरमक्षरमक्षरस्य रूपेण विभज्यन्ते त्रयोगन्धर्वास्तेषामेषा भक्तिरग्ने: पृथिवी वायोरन्तरिक्षमसावादित्यस्य द्यौस्त्रयोघर्मास

उषसꣳसचन्तो ।। २।। अग्निरुषसꣳसचते वायुरुषसꣳसचतेऽसावादित्य उषसꣳ सचते ।। ३।। त्रीणि मिथुनानि तान्येषः ।। ४।। मिथुनं द्वे सम्भवतो मिथुनाद्यत्प्रजायते तत्तृतीयम् ।। ५।। इन्द्रो वृत्रायवज्रमुदयच्छत्सोऽब्रवीन्मा मे प्रहार्षीरस्ति वा इदं मयि वीर्य्यं तत्ते प्रदास्यामीति तदस्मै प्रायच्छत्तद्विष्णुः प्रत्यगृह्णात् स द्वितीयं स तृतीयमुदयच्छत्स एवाब्रवीन्मा मे प्रहार्षीरस्ति वा इदं मयि वीर्य्यं तत्तेप्रदास्यामीति तदस्मै प्रायच्छत् तद्विष्णुः प्रत्यगृह्णादेतद्वाव तदभ्यनूच्यते ।। ६।। 'उभा जिग्यथुर्न पराजयेथे न पराजिग्ये कतरश्च नैनोरिन्द्रश्च विष्णो यदस्पृधेथां त्रेधा सहस्रं वितदैरयेथा' मिति ।। ७।। एतद्वा आभ्यां तत्सहस्रं प्रायच्छत् ।। ८।। तस्यैषा भक्तिर्य आर्षेयो विद्वाꣳस्तस्मै प्रथमेऽहनि देयं यथा वा इयमेवꣳस प्रतिष्ठितेयं प्रतिष्ठितः सः ।। ९।। योनार्षेयो विद्वाꣳस्तस्मै द्वितीयोऽहनि देयं यथा वा अन्तरिक्षमेवꣳसोऽन्तरिक्षमित्यन्तरिक्षं विदुर्वेदं तस्य विदुः ।। १०।। य आर्षेयो विद्वाꣳस्तस्मै तृतीयेऽहनि देयं यथा वै द्यौरवꣳस द्योरिति दिवं विदुर्बन्धु तस्य विदुः ।। ११।। शतान्यन्वहं दीयन्त एषा वाव यज्ञस्य मात्रा यच्छतं सैव सा विच्छिन्ना दीयते दशतोऽन्वहं दीयन्ते दशाक्षरा विराड्वैराजोयज्ञः सैव सा विच्छिन्ना दीयते ।। १२।। त्रयस्त्रिꣳशच्च त्रीणि च शतानि प्रथमेऽहनि देयास्तथा द्वितीये तथा तृतीये ।। १३।। अथैषा द्विदेवत्यात्रिरूपा ब्रह्मणो द्वे तृतीये तृतीयमग्नीधः ।। १४।। काम्यासि प्रियासि हव्यासीडेरन्ते सरस्वति महि विश्रुत एतानि तेऽध्न्ये नामानि देवेषु नः सुक्रतो ब्रूयात् ।। १५।।

षोडशः खण्डः

इदं वाव प्रथमेनाह्ना व्यकरोद्यदिदमस्यामध्यायत्तमूलमिदं द्वितीयेन यदिदं प्राणादेजत्यदस्तृतीयेन यद्वर्षति यन्नक्षत्राणि यदमुं लोकं

भेजे ।।१।। तदाहुर्ब्रह्मवादिनो महाव्रतं वा एतद्यदेषा त्रिरात्र इति तस्यै तदेव मुखं यदेतेषामह्नां बहिष्पवमानं ये अभितोऽहनी तौ पक्षौ यन्मध्यममहः स आत्माऽग्निष्टोम सामानि पुच्छम् ।। २।। यदेवासावुदेति तन्मुखं ये अभितोऽहनी तौ पक्षौ यन्मध्यममहः स आत्माग्निः पुच्छम् ।। ३।। यदेवासावुदेति तन्मुखं ये अभितोऽहनी तौ पक्षौ यन्मध्यममहः स आत्मा यदस्तमेति तत्पुच्छम् ।। ३।। एतावान्वाव त्रिरात्रो गायत्रः प्राणस्त्रैष्टुभं चक्षुर्जागतं श्रोत्रं सर्वमायुरेति य एवं वेद ।।५।। तदाहुर्ब्रह्मवादिनः कियञ्स्त्रिरात्रइतीयानिति ब्रूयादियध्येत दभ्यथो इयानिति ब्रूयादियध्येवैतदभिपरा३— ङर्व्वा३ङित्याहुः पराङिति ब्रूयात्पराङ् हि वदति पराङ् पश्यति पराङ् प्राणिंत्येका३द्वा३ उत्त्रया३इत्याहुरेक इति ब्रूयात् समानो ह्येष यत् प्राणोऽपानोव्यानस्तद्यथा अदोमणौ सूत्रमोतमेवमेषु लोकेषु त्रिरात्र ओतः शोभतेऽस्य मुखं य एवं वेद ।। ६।। यद्वै त्रिरात्रस्य सलोम तदस्य विलोम यदस्य विलोम तदस्य सलोम तद्यदेतत्परं सदहरवरं क्रियते यजमानायैव तत्पशून् परिगृह्णाति प्रजननाय न ह्यमुष्मिन् लोके पशवः प्रजायन्ते ।।७।। एते वाव छन्दसां वीर्य्यवत्तमे यद्गायत्री च त्रिष्टुप् च यदेते अभितो भवतो मध्ये जगती वीर्य्यवतीभ्यामेव तच्छन्दोभ्यां पशून् परिगृह्णाति प्रजननाय न ह्यमुष्मिन् लोके पशवः प्रजायन्ते ।।८।। असौ वाव त्रिरात्रो यथोदेत्येवं प्रथममहर्यथा मध्यन्दिन एवं द्वितीयं यथाऽस्तमेत्येवं तृतीयं गच्छत्यमुष्य सायुज्यं गच्छति सावेश्यं य एवं वेद ।।९।।

।।इति विंशोऽध्यायः।।



एकविंशोऽध्याय:

प्रथम: खण्ड:

इन्द्रोमरुत: सहस्रमजिनात् स्वां विशं सोमाय राज्ञे प्रोच्य तस्माद्राज्ञे प्रोच्य विशं जिनन्ति तौ यमोऽभृणोन्मरुतो ह सहस्रमिज्यासृष्टामिति स आगच्छत्सोऽब्रवीदुपमास्मिन् सहस्रे ह्वयेथामिति तमुपाह्वयेताꣳस यमोऽपश्यदेकाङ्गाꣳसहस्रेऽपि सहस्रस्य पयोबिभ्रतीꣳसोऽब्रवीदियमेव ममास्तु सहस्रं युवां विकल्पयेथामिति ता वब्रूतां यथा वाव त्वमेतां पश्यस्येवमावमेतां पश्याव इति ॥१॥ तया वा इदꣳसहस्रं विकल्पयामहा इत्यब्रुवꣳस्तामुदके प्रावेशयꣳस्तेऽब्रुवन्नꣳशानाहरामहै यस्मै न इयं प्रथमायो देष्यति इति तेꣳशानाहरन्त सोमस्य प्रथम ऐदथेन्द्रस्याथ यमस्य ॥२॥ तेऽब्रुवन् सोमाय राज्ञ उदेहि तृतीयेन चात्मनस्तुतीयेन च सहस्रस्य पयस इति सा बभ्रु: पिङ्गाक्ष्येकवर्षोदैत्तृतीयेन चात्मनस्तृतीयेन च सहस्रस्य पयस: सा या सोमक्रयणी सैव सा ॥३॥ तृतीयेन चास्य तस्या आत्मनस्तृतीयेन च सहस्रस्य पयस: सोम: क्रीतो भवति य एवं विद्वान् सोमं क्रीणाति यस्मा एवं विदुषे सोमं क्रीणन्ति ॥४॥ तेऽब्रुवन्निन्द्रायो देहि तृतीयेन चात्मनस्तृतीयेन च सहस्रस्य पयस इति सा शबली पष्ठौह्युदैत् तृतीयेन चात्मनस्तृतीयेन च सहस्रस्य पयस: सा येन्द्रियैष्या सैव सा॥ ५॥ तृतीयेन चास्य तस्या आत्मनस्तृतीयेन च सहस्रस्य पयस इन्द्रियैष्या दत्ता भवति य एवं विद्वानिन्द्रियैष्यां ददाति यस्मा एवं विदुष इन्द्रियैष्यां ददाति ॥६॥ तेऽब्रुवन्यमायोदेहि तृतीयेन चात्मनस्तृतीयेन च सहस्रस्य पयस इति सा जरती कुष्टाऽभृङ्ग्युदैद्धूम्रा वा दित्यौ हीर्म्मतो

हसीयसी तृतीयेन चात्मनः तृतीयेन च सहस्रस्य पयसः सा यानुस्तरणी सैव सा ।।७।। तृतीयेन चास्य तस्या आत्मनस्तृतीयेन च सहस्रस्य पयसोऽनुस्तरणी कृता भवति य एवं विद्वाननुस्तरणी करोति यस्मा एवं विदुषेऽनुस्तरणीङ्कुर्वन्ति नाचकृवान्मन्यते ।।८।। तदाहुर्ब्रह्मवादिनो न वा अमुष्मिन् लोके सहस्रयाडलोकोऽस्तीति तद् यावदितः सहस्रस्य गौर्गवि प्रतिष्ठिता तावदस्माल्लोकादसौ लोकः सहस्रयाजी वा इमान् लोकान् व्याप्नोत्यथो यावत् सहस्रं योजनान्यथो यावत् सहस्रमाश्वीनान्यथो यावत् सहस्रमह्न्यानि तद्गवा गवा स्पृणोति समाक्रयणाय वा एता दीयन्ते ।।९।। सहस्रं यदसृजत तस्य तार्क्ष्यं योनिरासीद्यत्तार्क्ष्यं प्रत्यस्य नयति सयोनित्वाय ।।१०।।

द्वितीयः खण्डः

प्रजापतिः प्रजा असृजत ता अस्मान् सृष्टाः पराच्य आयन्नत्स्यति न इति बिभ्यत्यः सोऽब्रवीदुपमावर्त्तध्वं तथा वै वोऽत्स्यामि यथाद्यमाना भूयस्यः प्रजनिष्यथ इति ताभ्यो वैनं ऋतं ब्रूहीत्यब्रुवंस्ताभ्य ऋत निधनेनर्त्तमब्रवीदीनिधनेना वयत्त्रिणिधनेन प्राजनयदेतैर्ह वा इदं- सामभिर्मृत्युः प्रजा अत्ति च प्रजनयति ।।१।। अद्यमानस्य भूयो भवति य एवं वेद ।।२।। ज्येष्ठसामानि वा एतानि श्रेष्ठसामानि प्रजापति सामानि ।। ३।। गच्छति ज्यैष्ठ्यंश्रैष्ठ्यंय एवं वेद ।।४।। एतैर्वै सामभिः प्रजापतिरिमान् लोकान् सर्वान् कामान् दुग्धे यदाच्या दुग्धे तदाच्यादोहानामाच्यादोहत्वम् ।।५।। सर्वानिमान् लोकान् कामान् दुग्धे य एवं विद्वानेतैः सामभिः स्तुते ।।६।। इमे वै लोका एतानि सामान्ययमेवर्त्तनिधनमन्तरिक्षमीनिधनं द्यौस्त्रिणि- धनम् ।।७।। यथा क्षेत्रज्ञः क्षेत्राण्यनुसञ्चरत्येवमिमान् लोकाननु सञ्चरति य एवं वेद ।।८।।

अग्नेर्वा एतानि वैश्वानरस्य सामानि यत्र वा एतै रशान्तैः स्तुवन्ति तत् प्रजा देवोघातुको भवत्यग्निमुपनिधाय स्तुवते स्वाया एव तद्देवतायाः साम्येक्षाय नमस्कृत्योद्गायति शान्तैः स्तुवन्ति ।। ९।।

तृतीयः खण्डः

वाग्वै शबली तस्यास्त्रिरात्रो वत्सस्त्रिरात्रो वा एतां प्रदापयति ।।१।। तद्य एवं वेद तस्मा एषा प्रत्ता दुग्धे ।। २।। योऽलमन्नाद्याय सन्नथान्नं नाद्यात् ।। ३।। वरासीं परिधाय तप्तं पिबन् द्वादशरात्रीरधः शयीत ।। ४।। या द्वादशीस्यात्तस्या उपव्युषं— शबलीहोमंहुत्वा पुरा वाग्भ्यः सम्प्रवदितोर्यत्र ग्रामस्य पशोर्न्नशृणुयात्तदरण्यं परेत्यदर्भस्तम्बमालभ्य शबलि शबलीति त्रिराह्वयेद्यदच्छुनश्च गर्दभाच्च प्रतिवाश्यते सा समृद्धा ।। ५।। यदि न प्रतिवाश्येत संवत्सरे पुनराह्वयेत् ।। ६।। शबलि समुद्रोऽसि विश्वव्यचा ब्रह्म देवानां प्रथमजा ऋतस्यान्नमसि शुक्रमसि तेजोऽस्यमृतमसि तां त्वा विद्म शबलि दीद्यानान्तस्यास्ते पृथिवी पादोन्तरिक्षं पादो द्यौः पादः समुद्रः पाद एषासि शबलि तां त्वां विद्मसानइषमूर्जं धुक्ष्ववसोर्द्धाराःशबलि प्रजानाःशचिष्ठा व्रतमनुगेषंस्वाहा ।। ७।।

चतुर्थः खण्डः

चतुष्टोमोऽग्निष्टोम एकविंश उक्थ्यः सर्व्वस्तोमोऽतिरात्रः ।। १।। प्रजापतेर्वा अक्ष्यश्वयत्तत्परापतत्तदश्वोऽभवत्तदश्वस्याश्वत्वं तद्देवा अश्वमेधेन प्रत्यदधुरेष वाव प्रजापतिंसर्वं करोति योऽश्वमेधेन यजते ।। २।। एष वाव सशरीरः सम्भवत्यमुष्मै लोकाय योऽश्वमेधी ।। ३।। सरघा वा अश्वस्य सक्थ्या बृहत्तद्देवाश्चतुष्टोमेन प्रत्यदधुर्य्यच्चतुष्टोमो भवत्यश्वस्य सर्वत्वाय ।। ४।।

यत्तिस्रोऽनुष्टुभश्चतस्रो गायत्रीः करोति तस्मात्त्रिभिस्तिष्ठन् प्रतितिष्ठति सर्वान् पलायमानः प्रतिदधाति ।।५।। अन्तो वा अश्वः पशूनामन्तोऽनुष्टुप्च्छन्दसामन्तोविष्णुर्देवतानामन्तश्चतुष्टोम-स्तोमानामन्तस्त्रिरात्रो यज्ञानां यद्वैष्णव्योऽनुष्टुभः प्रतिपदो भवन्ति चतुष्टोमस्तोमस्त्रिरात्रो यज्ञोऽन्त एव तदन्तं प्रतिष्ठापयति ।।६।। एकविंशमहर्भवति यस्मिन्नश्व आलभ्यत एकविंशो वा इतोऽसावादित्यो द्वादशमासाः पञ्चर्त्तवस्त्रय इमे लोका असावादित्य एकविंश आदित्यस्यैवैनं मात्रां गमयति ।।७।। तस्य महानाम्न्यः पृष्ठं भवति ।।८।। अन्यदन्यद्वा एताश्छन्दोऽन्योन्य एते पशव अलभ्यन्त एता वा एतंसमाप्नुवन्ति यन्महानाम्न्यः पृष्ठं भव-न्त्यश्वस्य सर्वत्वाय ।।९।। पार्थुरश्मं ब्रह्मसाम भवति ।।१०।। ईश्वरा वा एषोऽयतोधृतः परां परावतमेतो रश्मिना वा अश्वोधृतो यत्पार्थुरश्मं ब्रह्मसाम भवत्यश्वस्यैवयत्यै ।।११।। सर्वस्तोमोऽतिरात्रो भवति सर्वस्याप्त्यै सर्वस्य जित्यै सर्वमेवैतेनाप्नोति सर्वं जयति ।।१२।। एकयूपोवैकादशिनी वान्येषां यज्ञानां भवत्येकविंशिन्यश्वमेधस्य खादिरो वा वैल्वो वा पार्णो वान्येषां यज्ञानां भवति नैचुदार एकविंशत्यरत्निरश्वमेधस्य नान्येषां पशूनां तेदन्या अवद्यन्त्यवद्यन्त्यश्वमेधस्य दक्षिणतोऽन्येषां पशूनामवद्यन्त्युत्तरतोऽश्व-मेधस्य प्लक्षणखास्वन्येषां पशूनामवद्यन्ति वेतस शाखास्वश्व-मेधस्य ये ग्राम्यान्पशून्नियुञ्जन्त्यारोकेष्वारण्यां धारयन्त्या ग्राम्यान्पशून् लभन्ते प्रारण्यान् सृजन्ति ।।१३।।

पञ्चमः खण्डः

त्रयस्त्रिवृतोऽतिरात्राः सर्वे षोडशिमन्तः ।।१।। यो राज्य आशंसेत स एतेन यजेत ।।२।।

राजा वा एष स्तोमानाꣳराज्यमेवास्मिन्दधाति ।। ३।। यदाक्षाराणि प्रथममहर्भजन्त एकाक्षरो वै वाग्वाचो नतिवादाय ।। ४।। अथ यत् द्व्यक्षरणिधनमाज्यदोहं भवत्युत्तरयोरह्नोरभि सन्तत्या अन्वह–माज्यदोहानि भवन्त्यन्वहमेवैनं पशुभिः समर्द्धयन्ति ।। ५।। सर्व्वे षोडशिमन्तो भवन्तीन्द्रियं वीर्य्यं षोडशीन्द्रियेणैवैनान् वीर्य्येण समर्द्धयति ।। ६।।

षष्ठः खण्डः

चतुर्विंꣳशाः पवमानास्त्रिवृत्याज्यानि पञ्चदशानि पृष्ठानि सप्तदशोऽग्निष्टोमश्चतुश्चत्वारिꣳशाः पवमानाः पञ्चदशान्याज्यानि सप्तदशानि पृष्ठान्येकविꣳशोऽग्निष्टोमः सोक्थोऽष्टाचत्वारिꣳशाः पवमाना एकविꣳशान्याज्यानि त्रिणवानि पृष्ठानि त्रयस्त्रिꣳशोग्निष्टोम एकविꣳशान्युक्थानि सषोडशिकानि पञ्चदशी रात्रिस्त्रि–वृत्सन्धिश्छन्दोम पवमानः ।। १।। पशुकामो यजेत ।। २।। पशवो वै छन्दोमा यच्छन्दोमाः पवमाना भवन्ति पशूनेवावरुन्धे ।। ३।। उभयेस्तोमा युग्मन्तश्चायुजश्च तन्मिथुनं तस्मान्मिथुनात्प्रजायते ।। ४।।

सप्तमः खण्डः

त्रिवृत्प्रातःसवनं, पञ्चदशं माध्यन्दिनꣳसवनं सप्तदशं तृतीयसवनं चतुर्विꣳशं प्रातः सवनं चतुश्चत्वारिꣳशं माध्यन्दिनꣳसवनमष्टा–चत्वारिꣳशं तृतीयसवनꣳसोक्थमेकविꣳशं प्रातः सवनं, त्रिणवं माध्यन्दिनꣳसवनं, त्रयस्त्रिꣳशं तृतीयसवनꣳसोक्थमेकविꣳशः षोडशी, पञ्चदशी रात्रिस्त्रिवृत् सन्धिरन्तर्वसुः ।। १।। इमे लोकास्त्रिरात्रः ।। २।। अस्तीव वा अयं लोकोऽस्तीवासौ छिद्रमिवान्तरिक्षम् ।। ३।। अस्तीव त्रिरात्रस्य प्रथममहरस्तीवोत्तमं छिद्रमिव मध्यतः ।। ४।।

पशवो वै छन्दोमायच्छन्दोमा मध्यतो भवन्त्यपिहित्या–एवाच्छिद्रतायै ।।५।।

अष्टम: खण्ड:

त्रिवृत् प्रात:सवनं, पञ्चदशं माध्यन्दिनꣳसवनꣳसप्तदशं तृतीयसवनं, एकविꣳशं प्रात:सवनं, त्रिणवं माध्यन्दिनꣳसवनं, त्रयस्त्रिꣳशं तृतीय सवनꣳसोक्थं चतुर्विꣳशं प्रात:सवनं चतुश्चत्वारिꣳशं माध्यन्दिनꣳसवनमष्टाचत्वारिꣳशं तृतीयसवनꣳ–सोक्थमेकविꣳश: षोडशी, पञ्चदशी रात्रि स्त्रिवृत्सन्धि: पराक: ।।१।। पराकेण वै देवा: स्वर्गं लोकमायन् स्वर्गकामो यजेत पराङेवैतेन स्वर्गं लोकमाक्रमते ।।२।। यद्वा एतस्याकन्तदस्य पराक् तत् पराक्तस्य पराकत्वम् ।।३।। न वै तत्र जग्मुषे किञ्चनाकम् ।।४।। नास्माअकं भवति य एवं वेद ।।५।। प्रजायास्वत्क्लृप्त: पराङ्ह्येवैतेन स्वर्गं लोकमाक्रमते तद्यदेकविꣳश: षोडशी भवति पञ्चदशी रात्रिस्त्रि–वृत्सन्धिस्तेनास्मिन् लोके प्रतितिष्ठति ।।६।।

नवम: खण्ड:

चतुर्विꣳशा: पवमानास्त्रिवृन्त्याज्यानि पञ्चदशानि पृष्ठानि, सप्तदशोऽग्निष्टोमश्चतुर्विꣳशा: पवमाना:, पञ्चदशान्याज्यानि, सप्तदशानि पृष्ठान्ये कविꣳशोऽग्निष्टोम:, सोक्थश्चतुर्विꣳशा: पवमाना:, सप्तदशान्याज्यान्येकविꣳशानि पृष्ठानि, त्रिणवोऽग्निष्टोम:, सोक्थश्चतुर्विꣳशा: पवमाना, एकविꣳशान्याज्यानि, त्रिणवानि पृष्ठानि, त्रयस्त्रिꣳशोऽग्निष्टोम, एकविꣳशान्युक्थानि, सषोडशिकानि, पञ्चदशी रात्रिस्त्रिवृत्सन्धि: ।।१।। अत्रिरकामयत चत्वारो मे वीरा आजायेरन्निति स एतमपश्यत्तस्य चत्वारो वीरा आजायन्तास्य चत्वारोवीरा जायन्ते य एवं वेद ।।२।।

एकꣳस्तोममुत्सृज्यैकमभ्यारभते वीरजननं वै स्तोमो वीरमेवास्मै तत् प्रजनयति ।।३।। चतुर्विꣳशाः पवमाना भवन्ति चतुर्विꣳशत्यक्षरा गायत्री प्रजननं गायत्री प्रजात्यै ।।४।। उभये स्तोमायुग्मन्तश्चा–युज्यश्चतन्मिथुनं तस्मान्मिथुनात् प्रजायते ।।५।। अग्निष्टोमः प्रथममहरुक्थो द्वितीयꣳषोडशी तृतीयमतिरात्रश्चतुर्थं नानावीर्य्यतायै ।।६।। नानावीर्य्याण्यहानि करोति ।।७।। गायत्रं वै प्रथममहस्त्रैष्टुभं द्वितीयं जागतं तृतीयमानुष्टुभं चतुर्थम् ।।८।। तदाहुर्य्यत् तृतीयेहनि षोडशिनं गृह्णीयुस्तृतीयेनाह्नानुष्टुभमाप्नुयु–रच्छन्दश्चतुर्थमहः स्यादानुष्टुभो वै षोडशीति ।।९।। चतुर्थेऽहनि षोडशी ग्रहीतव्यः स्व आयतने षोडशी गृह्यते ।।१०।। छन्दोभिरहानि नानावीर्य्याणि करोति ।।११।। नौधसं प्रथमस्याह्नो ब्रह्मसाम श्यैतं द्वितीयस्य श्रायन्तीयं तृतीयस्य त्रैशोकं चतुर्थस्य ।।१२।। तदाहुरपभ्रꣳश इव वा एष यत् ज्यायसः छन्दोऽधिकनीयश्छन्द उपैतीति ।।१३।। तद्यदेषा चतुर्थेऽहन्यतिजगती क्रियतेऽनप–भ्रꣳशाय ।।१४।। कालेयं प्रथमस्याह्नोच्छावाकसाम माधुच्छन्दसं द्वितीयस्य रौरवं तृतीयस्य समन्तं चतुर्थस्य नानावीर्यतायै नानावीर्य्याण्यहानि करोति ।।१५।। 'अभि त्वा वृषभा सुत'इति तृतीयस्याह्नो रथन्तरं 'कस्तमिन्द्र त्वा वसवि'ति वामदेव्यं 'यज्जा यथा अपूर्व्ये'ति चतुर्थस्याह्नो बृहत् 'एदु मधोर्मदिन्तरमि'ति वामदेव्यं छन्दसां नानावीर्यतायै नानावीर्य्याण्यहानि करोति ।।१६।।

दशमः खण्डः

त्रिवृत्पञ्चदशोग्निष्टोमः प्रथममहः ।।१।। अथोत्तरस्याह्नश्चतुर्विꣳशं बहिष्पवमानं पञ्चदशानि त्रीण्याज्यानि, सप्तदशमच्छावाकस्यैकविꣳशो माध्यन्दिनः पवमानः सप्तदशे द्वे पृष्ठे, एकविꣳशे द्वे, एकविꣳशं तृतीय सवनꣳसोक्थम् ।।२।।

तृतीयस्याह्न एकविंशं बहिष्पवमानं त्रीणि चाज्यानि, पञ्चदशमच्छावाकस्य, चतुर्विंशो माध्यन्दिनः पवमान, एकविंशानि पृष्ठानि त्रिणवं तृतीयसवनं, द्वे चोक्थे, एकविंशमच्छा-वाकस्य ॥३॥ चतुर्थस्याह्नश्चतुर्विंशाः पवमानाः पञ्चदशं-होतुराज्यंसप्तदशानि, त्रीण्येकविंशानि पृष्ठानि, त्रयस्त्रिंशोग्निष्टोम, एकविंशान्युक्थानि स षोडशिकानि, पञ्चदशी रात्रिस्त्रिवृत्सन्धिः ॥४॥ जमदग्निः पुष्टिकाम एतमाहरत्स इमान् पोषनपुष्यत् ॥५॥ यदिदमाहुर्नवा ऊर्वौपलितौ संजानाते इति ॥६॥ तत्सर्वानिवैतेन पोषान् पुष्यति ॥७॥ जगती छन्दोभिः सम्पद्यते ॥८॥ जगती वै छन्दसां परमं पोषं पुष्टा परममेवैतेन पोषं पुष्यति ॥९॥ पुरोडाशिन्य उपसदो भवन्ति पशवो वै पुरोडाशाः पशुष्वेव प्रतितिष्ठति ॥१०॥ अग्ने वेर्होत्रं वेरध्वरमापितरं वैश्वानर-मवसेऽकरिन्द्राय देवेभ्यो जुहुता हविः स्वाहा ॥११॥ देवावश्विनौ मधुकशयाद्येमं यज्ञं यजमानायमिमिक्षतमिन्द्राय देवेभ्यो जुहुताहविः स्वाहा ॥१२॥ देव विष्ण उर्वद्यास्मिन्यज्ञे यजमानायाधिविक्रमस्वेन्द्राय देवेभ्यो जुहुताहविः स्वाहा ॥१३॥ देव सोम रेतोधा अद्यास्मिन्यज्ञे यजमानायैधीन्द्राय देवेभ्यो जुहुताहविः स्वाहा ॥१४॥ देव सवितः सुसावित्रमद्यास्मिन्यज्ञे यजमानायासुवस्वेन्द्राय देवेभ्यो जुहुताहविः स्वाहा ॥१५॥ देव धातुः सुधाताद्यास्मिन्यज्ञे यजमानायैधीन्द्राय देवेभ्यो जुहुताहविः स्वाहा ॥१६॥ देवा ग्रावाणो मधुमतीमद्यास्मिन्यज्ञे यजमानाय वाचं वदतैन्द्राय देवेभ्यो जुहुताहविः स्वाहा ॥१७॥ देव्यनुमतेऽन्वद्येमं यज्ञं यजमानाय मन्यस्वेन्द्राय देवेभ्यो जुहुताहविः स्वाहा ॥१८॥ देव्यदितेस्वादित्यमद्यास्मिन्यज्ञे यजमानायासुवस्वेन्द्राय देवेभ्यो जुहुताहविः स्वाहा ॥१९॥

देव्य आपो नन्नम्यध्वमद्यास्मिन्यज्ञे यजमानायेन्द्राय देवेभ्यो जुहुताहविः स्वाहा ।। २० ।। सदःसदः प्रजावानृभुर्जुषाण इन्द्राय देवेभ्यो जुहुताहविः स्वाहा ।। २१ ।। देव त्वष्टा सुरेतोधा अद्यास्मिन्यज्ञे यजमानायैधीन्द्राय देवेभ्यो जुहुता हविः स्वाहा ।। २२ ।। आग्नेय एककपाल, आश्विनौ द्विकपालो वैष्णवस्त्रिकपालः, सौम्यश्चतुष्कपालः, सावित्रः पञ्चकपालो, धात्रः षट्कपालो, मारुतः सप्तकपालो, बार्हस्पत्योऽष्टाकपालो, मैत्रो नवकपालो, वारुणो दशकपाल, ऐन्द्र एकादश कपालो, वैश्वदेवो द्वादशकपालः ।। २३ ।।

एकादशः खण्डः

त्रिवृत् प्रातःसवनं, पञ्चदशं माध्यन्दिनꣳसवनꣳसप्तदशं तृतीयसवनं, पञ्चदश प्रातःसवनꣳसप्तदशं माध्यन्दिनꣳ–सवनमेकविꣳशꣳतृतीयसवनꣳसोक्थꣳसप्तदशं प्रातःसवनमेकविꣳशं माध्यन्दिनꣳसवनं, त्रिणवं तृतीय सवनꣳ, सोक्थमेकविꣳशं प्रातःसवनं त्रिणवं माध्यन्दिनꣳसवनं, त्रयस्त्रिꣳशं तृतीय सवनं, प्रत्यवरोहीण्युक्थानि, त्रिणवं प्रथमं, द्वे एकविꣳशे सषोडशिके, पञ्चदशी रात्रिस्त्रिवृत् सन्धिः ।। १ ।। वसिष्ठः पुत्रहतो हीन इवामन्यत स एतमपश्यत्सोग्रं पर्यैद्योहीन इव मन्येत स एतेन यजेत ।। २ ।। यत् स्तोमात् स्तोममभिसंक्रामत्यग्रादेवाग्रꣳ रोहति वसिष्ठस्य जनित्रे भवतः प्रजात्यै ।। ३ ।। प्रत्यवरोहीण्युत्तमस्याह्न उक्थानि भवन्ति प्रतिष्ठित्यै ।। ४ ।।

द्वादशः खण्डः

त्रिवृदग्निष्टोमः पञ्चदशउक्थः सप्तदशउक्थ एकविꣳशोऽतिरात्रो विश्वामित्रस्य सञ्जयः ।। १ ।।

जह्नुवृचीवन्तो राष्ट्र आहिंसन्त स विश्वामित्रो जाह्नवो राजैतमपश्यत् स राष्ट्रमभवदराष्ट्रमितरे ।। २।। भ्रातृव्यवान्यजेत ।। ३।। भवत्यात्मना परास्य भ्रातृव्यो भवति य एवं वेद ।।४।। ज्योतिर्वा एष विह्नतः ।।५।। ज्योतिः प्रजानां भवति य एवं वेद ।। ६।। चतुष्टोमो वा एष चतुष्पादाः पशवः पशुष्वेव प्रतितिष्ठति ।। ७।। एकविꣳशंस्तोमानातियन्ति प्रतिष्ठा वा एकविꣳशोऽन्तत एव यज्ञस्य प्रतितिष्ठति ।। ८।।

त्रयोदशः खण्डः

द्वे त्रिवृतो सवने पञ्चदशमेकं, द्वे पञ्चदशे सवने सप्तदशमेकं, द्वे सप्तदशे सवने एकविꣳशमेकं, द्वे एकविꣳशे सवने त्रिणवमेकं, द्वे त्रिणवे सवने त्रयस्त्रिꣳशमेकं प्रत्यवरोहीण्युक्थानि, त्रिणवं प्रथमं द्वे एकविꣳशे सषोडशिके, पञ्चदशी रात्रिस्त्रिवृत्सन्धिः ।।१।। देवाश्च वा असुराश्चास्पर्द्धन्त ते न व्यजयन्त तेऽब्रुवन् वाचो मिथुनेन विजयामहै यतरेनो वाचो मिथुनं न प्रतिविन्दाꣳस्ते पराभवानिति ते देवा एक इत्यब्रुवन्नेकेत्यसुरा वाचो मिथुनं प्रत्यविन्दन् द्वाविति देवा अब्रुवन् द्वे इत्यसुरा वाचो मिथुनं प्रत्यविन्दꣳस्त्रय इति देवा अब्रुवꣳस्तिस्र इत्यसुरा वाचो मिथुनं प्रत्यविन्दꣳश्चत्वार इति देवा अब्रुवꣳश्चतस्र इत्यसुरा वाचो मिथुनं प्रत्यविदन् पञ्चेति देवा अब्रुवन्नासुरा अविन्दꣳस्ततो देवा अभवन् परासुराः ।। २।। भवत्यात्मना परास्य भ्रातृव्यो य एवं वेद ।। ३।। संवत्सरं वा एषान्तद्वीर्यमन्नाद्यमवृंजत।। ४।। संवत्सरं वीर्यमन्नाद्यं भ्रातृव्यस्य वृङ्क्ते य एवं वेद ।।५।। पञ्चरात्रो वा एष पाङ्क्तः पुरुषः पाङ्क्ताः पशव स्तेन पुरुषञ्च पशूँश्चाप्नोति ।। ६।। अस्थूरिर्वा एष सन्ततो यज्ञो द्वौ द्वौ हि स्तोमावहर्वहतो यं कामं कामयते तमेतेनाभ्यश्नुते ।।७।।

यत्र यत्र ह्यस्थूरिणा कामयते तत्तदभ्यश्नुते ।।८।। अभ्यासंग्यः पञ्चाहो भवति सन्तत्यै ।।९।। प्रत्यवरोहीण्युत्तमस्याह्न उक्थानि भवन्ति प्रतिष्ठित्यै ।।१०।।

चतुर्दशः खण्डः

त्रिवृदग्निष्टोमः पञ्चदशउक्थः सप्तदशउक्थः पञ्चदशउक्थः सप्तदशोऽतिरात्रः पञ्चशारदीयो मरुतांःस्तोमः ।।१।। यः कामयते बहु स्यामिति स एतेन यजेत ।।२।। मरुतो वै देवानां भूयिष्ठा बहुरेव भवति ।।३।। सप्तदशंःस्तोमानातियन्ति प्रजापतिर्वै सप्तदशः प्रजापतिमेवाप्नोति ।।४।। अगस्त्यो वै मरुद्भ्य उक्ष्णः प्रौक्षत्तानिन्द्राया बध्नात्ते वज्रमादायाभ्यपतन् स एतत्कयाशुभीयमपश्यत्ते- नाशमयत् ।।५।। यत् कयाशुभीयं शस्यंते शान्त्या एव ।।६।। सप्तदश पृश्नीनुक्ष्णः पञ्चवर्षात्सप्तदश पृश्नीस्त्रिवत्सा अप्रवीतास्तान् पर्यग्निकृतान् प्रोक्षितानेतरा लभन्ते प्रेतरान् सृजन्ति ।।७।। ततः संवत्सरे नवनीतपृश्नीररुणा आनयन्ति तांःश्चैवोक्ष्णस्तान् पर्यग्निकृतान् प्रोक्षितानेतरालभन्ते प्रेतरान् सृजन्ति ततः संवत्सरे राजीवा आनयन्ति ताँश्चैवोक्ष्णस्तान् पर्यग्निकृतान् प्रोक्षितानेतरालभन्ते प्रेतरान् सृजन्ति ततः संवत्सरे पिशङ्गीरानयन्ति तांःश्चैवोक्ष्णस्तान् पर्यग्निकृतान् प्रोक्षितानेतरालभन्ते प्रेतरान् सृजन्ति ततः संवत्सरे सारङ्गीरानयन्ति ताँश्चैवोक्ष्णस्तान् पर्यग्निकृतान् प्रोक्षितानेतरा लभन्ते प्रेतरान् सृजन्ति ।।८।। ततः संवत्सरे सोमा भवन्ति ।।९।। त्रींःस्त्रीनवहमालभन्ते पञ्चोत्तमेऽहनि ।।१०।। अजोऽग्नी- षोमीयः ।।११।। ऐन्द्रामारुता उक्षाणो मारुत्यो वत्सतर्य्यः ।।१२।। यदि रुद्रोऽभिमन्येताग्नये रुद्रवते पुरोडाशमष्टाकपालं निरूप्याथान्यमालभेत ।।१३।।

यदि सꣳशीर्य्येत भौममेककपालं निरूप्याथान्यमालभेत ।।१४।। यद्यवसीदे नैरृतं चरुं निरूप्याथान्यमालभेत यद्यप्सुम्रियेतापोनप्त्रीयं चरुं निरूप्याथान्यमालभेत यद्यन्धः स्यात् सौर्यं चरुं निरूप्याथान्य–मालभेत ।।१५।। यदि श्लवणो वा कूटो वा स्याद् बार्हस्पत्यं चरुं निरूप्याथान्यमालभेत ।।१६।। यदि पलायेत वायव्यं चरुं निरूप्याथान्यमालभेत ।।१७।। यदि प्रासहाजयेयुरिन्द्राय प्रसह्वन एकादशकपालं निरूप्याथान्यमालभेत ।।१८।। यद्यन्येन मृत्युना म्रियेत प्राजापत्यं द्वादश कपालं निरूप्याथान्यमालभेत ।।१९।। एतेन वा एकया वा गान्दमो वेतस्तीष्ट्वा सर्वामृद्धिमाद्ध्नोंत् ।। २०।। सर्वामृद्धिमृद्ध्नोति य एवं वेद।। २१।।

पञ्चदशः खण्डः

ज्योतिष्टोमोऽग्निष्टोमो गौरुक्थो महाव्रतं गौरुक्थ–आयुरतिरात्रः ।।१।। संवत्सरो वै व्रतं तस्य वसन्त ऋतुर्मुखं ग्रीष्मश्च वर्षाश्च पक्षौ शरन्मध्यꣳ हेमन्तः पुच्छम् ।। २।। तस्माच्छरदमोषधयोऽभिसंपच्यन्ते शरद्धिमध्यꣳसंवत्सरस्य ।। ३।। अकृतं वा एते कुर्वन्ति ये पुरा संवत्सरात् व्रतमुपयन्ति ।।४।। एतद्वै व्रतमाप्तं यत्पञ्चरात्रे पञ्चह्यृतवः ।।५।। आप्तेन व्रतेनस्तुते सर्वमायुरेति य एवं वेद ।।६।।

।।इति एकविंशोऽध्यायः।।



द्वाविंशोऽध्यायः

प्रथमः खण्डः

पृष्ठ्यः षडहः ।।१।। ऋतवो न प्रत्यतिष्ठंस्त एतेन प्रत्यतिष्ठन् प्रतिष्ठाकामो यजेत प्रत्येव तिष्ठति ।।२।। षड्वा ऋतव ऋतुष्वेवैतेन प्रतितिष्ठति पृष्ठ्यः षडहो भवति प्रत्यक्षमृध्यै ।।३।। प्रत्यक्षं ह्येतेनर्त्तव आर्ध्नुवन्नृध्या एव ।।४।।

द्वितीयः खण्डः

त्रिवृदग्निष्टोमः पञ्चदशउक्थः सप्तदशउक्थो ज्योतिर्गौरायु–रतिरात्रः ।।१।। यः कामयेत सर्वमायुरियामिति स एतेन यजेत ।।२।। यत्त्र्यहः पुरस्ताद्भवति त्रयः प्राणापानव्यानास्त एवतत्सन्धीयन्ते ।।३।। अथ यत् ज्योतिर्गौरायुरतिरात्रो भवति प्रतिष्ठित्यै ।।४।।

तृतीयः खण्डः

अभ्यासंग्य पञ्चाहो विश्वजिदतिरात्रः ।।१।। अन्यस्मै वै कामाय सत्रमन्यस्मै यज्ञो न तत्सत्रेणाप्नोति यस्मैकं यज्ञो न तद्यज्ञेनाप्नोति यस्मैकं सत्रम् ।।२।। सत्रमिव वा एतद्यदनुलोमं पृष्ठानि यदेकधा पृष्ठानि भवन्त्येकधैवास्मिंस्तदोजोवीर्य्यन्दधाति ।।३।। अन्नं पृष्ठान्यन्नाद्यमेवास्मिन्दधाति ।।४।। पशवः पृष्ठानि पशुष्वेव प्रतितिष्ठति ।।५।। अभ्यासंग्य पञ्चाहो भवति सन्तत्यै ।।६।। विश्वजिदतिरात्रो भवति विश्वस्याभिजित्यै ।।७।।

चतुर्थः खण्डः

पृष्ठ्यः षडहो महाव्रतमतिरात्रः ।।१।।

सप्तऋषय एतेनार्ध्नुवꣳस्तेनर्द्धिस्तस्मादेतेन यजन्त ऋध्द्या एव ।। २ ।। सप्तशिरसि प्राणाः प्राणा इन्द्रियाणीन्द्रियाण्ये वै तेनाप्नोति ।। ३ ।। सप्त ग्राम्याः पशवस्तानेतेनाप्नोति ।। ४ ।। व्रतꣳ–सप्तमस्याह्नः पृष्ठं भवति तद्ध्यनाप्तमन्नं वै व्रतमन्नाद्य–मेवैतेनाप्नोति ।। ५ ।। पृष्ठ्यः षडहो भवति प्रत्यक्षमृध्यै ।। ६ ।। प्रत्यक्षꣳह्येतेन सप्त ऋषय आर्ध्नुवन्नृद्ध्या एव ।। ७ ।।

पञ्चमः खण्डः

पृष्ठ्यः षडहः सप्तदशं महाव्रतमतिरात्रः ।। १ ।। तस्य त्रिवृच्छिरः पञ्चदशौ पक्षौ सप्तदशआत्मैकविꣳशं पुच्छम् ।। २ ।। एतेन वै प्रजापतिः प्रजा असृजत ।। ३ ।। प्र प्रजया प्र पशुभिर्जायते य एवं वेद ।। ४ ।। सप्तदशो वै प्रजापतिर्यत् सप्तदशं व्रतं भवति प्रजापतिमेवाप्नोति ।। ५ ।। यत् त्रिवृच्छिरो भवति नवप्राणाः प्राणेष्वेव प्रतितिष्ठति ।। ६ ।। यत्पञ्चदशौ पक्षौ सवीवधत्वाय ।। ७ ।। सप्तदश आत्मा भवति प्रजापतिर्वै सप्तदशः प्रजापतिमेवाप्नोति ।। ८ ।। एकविꣳशं पुच्छं भवति प्रतिष्ठित्यै ।। ९ ।।

षष्ठः खण्डः

पृष्ठ्यः षडहश्छन्दोम पवमानं महाव्रतमतिरात्रः ।। १ ।। पशुकामो यजेत ।। २ ।। पशवो वै छन्दोमाः ।। ३ ।। यच्छन्दोमाः पवमाना महाव्रतस्य भवन्ति पशूनेवावरुन्धे ।। ४ ।। उभये स्तोमा युग्मन्तश्चायुजश्च तन्मिथुनं तस्मान्मिथुनात् प्रजायते ।। ५ ।।

सप्तमः खण्डः

अभ्यासंग्यः पञ्चाहोऽथ त्रयस्त्रिꣳशमहस्तस्य चतुस्त्रिꣳ–शोऽग्निष्टोमः सप्तदशं महाव्रतमतिरात्रस्तस्य चतुर्विꣳशं बहिष्पवमानं

त्रिवृच्छिरः पञ्चदशौ पक्षौ सप्तदश आत्मैकविंशं पुच्छम् ।।१।। एतेन वै जमदग्निः सर्वान् पोषानपुष्यत्सर्वानेवैतेन पोषान्पुष्यति ।।२।। यदभ्या संग्यः पञ्चाहः पुरस्ताद्भवति सन्तत्या एव ।।३।। अथैत त्त्रयस्त्रिंशमहस्त्रिंशद्देवता देवता एवाप्नोति ।।४।। तस्य चतुस्त्रिंशोऽग्निष्टोमः प्रजापतिश्चतुस्त्रिंशो देवतानां प्रजापतिमेवाप्नोति ।।५।। चतुर्विंशं बहिष्पवमानं भवति महाव्रतस्य चतुर्विंशत्यक्षरा गायत्री प्रजननं गायत्री प्रजात्यै ।।६।। उभये स्तोमा युग्मन्तश्चायुजश्च तन्मिथुनं तस्मान् मिथुनात् प्रजायते ।।७।। यत्त्रिवृच्छिरो भवति नव प्राणाः प्राणेष्वेव प्रतितिष्ठति यत् पञ्चदशौ पक्षौ सवीवधत्वाय सप्तदश आत्मा भवति प्रजापतिर्वै सप्तदशः प्रजापतिमेवाप्नोत्येकविंश पुच्छं भवति प्रतिष्ठित्यै ।।८।।

अष्टमः खण्डः

ज्योतिष्टोमोग्निष्टोऽमो गौरुक्थंआयुरुक्थ्योऽभिजिदग्निष्टोमो विश्वजिदग्निष्टोमः सर्वजिदग्निष्टोमः सर्वस्तोमोऽतिरात्रः ।।१।। एतेन वा इन्द्रोऽत्यन्या देवता अभवदत्यन्या प्रजा भवति य एवं वेद ।।२।। यत् ज्योतिर्गौरायुस्त्र्यहः पुरस्ताद्भवति प्रज्ञातान् स्तोमानुपैतीमानेव लोकानेष्वेव लोकेषु प्रतितिष्ठति ।।३।। अथाभिजिदभिजिता वै देवा इमान् लोकानभ्यजयन्विश्वजिता विश्वमजयन् सर्वजिता सर्वमजयन् ।।४।। सर्वस्तोमोऽतिरात्रो भवति सर्वस्याप्त्यै सर्वस्य जित्यै सर्वमेवैतेनाप्नोति सर्वं जयति ।।५।।

नवमः खण्डः

चत्वारि त्रिवृन्त्यहान्यग्निष्टोममुखानि विश्वजिन्महाव्रतं ज्योतिष्टोमोऽतिरात्रः ।।१।।

एतेन वै प्रजापतिः पुरुषमसृजत स सर्वस्यान्नाद्य-स्याधिपत्यमगच्छत् ।। २।। सर्वस्यान्नाद्यस्याधिपत्यं गच्छति य एवं वेद ।। ३।। शिरो वा अग्रे सम्भवतः सम्भवति चतुर्द्धाविहितं वै शिरः प्राणश्चक्षुः श्रोत्रं वागात्मा वै पृष्ठानि यत्पृष्ठान्युपैति शिरएवात्मानमनुसन्दधाति ।।४।। एतद्वै पुरुषमकस्तस्मा अन्नमेव व्रतमपि दधाति ।। ५।। अथ यत् ज्योतिष्टोमोऽतिरात्रो भवत्यक्लृप्तस्य क्लृप्त्यै ।। ६।।

दशमः खण्डः

पृष्ठ्यः स्तोमः षडहोविश्वजिदतिरात्रः ।।१।। अन्यस्मै वै कामाय सत्रमन्यस्मै यज्ञेन तत्सत्रेणाप्नोति यस्मैकं यज्ञो न तद्यज्ञेनाप्नोति यस्मैकं सत्रंꣳसत्रमिव वा एतद्यदनुलोमं पृष्ठानि यदैकधा पृष्ठानि भवत्येकधैवास्मिꣳस्तदोजोवीर्य्यं दधात्यन्नं पृष्ठान्यन्नाद्यमेवास्मिन् दधाति पशवः पृष्ठानि पशुष्वेव प्रतितिष्ठति ।। २।। यद्वै मनुष्याणां प्रत्यक्षं तद्देवानां परोक्षमथ यन्मनुष्याणां परोक्षं तद्देवानां प्रत्यक्षम् ।। ३।। एतद्वै परोक्षं व्रतं यद्विश्वजित् प्रत्यक्षमेवैतेनान्नाद्यमव-रुन्धे ।।४।।

एकादशः खण्डः

पृष्ठ्यः षडहो महाव्रतं ज्योतिष्टोमोऽतिरात्रः ।।१।। एतेन वै देवा देवत्वमगच्छन् ।। २।। देवत्वं गच्छति य एवं वेद ।। ३।। एतद्वै व्रतमाप्तं यदष्टरात्रेऽग्निष्टोमो हि व्रतꣳसम्पद्यते ।।४।। अथ यत् ज्योतिष्टोमोऽतिरात्रो भवत्यक्लृप्तस्य क्लृप्त्यै ।। ५।। अष्टरात्रेण वै देवाः सर्वमाश्नुवत ।। ६।। सर्वमश्नुते य एवं वेद ।।७।।

द्वादशःखण्डः

पृष्ठ्यः षडहो ज्योतिर्गौरायुरतिरात्रो देवा वै मृत्योरविभयुस्ते प्रजापतिमुपाधावꣲस्तेभ्य एतेन नवरात्रेणामृतत्वं प्रायच्छत् ।।१।। एतद्वाव मनुष्यस्यामृतत्वं यत् सर्वमायुरेति वसीयान् भवति ।।२।। सर्वमायुरेति वसीयान् भवति य एवं वेद ।।३।। नवरात्रो वा एष नव प्राणाः प्राणेष्वेव प्रतितिष्ठति ।।४।। पृष्ठ्यः षडहो भवति प्रत्यक्षमृद्ध्या अथ यत् ज्योतिर्गौरायुरतिरात्रो भवति प्रतिष्ठित्यै ।।५।।

त्रयोदशः खण्डः

ज्योतिष्टोमोऽग्निष्टोमो गौरुक्थ्य आयुरुक्थ्योऽभ्यासंग्यः पञ्चाहो विश्वजिदतिरात्रः पशुकामो यजेत ।।१।। यत् ज्योतिर्गौरायुस्त्र्यहः पुरस्ताद्भवति प्रज्ञातान् स्तोमानुपैतीमानेव लोकानेष्वेव लोकेषु प्रतितिष्ठति ।।२।। अथ यदभ्यासंग्य पञ्चाहो मध्यतो भवति पाङ्क्तः पुरुषः पाङ्क्ताः पशवस्तेन पुरुषं च पशूꣳश्चाप्नोति ।।३।। विश्वजिदतिरात्रो भवति विश्वस्याभिजित्यै ।।४।।

चतुर्दशः खण्डः

त्रिवृदग्निष्टोमः पञ्चदश उक्थ्यस्त्रिवृदग्निष्टोमः सप्तदशोऽग्निष्टोम एकविꣳश उक्थ्यः सप्तदशोऽग्निष्टोमस्त्रिणवोऽग्निष्टोमस्त्रयस्त्रिꣳश उक्थ्यास्त्रिणवोऽग्निष्टोमो विश्वजिदतिरात्रः ।।१।। इन्द्रोऽसुरान् हत्वाऽकार्यञ्चकृवाँ अमन्यत तं देवा एतेन स्तोमेनाजयन् स पाप्मनो नैर्दश्यमगच्छत् ।।२।। तस्मादिषुवतो वा दण्डहतो वा दशमीं नैर्दश्यं गच्छति ।।३।। दश दशिनी वा एषा विराडन्नं विराडन्नाद्यमेवास्मिन् दधाति ।।४।।

अग्निष्टोमेन वै देवा असुरान्निगृह्य मध्यत उक्थ्यैः प्रजया पशुभिः प्राजायन्ताग्निष्टोमेनैव भ्रातृव्यं निगृह्य मध्यत उक्थ्यैः प्रजया प्रजायते ॥५॥ त्रिककुब्वा एष यज्ञः ॥६॥ त्रिककुप् समानानाञ्च प्रजानाञ्च भवति य एवं वेद ॥७॥

पञ्चदशः खण्डः

त्रयस्त्रिवृतोऽग्निष्टोमास्त्रयः पञ्चदश उक्थ्यास्त्रयः सप्तदश उक्थ्या एकविंशोऽतिरात्रः कुसुरुविन्ददशरात्रः ॥१॥ यः कामयेत बहुस्यामिति स एतेन यजेत ॥२॥ यद्गणशः स्तोमा बहुरेव भवति ॥३॥ सह त्रिवृतः सह पञ्चदशाः सह सप्तदशाः ॥४॥ एकविंशोऽतिरात्रो भवति प्रतिष्ठित्यै ॥५॥ ज्योतिर्वा एष विहृतः ॥६॥ ज्योतिष्प्रजानां भवति य एवं वेद ॥७॥ चतुष्टोमो वा एष चतुष्पादाः पशवः पशुष्वेव प्रतितिष्ठति ॥८॥ एकविंशंस्तोमानातियन्ति प्रतिष्ठा वा एकविंशः प्रत्येव तिष्ठति ॥९॥ एतेन वै कुसुरुविन्द औद्दालकिरिष्ट्वा भूमान–माश्नुत ॥१०॥ भूमानमश्नुते यः एवं वेद ॥११॥

षोडशः खण्डः

अभ्यासंग्यः पञ्चाहश्चत्वारश्छन्दोमा विश्वजिदतिरात्रः पशुकामो यजेत ॥१॥ यदभ्यासंग्यः पञ्चाहः पुरस्ताद्भवति पाङ्क्तः पुरुषः पाङ्क्ताः पशवस्तेन पुरुषञ्च पशूंश्चाप्नोति ॥२॥ छन्दोमा मध्यतो भवन्ति पशवो वै छन्दोमाः पशूनामवरुध्यै ॥३॥ विश्वजिदतिरात्रो भवति विश्वस्याभिजित्यै ॥४॥

सप्तदशः खण्डः

त्रिष्टोमोऽग्निष्टोमो ज्योतिरुक्थ्यस्त्रिष्टोमोऽग्निष्टोमो गौरुक्थ्योभिजिदग्निष्टोमो गौरुक्थ्यो विश्वजिदग्निष्टोम आयुरुक्थ्यो

विश्वजिदग्निष्टोमस्य सर्वस्तोमोऽतिरात्रः ।।१।। देवा वा असुरैर्हन्यमानास्ते प्रजापतिमुपाधावꣳ स्तेभ्य एतां देवपुरं प्रायच्छत् तां प्राविशन् ।।२।। अभिचार्य्यमाणं याजयेदेतामेवदेवपुरं प्रविशत्यस्तुत्यै ।।३।।

अष्टादशः खण्डः

अभ्यासंग्यः षडहस्त्रयश्छन्दोमाश्चतुष्टोमोऽग्निष्टोमो विश्वजि-दतिरात्रः ।।१।। स्वाराज्यो वा एष यज्ञः ।।२।। स्वाराज्यं गच्छति य एवं वेद ।।३।। प्रजापतिर्हि स्वाराज्यं परमेष्ठी स्वाराज्यम् ।।४।। परमेष्ठितां गच्छति य एवं वेद ।।५।। उभे बृहद्रथन्तरे भवतस्तद्धि स्वाराज्यमयुतं दक्षिणास्तद्धि स्वाराज्यं षड्विꣳशस्तोमो भवति स हि स्वाराज्यं चतुष्टोमस्तोमः स ह्यन्तोऽन्तं श्रिया गच्छति य एवं वेद ।।६।। एतेन वै क्षेम धृत्वा पौण्डरीक इष्ट्वा सुदाम्नस्तीर उत्तरे ।।७।। सर्व्वामृद्धिमादर्ध्नोत् सर्वामृद्धिमाध्नोंति य एवं वेद ।।८।।

अहीनः समाप्तः

।।इति द्वाविंशोऽध्यायः।।



त्रयोविंशोऽध्याय:

प्रथम: खण्ड:

अतिरात्र: पृष्ठ्य: षडह: सर्वस्तोमोऽतिरात्रश्चत्वारश्छन्दोमा अतिरात्र: ।।१।। एष वा आप्तो द्वादशाहो यत् त्रयोदशरात्रय: ।।२।। स्मानोह्येष यत् प्रायणीयश्चोदयनीयश्चातिरात्रौ यं कामं कामयन्ते तमेताभिरभ्यश्नुवते ।।३।। गृहपतेस्तु वागुपदासुका भवति तद्यन्मध्ये सर्वस्तोमोऽतिरात्रो भवति तेन गृहपतेर्वागनुपदासुका भवति ।।४।। एता वा अर्य्यलगृहपतय आरुणि होतार: सुभगा सूपयन्ति ते सर्वामृद्धिमार्ध्नुवन् सर्वामृद्धिमार्ध्नुवन्ति य एता उपयन्ति ।।५।।

द्वितीय: खण्ड:

अतिरात्रो द्वादशाहस्य दशाहनि महाव्रतं चातिरात्रश्च ।।१।। वाग्वा एषा प्रतायते यदेष द्वादशाहस्तां विच्छिन्द्युर्यन्मध्येऽतिरात्रं कुर्यु: ।।२।। यदुपरिष्टाद् व्रतमुपयन्ति न वाचं विच्छिन्दन्त्याप्नुवन्ति त्रयोदशं मासम् ।।३।। एता वै प्रतिष्ठितास्त्रयोदशरात्रय: प्रतितिष्ठन्ति य एता उपयन्ति ।।४।।

तृतीय: खण्ड:

अतिरात्र: पृष्ठ्य: षडह: पृष्ठ्य: षडहस्त्रयस्त्रिंशारम्भणोऽतिरात्र: ।।१।। कामसनयो वा एता रात्रय: ।।२।। विराड्दि दशात्मैकादशी प्रजा द्वादशी पशवस्त्रयोदशी कामाय चतुर्दशी ।।३।। सर्वानिवैताभि: कामानवरुन्धते ।।४।। एता वाव ब्रध्नस्य विष्टपो यदेतौ त्रयस्त्रिंशौ मध्यत: सन्धीयेते तेन ब्रंध्नस्य विष्टपंरोहन्ति ।।५।।

द्विःपृष्ठान्युपयन्त्यभिपूर्वमेवैताभिरन्नाद्यं दधते ।। ६।। पक्षिण्यो वा एता रात्रयो यं कामं कामयन्ते तमेताभिरभ्यश्नुवते ।। ७।। यत्र यत्र हि पक्षी कामयते तत्तदभ्यश्नुते ।। ८।। त्रिवृता प्रयन्ति त्रिवृतोद्यन्ति प्राणा वै त्रिवृत् स्तोमानां प्राणैरेव प्रयन्ति प्राणेषु प्रतितिष्ठन्ति ।। ९।।

चतुर्थः खण्डः

अतिरात्रो ज्योतिर्गौरायुस्त्र्यहः पृष्ठ्यः षडह आयुर्गौर्ज्योति–रतिरात्रः ।।१।। याꣳस्तल्पे वोदके वा विवाहे वा मीमाꣳसेरꣳस्त एता उपेयुः ।। २।। यत् ज्योतिर्गौरायुस्त्र्यहः प्रज्ञाताꣳस्तो–मानुपयन्ति ।। ३।। इमानेव लोकानेष्वेव लोकेषु प्रतितिष्ठन्ति ।। ४।। अथ यत् पृष्ठ्यः षडहोमध्यतो भवत्येष वाव देवतल्पो देवतल्पमेव तदारोहन्ति तल्प्या भवन्ति ।। ५।। प्रवसीयसस्तल्पमाप्नुवन्ति ।। ६।। अथ यदायुर्गौर्ज्योतिरात्रोयेनेतोयन्ति तेन पुनरायन्ति ।।७।।

पञ्चमः खण्डः

अतिरात्रो गौश्चायुश्च द्वे अहनी द्वादशाहस्य दशाहान्यतिरात्रः ।।१।। यद्गौश्चायुश्च द्वे अहनी भवतो मिथुनौ स्तोमावुपयन्ति प्रजात्यै ।। २।। अथ यानि द्वादशाहस्य दशाहानि वाचमविछिन्नामुपयन्ति प्रजननाय ।। ३।। एता वै प्रतिष्ठिताश्च–तुर्दशरात्रयः प्रतितिष्ठन्ति य एता उपयन्ति ।। ४।।

षष्ठः खण्डः

अतिरात्रः पृष्ठ्यः षडहो महाव्रतं पृष्ठ्यः षडहस्त्रयस्त्रिꣳशारम्भणोऽति रात्रः ।।१।। एताभिर्वै देवा देवत्वमगच्छन् देवत्वं गच्छन्ति य एता उपयन्ति ।। २।। एतद्वै देवानाꣳसत्रं तदद्यापि देवाः सत्रमासते ।। ३।।

पौर्णमास्यतिरात्रोऽथ यानि षडहानि स पृष्ठ्यः षडह एकाष्टका महाव्रतमथ यानि षडहानि स पृष्ठ्यः षडहोऽमावास्यातिरात्रः ।।४।। तस्मात्तर्हिं मनुष्याणां न सुतो देवानां हि तर्हिं सुतः प्रत्यक्षमेवै– ताभिर्देवता अभ्यारोहन्ति ।।५।। प्रतिनोदात्तुभय्यमितरमनुपक्षो दीक्षेरन्नप्रतिनोदाय ।।६।।

सप्तमः खण्डः

अतिरात्रस्त्रिवृदग्निष्टुष्टोमो ज्योतिर्गौरायुस्त्र्यहः पृष्ठ्यः षडह आयुर्गौर्ज्योतिरतिरात्रः ।।१।। क्षत्रं वा एता रात्रयोऽभि निर्वदन्ति ।। २।। ब्रह्मवर्च्चसकामा उपेयुः ।। ३।। यत् त्रिवृदग्निष्टोमो भवति ब्रह्म तद्यशसार्द्धयति ।।४।। ब्रह्म वै त्रिवृत् ।।५।। यत् ज्योतिर्गौरायुस्त्र्यहः प्रज्ञातान् स्तोमानुपयन्तीमानेव लोकानेष्वेव लोकेषु प्रतितिष्ठन्त्यथ यत् पृष्ठ्यः षडहो मध्यतो भवत्यन्नं वै पृष्ठान्यन्नमेव तन्मध्यतो धीयते तस्मान्मध्ये सदन्नं धिनोत्यथ यदायुर्गौर्ज्योतिरतिरात्रोयेनेतोयन्ति तेनपुनरायन्ति ।।६।।

अष्टमः खण्डः

त्रिवृदग्निष्टुदग्निष्टोमो ज्योतिर्गौरायुस्त्र्यहो द्वादशाहस्य दशाहा– न्यतिरात्रः ।।१।। अन्यस्मै वै कामाय सत्रमन्यस्मै यज्ञो न तत् सत्रेणाप्नोति यस्मैकं यज्ञो न तद्यज्ञेनाप्नोति यस्मैकंꣳसत्रम् ।। २।। यदन्यतोऽतिरात्रास्तेन यज्ञोऽथ यानि द्वादशाहस्य दशाहानि तेन सत्रम् ।। ३।। उभावेवैताभिः कामाववरुन्धते ।।४।।

नवमः खण्डः

अतिरात्रो ज्योतिर्गौरायुस्त्र्यहो द्वादशाहस्य दशाहान्यतिरात्रः प्रजाकामा उपेयुः ।।१।।

एताभिर्वै प्रजापति: प्रजा असृजत प्र प्रजया प्र पशुभि–र्जायन्ते य एता उपयन्ति ।। २।। यत् ज्योतिर्गौरायुस्त्र्यह: प्रज्ञातान् स्तोमानुपयन्तीमानेव लोकानेष्वेव लोकेषु प्रतितिष्ठन्ति ।। ३।। अथ यानि द्वादशाहस्य दशाहानि वाचमविच्छिन्नामुपयन्ति प्रजननाय ।। ४।। एता वै प्रतिष्ठिता: पञ्चदशरात्रय: प्रतितिष्ठन्ति एता उपयन्ति ।। ५।।

दशम: खण्ड:

एता एव समहाव्रता: ।। १।। एताभिर्वा इन्द्र: परमां विजितं व्यजयत परमामेवैताभिर्विजितिं विजयन्ते ।। २।। पञ्चदशो वै वज्रो न वा अगृहीतेन वज्रेण वीर्य्यं करोति या षोडश्यारम्भणमेव तद्गृहीतेन वज्रेण वीर्यं करोति ।। ३।।

एकादश: खण्ड:

अतिरात्रो ज्योतिर्गौरायुर्गौरायु: पञ्चाहो द्वादशाहस्य दशाहान्यतिरात्र: ।। १।। एताभिर्वै प्रजापतिरनन्ताश्श्रियमजदनन्ता वा एता यत् पञ्चाहविधा: ।। २।। यत् पञ्चाहोऽनन्तादेव प्रजायन्ते ।। ३।। अथ यानि द्वादशाहस्य दशाहानि वाचविच्छिन्नामुपयन्ति प्रजननाय ।। ४।। एता वै प्रतिष्ठिता: सप्तदशरात्रय: प्रतितिष्ठन्ति य एता उपयन्ति ।। ५।।

द्वादश: खण्ड:

अतिरात्रोऽभिप्लव: षडहो द्वादशाहस्य दशाहान्यतिरात्र: ।। १।। देवा वै मृत्यरविभयुस्ते प्रजापतिमुपाधावंस्तेभ्य एतेनाष्टादश–रात्रेणामृतत्वं प्रायच्छत् ।। २।। एतद्वाव मनुष्यस्यामृतत्वं यत् सर्वमायुरेति वसीयान् भवति ।। ३।। सर्वमायुर्य्यन्ति वसीयांस्सो भवन्ति य एता उपयन्ति ।। ४।। द्विर्वा एता नव नव प्राणा अभिपूर्वमेवैताभिरायुर्दधते ।। ५।।

त्रयोदशः खण्डः

एता एव समहाव्रताः ।।१।। एताभिर्वै वायुरारण्यानां पशूनामाधिपत्यमाश्नुतोभयेषां पशूनामाधिपत्यं गच्छन्ति य एता उपयन्ति ।। २।। मृगसत्रं वा एतत् ।। ३।। एताभिर्वा आरण्याः पशवो नाकृताः प्रजायन्ते ।। ४।। अनाकृतमेषां प्रजायते य एता उपयन्ति ।। ५।।

चतुर्दशः खण्डः

अतिरात्रोऽभिप्लवः षडहोऽभिजिच्च विश्वजिच्च द्वे अहनी द्वादशाहस्य दशाहान्यतिरात्रः ।।१।। पुरुषकामा उपेयुरेताभिर्वै प्रजापतिः पुरुषममसृजत ।। २।। स सर्वस्यान्नाद्यस्याधिपत्यमगच्छत् सर्वस्यान्नाद्यस्याधिपत्यं गच्छन्ति य एता उपयन्ति ।। ३।। पुरुषसत्रं वा एतत् ।।४।। विꣳशो वै पुरुषो दश हि हस्त्या अङ्गुल्यो दशपाद्याः ।।५।। यदेता विꣳशतीरात्रयो भवन्त्येष्वेवैताभिर्ल्लोकेषु पुरुषं प्रतिष्ठापयन्ति ।।६।। एता वै प्रतिष्ठिता विꣳशतीरात्रयः प्रतितिष्ठन्ति य एता उपयन्ति ।।७।।

पञ्चदशः खण्डः

अतिरात्रोऽभिप्लवः षडहोऽतिरात्रोभिप्लवः षडहोऽभिप्लवः षडहोऽतिरात्रः पशुकामा उपेयुः ।।१।। एताभिर्वा आदित्याः सप्त ग्राम्यान् पशूनुदसृजन्त पशूनेवैताभिरुत्सृजन्ति ।। २।। त्रिर्वै सप्त सप्तादित्याः ।। ३।। पशव आदित्याः ।।४।। आदित्या अस्मिंल्लोकऋद्धा आदित्या अमुष्मिन् ।।५।। पशवोऽस्मिन् ऋतवोऽमुष्मिन् ।।६।। उभयोरनयोर्लोकयोर्ऋध्नवन्ति देवलोके च मनुष्यलोके च एता उपयन्ति ।।७।।

षोडशः खण्डः

अतिरात्रः पृष्ठ्यः षडहस्त्रयः स्वरसामानो दिवाकीर्त्यमहस्त्रयः स्वरसामानः पृष्ठ्यः षडहस्त्रयस्त्रिꣳशारम्भणोऽतिरात्रो ब्रह्मवर्च्चस-कामाउपेयुः ॥१॥ स्वर्भानुर्वा आसुरः सूर्यं तमसाविध्यत्तस्मै देवाः प्रायश्चित्तिमैच्छꣳस्तएता अविन्दꣳस्ताभिरस्मात्तमोऽपाघ्नन् ॥२॥ अपतमोघ्नते य एता उपयन्ति ॥३॥ सौमपौषं पशुमुपालभ्य-मालभेरन् ॥४॥ सोमो वै ब्राह्मणः पशवः पूषा स्वामेव तद्देवतां पशुभिर्वꣳहयन्ते त्वचमेवाक्रत ॥५॥ मनोर्ऋचः सामिधेन्यो भवन्ति ॥६॥ मनुर्वै यत् किञ्चावदत्तद्भेषजं भेषजतायै ॥७॥ नैदाघीय उपेयुः ॥८॥ तद्ध्येष प्रतितेजिष्ठं तपति ॥९॥ किलासत्वात्तुभयमतिह्वेभ्योऽपहन्ति ॥१०॥ एता वा उग्रदेवो राजनिरुपैत् स किलासोऽभवत् ॥११॥ अकिलासो भवति य एवं विद्वानेता उपैति ॥१२॥

सप्तदशः खण्डः

अतिरात्रो ज्योतिर्गौरायुस्त्र्यहोऽभिप्लवः षडहो द्वादशाहस्य दशाहानि महाव्रतञ्चातिरात्रश्चान्नाद्यकामा उपेयुः ॥१॥ पञ्चर्त्तवो द्वादशमासास्त्रय इमे लोका असावादित्य एकविꣳशोन्नं द्वाविꣳशमेभ्यो लोकेभ्यः संवत्सरादमुष्मादादित्यादन्नाद्यमवरुन्धते य एता उपयन्ति ॥२॥

अष्टादशः खण्डः

अतिरात्रो ज्योतिर्गौरायुर्गौरायुः पञ्चाहोऽभिप्लवः षडहो द्वादशाहस्य दशाहान्यतिरात्रः प्रतिष्ठाकामा उपेयुः ॥१॥ एताभिर्वै प्रजापतिरेषु लोकेषु प्रत्यतिष्ठत् ॥२॥

यदेतास्त्रयोविꣳशतीरात्रयो भवन्ति त्रय इमे लोका एष्वेवैताभिर्ल्लोकेषु प्रतितिष्ठन्ति ॥३॥ एता वै प्रतिष्ठिता स्त्रयोविꣳशती रात्रयः प्रतितिष्ठन्ति य एता उपयन्ति ॥४॥

एकोनविंशः खण्डः

अतिरात्रः पृष्ठ्यः स्तोमः षडहस्त्रयस्त्रिꣳशमहरनिरुक्तमुपहव्यस्य तन्त्रे क्लृप्तन्तस्य कण्वरथन्तरं मध्यन्दिनेऽथ त्रयस्त्रिꣳशं निरुक्तं त्रिणवं द्वे एकविꣳशे त्रिणवं त्रयस्त्रिꣳशमहर्निरुक्तं त्रयस्त्रिꣳ—शमहरनिरुक्तं पृष्ठ्यः स्तोमः षडहः प्रत्यङ्त्रिवृदहरनिरुक्तं ज्योतिष्टोमोऽग्निष्टोमोऽतिरात्रः ॥१॥ एताभिर्वै देवाः स्वर्गे लोके समसीदन् स्वर्गे लोके सीदामेत्येताः ॥२॥ एता वाव ब्रध्नस्य विष्टपोयदेते त्रयस्त्रिꣳशा मध्यतः सन्धीयन्ते तेन ब्रध्नस्य विष्टपꣳरोहन्ति ॥३॥ मध्यतः पृष्ठान्युपयन्त्यन्नं वै पृष्ठान्यन्नमेव तन्मध्यतो धीयते तस्मान्मध्ये सदन्नं धिनोति ॥४॥ सप्ताहा वा एते ॥५॥ अतो वै प्रजाः प्रजायन्ते ॥६॥ प्र प्रजया प्र पशुभिर्जायन्ते य एता उपयन्ति ॥७॥ अपशव्यं वा एतत् सत्रं यदच्छन्दोमं यत्सप्ताहास्तेन छन्दोमवत्यस्तेन पशव्याः ॥८॥ त्रयस्त्रिꣳश स्त्रयस्त्रिꣳशमन्वेति त्रिवृत् त्रिवृतमग्रादग्रꣳरोहन्ति यत्त्रयस्त्रिꣳशत्त्रयस्त्रिꣳशमन्वेति प्राणात् प्राणेषु प्रतितिष्ठन्ति ॥९॥ यत् त्रिवृत् त्रिवृतम् ॥१०॥ विलोमानो वा एता रात्रयो यज्ज्योतिरग्निष्टोम उत्थानीयमहर्भवत्यक्लृप्तस्य क्लृप्त्यै ॥११॥

विंशः खण्डः

अतिरात्रो द्वावभिप्लवौ षडहौ द्वादशाहस्य दशाहान्यतिरात्रः प्रजाकामा वा पशुकामावोपेयुः ॥१॥

क्लृप्ताद्वै योनेः प्रजाः पशवः प्रजायन्ते यत् क्लृप्तौ षडहावुपयन्ति क्लृप्तादेव योनेः प्रजया पशुभिः प्रजायन्ते ।। २।। अथ यानि द्वादशाहस्य दशाहानि वाचमविच्छिन्नामुपयन्ति प्रजननाय ।। ३।। एता वै प्रतिष्ठिताश्चतुर्विंशती रात्रयः प्रतितिष्ठन्ति य एता उपयन्ति ।। ४।।

एकविंशः खण्डः

एता एव समहाव्रताः ।।१।। एताभिर्वै प्रजापतिः सर्वमन्नाद्यमवारुन्ध ।। २।। चतुर्विंशतिः संवत्सरस्यार्द्धमासाः संवत्सरः पञ्चविंशोऽन्नं व्रतं संवत्सरादेताभिरन्नाद्यमवरुन्धते य एता उपयन्ति ।। ३।।

द्वाविंशः खण्डः

अतिरात्रो गौश्चायुश्च द्वे अहनी द्वावभिप्लवौ षडहौद्वादशाहस्य दशाहान्यतिरात्रः ।।१।। ऋतवो न प्रत्यतिष्ठंस्त एताभिः प्रत्यतिष्ठन् प्रतिष्ठाकामा उपेयुः प्रत्येव तिष्ठन्ति ।। २।। षड्वा ऋतव ऋतुष्वेवै–ताभिः प्रतितिष्ठन्ति ।। ३।। यद्गौश्चायुश्च द्वे अहनी भवतो मिथुनौ स्तोमावुपयन्ति प्रजात्यै ।। ४।। यत् क्लृप्तौ षड्हावुपयन्ति क्लृप्त्या एव ।। ५।। अथ यानि द्वादशाहस्य दशाहानि वाचमविच्छिन्नामुपयन्ति प्रजननाय ।। ६।। एता वै प्रतिष्ठिता षड्विंशतीरात्रयः प्रतितिष्ठन्ति य एता उपयन्ति ।।७।।

त्रयोविंशः खण्डः

अतिरात्रो ज्योतिर्गौरायुस्त्र्यहो द्वावभिप्लवौ षडहौ द्वादशाहस्य दशाहान्यतिरात्र ऋद्धिकामा उपेयुः ।।१।। एताभिर्वै नक्षत्राणि सर्वामृद्धिमार्ध्नुवन् सर्वामृद्धिमृध्नुवन्ति य एता उपयन्ति ।। २।।

यदेताः सप्तविंशतीरात्रयो भवन्ति सप्तविंशतिर्नक्षत्राणि नक्षत्रसम्मिता वा एता रात्रयो नक्षत्राणामेवर्द्धिमृध्नुवन्ति ।। ३ ।।

चतुर्विंशः खण्डः

एता एव समहाव्रताः पशुकामा उपेयुर्य्यदेता अष्टाविंशतीरात्रयो भवन्त्यष्टाशफाः पशवः शफशएवैताभिः पशूनवरुन्धते ।। १ ।।

पञ्चविंशः खण्डः

अतिरात्रो ज्योतिर्गौरायुर्गौरायुः पञ्चाहोद्वावभिप्लवौ षडहौ द्वादशाहस्य दशाहान्यातेरात्रः ।। १ ।। एताभिर्वै प्रजापतिरनन्ताः–श्रियमजयत् ।। २ ।। अनन्ता वा एता या एकया न त्रिंशन्नेति वै वाचोऽनन्तम् ।। ३ ।। यदेता एकया न त्रिंशद्रात्रयो भवन्त्यनन्तामेवैताभिः श्रियं जयन्ति ।। ४ ।।

षडविंशः खण्डः

अतिरात्रस्त्रयोऽभिप्लवा षडहाद्वादशाहस्य दशाहान्यति–रात्रोऽन्नाद्यकामा उपेयुः ।। १ ।। परोक्षमन्यानि सत्राणि विराजं सम्पद्यन्ते प्रत्यक्षमेता विराजंसम्पन्नाः ।। २ ।। प्रत्यक्षमेताभिरन्नाद्यमवरुन्धते य एता उपयन्ति ।। ३ ।।

सप्तविंशः खण्डः

एता एव समहाव्रता एताभिर्वै प्रजापतिरभिपूर्वमन्नाद्यमवा–रुन्ध ।। १ ।। अन्नं विराडन्नं व्रतम् ।। २ ।। अभिपूर्व्वमेवैताभिरन्नाद्यमव–रुन्धते ।। ३ ।।

अष्टाविंशः खण्डः

अतिरात्रो गौश्चायुश्च द्वे अहनी त्रयोऽभिप्लवाः षडहा द्वादशाहस्य दशाहान्यतिरात्रः पशुकामा उपेयुः ॥१॥ अनुष्टुब्वा एतारात्रयः ॥२॥ द्वात्रिंशदक्षरानुष्टुप् ॥३॥ वागनुष्टुप् ॥४॥ चतुष्पादाः पशवः ॥५॥ वाचापशून्दाधार ॥६॥ एताभी–रात्रीभिः ॥७॥ तस्मात्ते वाचा सिद्धा वाचाहूता आयन्ति ॥८॥

॥इति त्रयोविंशोऽध्यायः॥



चतुर्विंशोऽध्यायः

प्रथमः खण्डः

अतिरात्रस्त्रयः पञ्चाहा विश्वजिदतिरात्र एकः पञ्चाहो द्वादशाहस्य दशाहान्यतिरात्रः ।।१।। प्रजापतिः प्रजा असृजत तान् प्रत्यतिष्ठꣳस्त एताभिः प्रत्यतिष्ठन्निमे लोका न प्रत्यतिष्ठꣳस्त एताभिः प्रत्यतिष्ठन् प्रतिष्ठाकामा उपेयुः प्रत्येवतिष्ठन्ति ।।२।। अरूपेण वा एताः सरूपा अरूपेण प्रजाः सरूपा अरूपेणेमे लोकाः सरूपा यद्रथन्तरस्य लोकं बृहदापद्यते बृहतो रथन्तरमरूपेणैवैभ्यस्तत् सरूपं प्रजनयन्ति ।।३।। लुप्यते वा एतत् षष्ठमहर्य्यत् पञ्चाहानुपयन्ति नर्त्तवः कल्पन्ते यत् पृष्ठ्यः षडहस्तने षष्ठमहर्न्न लुप्यते तेनर्त्तवः कल्पन्ते ।।४।। अथ यानि द्वादशाहस्य दशाहानि तेन पञ्चाहेभ्यो न यन्ति ।।५।। ऊधर्वा अन्तरिक्षꣳस्तेनावभितोऽनेन वा एष देवेभ्यो दुग्धेऽमुना प्रजाभ्यः ।।६।। इयं वा अन्तरिक्षं वियदिमौ स्तनावभितः ।।७।। तदभ्यनूक्ता ।।८।। त्रिꣳशति त्रयः परो ये देवा बर्हिरासतव्यं न ह द्वितातनेति ।।९।। ऊधर्वै मध्यमोऽतिरात्रः स्तनावभितः ।।१०।। यदेषोऽनतिरात्रः स्यादूधः प्रतिहरेत् ।।११।। तस्मादतिरात्रः कार्य्यं ऊधसोऽप्रतिहाराय ।।१२।। त्रयस्त्रिꣳशद्देवता एताभिरार्ध्नुवꣳस्तेनर्द्धिस्तस्मादेताभिर्यजन्त ऋध्या एव ।।१३।। नाना ब्रह्मसामान्युपयन्त्यह्नां नानावीर्यतायै नानैव वीर्य्याण्येवरुन्धते ।।१४।।

द्वितीयः खण्डः

अतिरात्रोऽभिप्लवः षडहोऽतिरात्रोऽभिप्लवः षडहोऽति-रात्रोऽभिप्लवः षडहोद्वादशाहस्य दशाहानि महाव्रतञ्चातिरात्रश्च ।।१।।

आदित्याश्चाङ्गिरसश्चैतत् सत्रंऽसमदधतादित्यानामेकविंऽ–शतिरङ्गिरसां द्वादशाहआदित्या अस्मिंल्लोक ऋद्धा आदित्या अमुष्मिन्नङ्गिरसोऽस्मिन्नङ्गिरसोऽमुष्मिन् द्वयंऽसत्रं यावद्द्वयेन सत्रेणर्ध्नुवन्ति तावत्येतासामृद्धिः ।। २।।

तृतीयः खण्डः

अतिरात्रस्त्रयः पञ्चाहा विश्वजिदतिरात्रस्त्रयः पञ्चाहा अतिरात्रः ।।१।। अपशव्यं वा एतत् सत्रं यदच्छन्दोमं यद्विश्वजिति छन्दोमानुपयन्ति तेन छन्दोमवत्यस्तेन पशव्याः ।। २।। पक्षिण्यो वा एता रात्रयो यं कामं कामयन्ते तमेताभिरभ्यश्नुवते यत्र यत्र हि पक्षी कामयते तत्तदभ्यश्नुते ।। ३।। त्रिवृता प्रयन्ति त्रिवृतोद्यन्ति प्राणावै त्रिवृत् स्तोमानां प्राणैरेव प्रयन्ति प्राणेषु प्रतितिष्ठन्ति ।।४।।

चतुर्थः खण्डः

अतिरात्रो ज्योतिर्गौरायुस्तत्र्यहस्त्रयोऽभिप्लवाः षडहा द्वादशाहस्य दशाहानि महाव्रतञ्चातिरात्रश्चर्द्धिकामा उपेयुः ।।१।। एताभिर्वै प्रजापतिः सर्व्वामृद्धिमार्ध्नोत्सर्व्वामृद्धिमृध्नुवन्ति य एता उपयन्ति ।। २।। यदेताश्चतुस्त्रिंऽशद्रात्रयो भवन्ति त्रयस्त्रिंऽशद्देवताः प्रजापतिश्चतुस्त्रिंऽशो देवतानां प्रजापतेरेवर्द्धिमृध्नुवन्ति ।। ३।।

पञ्चमः खण्डः

अतिरात्रो ज्योतिर्गौरायुर्गौरायुः पञ्चाहस्त्रयोऽभिप्लवाः षडहा द्वादशाहस्य दशाहान्यतिरात्रः पशुकामा उपेयुः ।।१।। यदेताः पञ्चत्रिंऽशद्रात्रयो भवन्ति पाङ्क्ताः पशवः पशूनेवैताभिरेव–रुन्धते ।। २।।

षष्ठः खण्डः

अतिरात्रश्चत्वारोऽभिप्लवाः षडहा द्वादशाहस्य दशाहान्यतिरात्रः पशुकामा उपेयुः ।।१।। एताभिर्वै देवा आदित्यमस्तभ्नुवन्नादित्यलोकं जयन्ति य एता उपयन्ति ।।२।। बृहती वा एता रात्रयः स्वाराज्यं छन्दसां बृहती यो वै पशूनां भूमानं गच्छति स स्वाराज्यं गच्छति प्र स्वाराज्यमाप्नुवन्ति य एता उपयन्ति ।।३।।

सप्तमः खण्डः

एता एव समहाव्रताः ।।१।। एताभिर्वै प्रजापतिरुभौ कामाववा–रुन्धान्नं व्रतं पशवो बृहत्युभावेवैताभिः कामाववरुन्धते ।।२।।

अष्टमः खण्डः

अतिरात्रो गौश्चायुश्च द्वे अहनी चत्वारोऽभिप्लवाः षडहा द्वादशाहस्य दशाहान्यतिरात्रः पशुकामा उपेयुः ।।१।। यदेता अष्टात्रिंशद्रात्रयोभवन्त्यष्टाशफाः पशवः शफश एवैताभिः पशूनवरुन्धते ।।२।।

नवमः खण्डः

अतिरात्रो ज्योतिर्गौरायुस्तत्र्यहश्चत्वारोऽभिप्लवाः षडहा द्वादशाहस्य दशाहान्यतिरात्रः ।।१।। एताभिर्वै प्रजापतिरनन्तां–श्रियमजयदनन्ता वा एता या एकया न चत्वारिंशन्नेति वै वाचोऽनन्तम् ।।२।। यदेता एकया न चत्वारिंशद्रात्रयो भवन्त्यनन्तामेवैताभिः श्रियं जयन्ति ।।३।।

दशमः खण्डः

एता एव समहाव्रताः ।।१।। सर्व्वा वा एता विराजो दशिनी प्रथमा विंशिनी द्वितीया त्रिंशिनी तृतीयैषा वै परमा विराट्

यच्चत्वारिंशद्रात्रयः पङ्क्तिर्वै परमा विराट् ।। २।। परमायामेव विराजि प्रतितिष्ठन्ति ।। ३।।

एकादशः खण्डः

अतिरात्रस्त्रीणि त्रिवृन्त्यहान्यग्निष्टोममुखान्यतिरात्रो दश पञ्चदशा उक्थ्याः षोडशिमद्दशममहरतिरात्रो द्वादश सप्तदश उक्थ्या अतिरात्रो पृष्ठ्यः षडहोऽतिरात्रो द्वादशैकविंशा उक्थ्या अतिरात्रः ।।१।। प्रजापतिः प्रजा असृजत ता अविधृता असञ्जानाना अन्योन्यामादंस्तेन प्रजापतिरशोचत्स एता अपश्यत्ततो वा इदं व्यावर्त्तत गावो गावोऽभवन्नश्वा अश्वाः पुरुषाः पुरुषामृगामृगाः ।। २।। वि पाप्मना वर्त्तन्ते य एता उपयन्ति ।। ३।। यदतिरात्रा अन्तरा विधृत्यै तस्मान्नेतर इतरस्मिन्रेतो दधाति ।।४।। यत् पृष्ठ्यः स्तोमाः संसृष्टास्तस्मादजावयः पशूनांसह चरन्ति तस्मादुगर्दभो वडवायांरेतो दधाति ।।५।। अपशव्यं वा एतत्सत्रं यदच्छन्दोमं यत्सन्धिषामसु छन्दांस्युपयन्ति तेन छन्दोमवत्यस्तेन पशव्याः ।। ६।। गायत्रीषु जराबोधीयमुष्णिक्षु श्रुध्यमनुष्टुप्सु नानदं बृहतीषु रथन्तरं पङ्क्तिषु रायोवाजीयं त्रिष्टुप्स्वौशनं जगतीषु कावम् ।।७।। ऊर्ध्वानि छन्दांस्युपयन्त्यनपभ्रंशाय ।।८।। प्राणो वै स्वरोयत् स्वरावन्ततो भवतस्तस्मात् द्वावन्ततः प्राणौ ।। ९।।

द्वादशः खण्डः

अतिरात्रौ द्वावभिप्लवौ षडहौ गौश्चायुश्चातिरात्रौ द्वावभिप्लवौ षडहावभिजिच्च विश्वजिच्चातिरात्रावेकोऽभिप्लवः षडहः सर्वस्तोमश्च नव सप्तदशश्चातिरात्रो द्वादशाहस्य दशाहानि महाव्रतञ्चाति– रात्रश्च ।।१।। आदित्यानां यमातिरात्राः ।। २।।

यमेवैषाꣳश्रीर्भवति य एता उपयन्ति ।। ३ ।। एताभिर्व्वा आदित्या द्वन्द्वमार्ध्नुवन्मित्रश्चवरुणश्च धाता चार्य्यमा चाꣳशश्च भगश्चेन्द्रश्च विवस्वाꣳश्चैतासामेव देवतानामृद्धिमृध्नुवन्ति य एता उपयन्ति ।। ४ ।। तदभ्यनूक्ता ।। ५ ।। अष्टौ पुत्रासो अदितेर्य्ये जातास्तन्वं परि देवाꣳउपप्रैत् सप्तभिः परामार्त्तण्डमास्यदिति ।। ६ ।। आदित्या अस्मिंल्लोक ऋद्धा आदित्या अमुष्मिन्नुभयोरनयोर्ल्लोकयोरर्ध्नुवन्ति देवलोके च मनुष्यलोके च य एता उपयन्ति ।। ७ ।।

त्रयोदशः खण्डः

अतिरात्रश्चत्वारोऽभिप्लवाः षडहाः सर्व्वस्तोमोऽतिरात्रो द्वावभिप्लवौ षडहौ द्वादशाहस्य दशाहान्यतिरात्रः ।। १ ।। प्रजापतिः प्रजा असृजत सरूक्षोऽभवत्तꣳरूक्षं नाजानन् स आचाङ्क्ताभि– चाङ्क्त ।। २ ।। य आत्मानं नेव जानीरꣳस्त एता उपेयुर्य्यदा चाञ्जतेऽभिचाञ्जते शुभमेवात्मन्दधते जानन्त्येनान् ।। ३ ।। गौग्गुलवेन प्रातःसवने सौगन्धिकेन माध्यन्दिने सवने पैतुदारवेण तृतीयसवने ।। ४ ।। अग्निर्वै देवानाꣳहौत्रमुपैष्यञ्छरीरमधूनुत तस्य यन्माँस मासीत्तद्गुग्गुल्वभवद्यत्स्नाव तत्सुगन्धि तेजनं यदस्थि तत् पीतुदार्वेतानि वै देवसुरभीणि देवसुरभिभिरेव तदभ्यञ्जते ।। ५ ।।

चतुर्दशः खण्डः

अतिरात्रश्चतुर्विंꣳशं प्रायणीयमहस्त्रयोऽभिप्लवाः षडहा अभिजित्त्रयः स्वरसामानोदिवाकीर्त्यमहस्त्रयः स्वरसामानो विश्वजिदेकोऽभिप्लवः षडह आयुश्च गौश्च द्वे अहनी द्वादशाहस्य दशाहानि महाव्रतं चातिरात्रश्च संवत्सरसम्मिता यावती संवत्सरस्यर्द्धिस्तावत्येतासामृद्धिः ।। १ ।।

तदाहुर्य्यच्चतुर्विंश्शमहः प्रायणीयं कुर्य्युः संवत्सरमारभ्य न समापयेयुरिति त्रिवृदेव कार्य्यं प्राणावै त्रिवृत् प्राणानेवोपयन्ति ।। २।। अथो खल्वाहुश्चतुर्विंश्शमेव कार्य्यंश्समृध्यै ।। ३।। अथैते स्वरसामानः शिरो वै दिवाकीर्त्यं प्राणाः स्वरसामानो यद्दिवाकीर्त्यमभितः स्वरसामानो भवन्ति शिरस्येव तत् प्राणा धीयन्ते ।। ४।। अथ यावन्त्यौ प्राणौ तौ विश्वजिदभिजितावथैते गो आयुषी मिथुनौ स्तोमावुपयन्ति प्रजात्यै ।। ५।। अथैतानि द्वादशाहस्य दशाहानि वाचमविच्छिन्नामुपयन्ति प्रजननाय ।। ६।। अथैतद्व्रतमन्नं वै व्रतं न वा अन्यत्र मुखादन्नन्धिनोति यदुपरिष्टाद्व्रतमुपयन्ति मुखतएव तदन्नाद्यं धीयते तस्मान्मुखे सदन्नं धिनोति ।।७।। अथैतौ प्रायणीयोदयनीयावतिरात्रौ येनैव प्राणेन प्रयन्ति तमभ्युद्यन्ति ।।८।।

पञ्चदशः खण्डः

अतिरात्रो नव त्रिवृन्त्यहान्यग्निष्टोममुखः षडहोऽथ यानि त्रीण्यहान्यग्निष्टोमावभित उक्थ्यं मध्यतो नवपञ्चदशाहान्यग्निष्टोममुखः षडहोऽथ यानि त्रीण्यहान्यग्निष्टोमावभित उक्थ्यं मध्यतो नव सप्तदशान्यहान्यग्निष्टोममुखः षडहोऽथ यानि त्रीण्यहा—न्यग्निष्टोमावभित उक्थ्यं मध्यतो नवैकविंश्शान्यहान्यग्निष्टोममुखः षडहोऽथ यानि त्रीण्यहान्यग्निष्टोमावभित उक्थ्यं मध्यतो द्वादशाहस्य दशाहानि महाव्रतञ्चातिरात्रश्च ।।१।। एताभिर्वै सविता सर्व्वस्य प्रसवमगच्छत् ।। २।। सर्वस्य प्रसवं गच्छन्ति य एता उपयन्ति ।। ३।। यद्गणशः स्तोमाबहव एव भवन्ति सह त्रिवृतः सह पञ्चदशाः सह सप्तदशाः सहैकविंश्शाः सवितुर्व्वा एताः ककुभः ।।४।। ककुभः समानानां च प्रजानां च भवन्ति य एता उपयन्ति ।।५।।

षोडशः खण्डः

अतिरात्रश्चत्वारोऽभिप्लवाः षडहा महाव्रतं द्वावभिप्लवौ षडहौ द्वादशाहस्य दशाहान्यतिरात्रः ॥१॥ ऋतवो न प्रत्यतिष्ठंस्त एताभिः प्रत्यतिष्ठन् प्रतिष्ठाकामा उपेयुः ॥२॥ प्रत्येव तिष्ठन्ति षड्वा ऋतव ऋतुष्वेवैताभिः प्रतितिष्ठन्ति यत् क्लृप्तान् षडहानुपयन्ति क्लृप्त्या एव ॥३॥ अथैतद्व्रतमन्नं वै व्रतं नवा अन्यत्र मध्यादन्नन्धिनोति यद्व्रतं मध्यत उपयन्ति मध्यत एव तदन्नाद्यन्धीयते तस्मान्मध्ये सदन्नन्धिनोति ॥४॥ यत् क्लृप्तौ षडहावुपयन्ति क्लृप्त्या एव ॥५॥ अथैतानि द्वादशाहस्य दशाहानि वाचमविछिन्नामुपयन्ति प्रजननायाथैतौ प्रायणीयोदयनीयावतिरात्रौ येनैव प्राणेन प्रयन्ति तमभ्युद्यन्ति ॥६॥

सप्तदशः खण्डः

अतिरात्रः षडभिप्लवाः षडहा द्वादशाहस्य दशाहानि महाव्रतं चातिरात्रश्च ॥१॥ एताभिर्वा इन्द्राग्नी अत्यन्यादेवता अभवतामत्यन्याः प्रजा भवन्ति य एता उपयन्ति ॥२॥ इन्द्राग्नी वै देवानामोजिष्ठा भवन्ति य एता उपयन्ति ॥३॥ यत् क्लृप्तान् षडहानुपयन्ति क्लृप्त्या एवाथैतानि द्वादशाहस्य दशाहानि वाचमविच्छिन्नामुपयन्ति प्रजननायाथैतद्व्रतमथैतौ प्रायणीयोदय–नीयावतिरात्रौ येनैव प्राणेन प्रयन्ति तमभ्युद्यन्ति ॥४॥

अष्टादशः खण्डः

अतिरात्रश्चतुर्विंशं प्रायणीयमहस्त्रयोऽभिप्लवाः षडहाः पृष्ठ्यः षडहोऽभिजित् त्रयः स्वरसामानो दिवाकीर्त्यमहस्त्रयः स्वरसामानो विश्वजित्पृष्ठ्यः षडहस्त्रयस्त्रिंशारम्भण एकोभिप्लवः षडहआयुश्च

गौश्च द्वे अहनी द्वादशाहस्य दशाहानि महाव्रतञ्चातिरात्रश्च तदेतदेकषष्टिरात्रं दैवानां व्रात्यानाम् ।।१।। दैवा वै व्रात्याः सत्रमासत बुधेन स्थपतिना ते ह वा अनिर्य्याच्य वरुणꣳराजानं देवयजनं दिदीक्षुस्तान् ह वा वरुणोराजानुव्याजहारान्तरेमि वो यज्ञियाद्भा–गधेयान्न देवयानं पन्थानं प्रज्ञास्यथेति तस्मात्तेभ्यो न हविर्गृह्णन्ति न ग्रहम् ।।२।। अथ ह वै तर्हि नौषधीषु पय आसीन्न क्षीरे सर्पिर्न्न माꣳसे न मेदो न त्वचि लोमानि न वनस्पतिषु पलाशानि तद्यत एतदेकषष्टिरात्रं दैवाव्रात्या उपायꣳस्ततो वै तानि तान्येतैर्वीर्य्यैः समसृज्यन्त तेजस्वन्त्येवासन् पयस्वन्ति ।।३।। तदेष श्लोकोऽभ्यनूच्यत ।।४।। किमकर्त्तेति यत्पुत्रान् मुहुर्दैवाꣳअपृच्छत महीबुधस्यासीद्दीक्षा स क्षीरे सर्पिराहरत् ।।५।। महीं दीक्षां सौमायनो–बुधो यदुदयच्छदनन्दत्सर्वमाप्नोन्मन्माꣳसे मेदोऽधा इति ।।६।। दरिद्रा आसन् पशवः कृशाः सन्तोव्यवस्थकाः सौमायनस्य दीक्षायाꣳसममृज्यन्तमेदसेति ।।७।। तद्य एतदेकषष्टिरात्रमुपेयुस्ते देवयजनमध्यवसाय गार्हपत्यआहुतिं जुहुयुर्देव वरुण देवयजनं नो देहि स्वाहेति ते दत्ते देवयजनेन यजन्ते ।।८।। ते सर्व्वामृद्धिमा–र्ध्नुवन् सर्व्वामृद्धिमृध्नुवन्ति य एतदुपयन्ति ।।९।।

एकोनविंशः खण्डः

अतिरात्रो ज्योतिर्ग्गौरायुस्त्र्यहश्चतुर्दशाभिप्लवाः षडहा द्वादशाहस्य दशाहानि महाव्रतञ्चातिरात्रश्च ।।१।। देवा वै मृत्योरविभयुस्ते प्रजापतिमुपाधावꣳस्तेभ्य एतेन शतरात्रेणामृतत्वं प्रायच्छदेतद्वाव मनुष्यस्यामृतत्वं यत् सर्व्वमायुरेति वसीयान् भवति सर्वमायुर्य्यन्ति वसीयाꣳसो भवन्ति य एतदुपयन्ति ।।२।। अभिप्रयायमभिषुण्वन्त्यभिक्रान्त्यै समानत्राभिषुण्वन्ति प्रतिष्ठित्यै ।।३।।

विंश:खण्ड:

अतिरात्रश्चतुर्विंश्शं प्रायणीयमहश्चत्वारोऽभिप्लवा: षडहा: पृष्ठ्य: षडह: स मास: स द्वितीय: स तृतीय: स चतुर्थ: स पंचमस्त्रयोऽभिप्लवा: षडहा: पृष्ठ्य: षडहोऽभिजित् त्रय: स्वरसामानो दिवाकीर्त्यमहस्त्रय: स्वरसामानो विश्वजित् पृष्ठ्य: षडहस्त्रय स्त्रिंश्शारम्भणस्त्रयोऽभिप्लवा: षडहा: पृष्ठ्य: षडहस्त्रयस्त्रिंश्–शारम्भणश्चत्वारोऽभिप्लवा: षडहा: स मास: स द्वितीय: स तृतीय: स चतुर्थस्त्रयोऽभिप्लवा: षडहा आयुश्च गौश्च द्वे अहनी द्वादशाहस्य दशाहानि महाव्रतञ्चातिरात्रश्च ।।१।। संवत्सर ब्राह्मणं ब्राह्मणम् ।। २।।

।।इति चतुर्विंशोऽध्याय:।।



पञ्चविंशोऽध्याय:

प्रथम: खण्ड:

अतिरात्रश्चतुर्विंश्शं प्रायणीयमहर्द्वौ त्रिवृत्पञ्चदशौ षडहौ पृष्ठ्य: षडहौ द्वौ त्रिवृत्पञ्चदशौ षड़हौ स मास: स द्वितीय: स तृतीय: स चतुर्थ: स पञ्चमस्त्रयस्त्रिवृत्पञ्चदशा: षडहा: पृष्ठ्य: षडहस्त्रिवृद्बृहस्पतिस्तोमस्त्रय: स्वरसामानोदिवाकीर्त्यमहस्त्रय: स्वरसामान: पञ्चदश इन्द्रस्तोम उक्थ्य: पृष्ठ्य: षडहस्त्रयस्त्रिंश्शारम्भण एक: पञ्चदशस्त्रिवृत् षडहो, द्वादशाहस्य दशाहानि व्यूढा अग्निष्टोमास्त्रिवृत उद्भिच्च बलभिच्च द्वे अहनी द्वौ पञ्चदशस्त्रिवृतौ षडहौ पृष्ठ्य: षडहौ द्वौ पञ्चदशस्त्रिवृतौ षडहौ स मास: स द्वितीय: स तृतीय: स चतुर्थ: पञ्चदशस्त्रिवृत्षडह: पृष्ठ्य: षडह: पञ्चदशस्त्रिवृत्षडहोगौश्चायुश्च द्वे अहनीच्छन्दोम–दशाहोऽष्टाचत्वारिंश्शं प्रथममहरथचतुश्चत्वारिंश्शं चत्वारिंश्शं षट्त्रिंश्शं द्वात्रिंश्शं त्रिंश्शं द्वे अष्टाविंश्शे पञ्चविंश्शं चतुर्विंश्शम्महाव्रतञ्चातिरात्रश्च ।।१।। आदित्यानां मध्ये पृष्ठ्यम् ।। २।। मध्ये पृष्ठेन वा आदित्या: स्वर्गं लोकमाक्रमन्त यन्मध्ये पृष्ठान्युपयन्ति स्वर्गस्य लोकस्याक्रान्त्यै ।। ३।। अन्नं वै पृष्ठान्यन्नमेव तन्मध्य–तोधीयते तस्मान्मध्ये सदन्नं धिंनोति ।।४।। पशव: पृष्ठानि पशुष्वेव प्रतितिष्ठन्ति ।।५।। चक्रे वा एते साकं वृतीयत् त्रिवृत् पञ्चदशौ स्तोमौ यं कामं कामयन्ते तमेतेनाभ्यश्नुवते यत्र यत्र हि चक्रीवता कामयते तत्तदभ्यश्नुते ।।६।। अथैष त्रिवृद्बृहस्पतिस्तोम एतेन वै बृहस्पतिर्देवानां पुरोधामगच्छत् पुरोधाकामानुपेयुर्गच्छन्ति पुरोधां पुर एतान्दधते ।।७।।

अथैते स्वरसामानः शिरोवै दिवाकीर्त्यं प्राणाः स्वरसामानोयद्दिवाकीर्त्यमभितः स्वरसामानो भवन्ति शिरस्येव तत्प्राणाधीयन्ते ।।८।। अथैष पञ्चदश इन्द्रस्तोम उक्थ्य एतेन वा इन्द्रोऽत्यन्यादेवता अभवदत्यन्याः प्रजाभवन्ति य एत दुपयन्ति ।।९।। अथैतानि द्वादशाहस्य दशाहानि व्यूढा अग्निष्टोमास्त्रिवृतो मध्यतः पाप्मनो मुच्यन्त एष वाव देवतल्पो देवतल्पमेव तदारोहन्ति तल्प्या भवन्ति प्रवसीयसस्तल्पमाप्नुवन्ति ।।१०।। अथैता वुद्भिद्बलभिदावेताभ्यां वै बृहस्पतिर्देवेभ्यः पशूनुदसृजत्पशूने-वैताभ्यामुत्सृजन्ते ।।११।। अथैते गो आयुषी मिथुनौ स्तोमावुपयन्ति प्रजात्यै ।।१२।। अथैष छन्दोमदशाहश्छन्दसां दोहोऽर्व्वाञ्चिच्छन्दाᳬ-स्युपयन्ति तस्मादर्व्वाञ्चोभुञ्जन्तः पशव उपतिष्ठन्ते ।।१३।। अथैतद्व्रतमन्नं वै व्रतन्नं वा अन्यत्र मुखादन्नन्धिनोति यदुपरिष्टाद्व्रतमुपयन्ति मुखत एव तदन्नाद्यन्धीयते तस्मान्मुखे सदन्नन्धिनोति ।।१४।। अथैतौ प्रायणीयोदयनीयावतिरात्रौ येनैव प्राणेन प्रयन्ति तमभ्युद्यन्ति ।।१५।।

द्वितीयः खण्डः

अतिरात्रश्चतुर्विंᳬशं प्रायणीयमहः पृष्ठ्यः षडहश्चत्वारस्त्रि-वृतोऽभिप्लवाः षडहाः स मासः स द्वितीयः स तृतीयः स चतुर्थः स पञ्चमस्त्रयस्त्रिवृतोऽभिप्लवाः षडहाः पृष्ठ्यः षडहस्त्रिवृद्बृहस्पति-स्तोमस्त्रयः स्वरसामानोदिवाकीर्त्यमहस्त्रयः स्वरसामानः पञ्चदश इन्द्रस्तोम उक्थ्यः पृष्ठ्यः षडहस्त्रयस्त्रिᳬशारम्भण एकस्त्रिवृदभिप्लवः षडहो द्वादशाहस्य दशाहानि व्यूढा अग्निष्टोमास्त्रिवृत उद्भिच्च बलभिच्च द्वे अहनी द्वौ चत्वारस्त्रिवृतोऽभिप्लवाः षडहाः पृष्ठ्यः षडहः स मासः स द्वितीयः स तृतीयः स चतुर्थो द्वौ

त्रिवृतावभिप्लवौ षडहौ पृष्ठ्यः षडह आयुश्च गौश्च द्वे अहनी छन्दोमदशाहश्चतुर्विंꣳशं प्रथममहर्द्वे अष्टाविꣳशे त्रिꣳशं द्वात्रिꣳशं षट्त्रिꣳशञ्चत्वारिꣳशञ्चतुश्चत्वारिꣳशमष्टाचत्वारिꣳशञ्चतुर्विंꣳशम्महा-व्रतञ्चातिरात्रश्चाङ्गिरसां पुरस्तात् पृष्ठ्यम् ।।१।। पुरस्तात्पृष्ठ्येन वा अङ्गिरसः स्वर्गं लोकमाक्रमन्त यत्पुरस्तात्पृष्ठान्युपयन्ति स्वर्गस्य लोकस्याक्रान्त्यै ।।२।। अन्नं वै पृष्ठान्यन्नमेव तन्मुखतो धीयते तस्मान्मुखे सदन्नं धिनोति पशवः पृष्ठानि पशुष्वेव प्रतितिष्ठन्ति ।।३।। यदन्यच्चक्राभ्याꣳसाकं बृहद्भ्यां तत्समानमा-छन्दोमदशाहात् ।।४।। अथैष छन्दोमदशाहश्छन्दसां दोह ऊर्ध्वानि छन्दाꣳस्युपयन्त्यनपभ्रꣳशायैष वाव देवयानः पन्थाः प्रदेवयानं पन्थानमाप्नुवन्ति य एतदुपयन्त्यथैतद्व्रतम् ।।५।। अथैतौ प्रायणीयोदयनीयावतिरात्रौ येनैव प्राणेन प्रयन्ति तमभ्युद्यन्ति ।।६।।

तृतीयः खण्डः

अतिरात्रस्त्रिवृता मासं पञ्चदशेन मासꣳसप्तदशेन मासमेकविꣳशेन मासं त्रिणवेन मासं त्रयस्त्रिꣳशेन मासम्महाव्रतं त्रयस्त्रिꣳशेन मासं त्रिणवेन मासमेकविꣳशेन मासꣳसप्तदशेन मासं पञ्चदशेन मासं त्रिवृता मास मतिरात्रः ।।१।। ऋतवो न प्रत्यतिष्ठꣳस्त एतेन प्रत्यतिष्ठन् प्रतिष्ठाकामा उपेयुः प्रत्येव तिष्ठन्ति षड्वा ऋतव ऋतुष्वेवैतेन प्रतितिष्ठन्ति ।।२।। यद्व्रतं मध्यत उपयन्ति मध्यत एव तदन्नाद्यं धीयते तस्मान्मध्ये सदन्नन्धिनोति ।।३।। पक्षि वा एतत्सत्रायणं यं कामं कामयन्ते तमेतेनाभ्यश्नुवते यत्र यत्र हि पक्षी कामयते तत्तदभ्यश्नुते ।।४।। त्रिवृता प्रयन्ति त्रिवृतोद्यन्ति प्राणा वै त्रिवृत् स्तोमानां प्राणैरेव प्रयन्ति प्राणेषु प्रतितिष्ठन्ति ।।५।।

एतद्वै दृतिवातवन्तौ खाण्डव उपेतोविषुवति वातवानुत्तिष्ठति समापयति दृतिस्तस्मात्तनीयाꣳसोवातवता भूयाꣳशोदार्त्तेया: ।। ६।।

चतुर्थ: खण्ड:

मासं दीक्षिता भवन्ति ते मासि सोमं क्रीणन्ति तेषां द्वादशोपसद उपसद्भिश्चरित्वा सोममुपनह्य मासमग्निहोत्रं जुह्वति मासं दर्शपूर्णमासाभ्यां यजन्ते मासं वैश्वदेवेन मासं वरुण–प्रधासैर्म्मासिꣳसाकमेधैर्म्मासिꣳशुनाशीर्य्येण त्रिवृता मासꣳपञ्चदशेन मासꣳ सप्तदशेन मासमेकविꣳशेन मासं त्रिणवेन मासमष्टादशस्त्रयस्त्रिꣳशान्यहानि द्वादशाहस्य दशाहानि महाव्रतञ्चातिरात्रश्च ।। १ ।। अग्निहोत्रं दशहोता दर्शपूर्णमासौ चतुर्होता चातुर्म्मास्यानि पञ्चहोता साम्योऽध्वर: सप्तहोता ।। २।। एते वाव सर्वेण यज्ञेन यजन्ते य एतदुपयन्ति सर्वएव भवन्ति ।। ३।। ते सर्वे कुण्डपायिनोऽत्सरुकैश्चमसैर्भक्षयन्ति ।। ४।। यो होता सोऽध्वर्यु: स पीता य उद्गाता स नेष्टा सोऽच्छावाकोयो मैत्रावरुण: स ब्रह्मा स प्रतिहर्त्ता य: प्रस्तोता स ब्राह्मणाच्छꣳसी स ग्रावस्तुद्य: प्रतिप्रस्थाता सोऽग्नीत्स उन्नेता गृहपतिर्गृहपति: सुब्रह्मण्य: सुब्रह्मण्य: ।। ५।।

पञ्चम: खण्ड:

संवत्सरं दीक्षिता भवन्ति संवत्सरमुपसद्भिश्चरन्ति संवत्सरं प्रसुतो भवति ।। १।। तत्संवत्सरं दीक्षिता भवन्ति तप एव तेन तप्यन्तेयत्संवत्सरमुपसद्भिश्चरन्ति पुनत एव तेन यत्संवत्सरं प्रसुतोभवति देवलोकमेव तेनापियन्ति ।। २।। एतेन वै तपश्चितो देवा: सर्व्वामृद्धिमार्ध्नुवन् सर्व्वामृद्धिमृध्नुवन्ति य एत दुपयन्ति ।। ३।।

षष्ठः खण्डः

त्रयस्त्रिवृतः संवत्सरास्त्रयः पञ्चदशास्त्रयः सप्तदशास्त्रय एकविंꣳशाः प्रजापतेर्द्वादशसंवत्सरम् ।।१।। एतेन वै प्रजापतिः सर्व्वस्य प्रसवमगच्छत्सर्वस्य प्रसवं गच्छन्ति य एतदुपयन्ति ।।२।। यत् त्रयस्त्रिवृतः संवत्सरा भवन्ति तेजो ब्रह्मवर्च्चसं त्रिवृत्तेज एव ब्रह्मवर्च्चसमवरुन्धते यत् त्रयः पञ्चदशा ओजो वीर्यं पञ्चदश ओजएव वीर्यमवरुन्धते यत् त्रयः सप्तदशा अन्नं वै सप्तदशोऽन्नाद्यमेवावरुन्धते यत् त्रय एकविंꣳशाः प्रतिष्ठा वा एकविंꣳशोऽन्तत एव यज्ञस्य प्रतितिष्ठन्ति ।।३।। एतेन वै नैमिशीयाः सर्व्वामृद्धिमार्ध्नुवन् सर्व्वामृद्धिमृध्नुवन्ति य एतदुपयन्ति ।।४।। ते ह सप्तदशेभ्य एवाध्युत्तस्थुस्त उ होचुर्योनः प्रजायामृध्यातै स एतत्सत्रꣳसमापयादिति तदेतत्समीप्सन्तो ब्राह्मणाः सत्रमासते ।।५।।

सप्तमः खण्डः

नव त्रिवृतः संवत्सरा नव पञ्चदशा नव सप्तदशा नवैकविंꣳशाः शाक्त्यानाꣳषट्त्रिंꣳशत्संवत्सरम् ।।१।। एतेन वै गौरीवितिः शाक्त्यस्तरसपुरोडाशोयव्यावत्याꣳ सर्व्वामृद्धिमार्ध्नोत् सर्व्वामृद्धि-मृध्नुवन्ति य एतदुपयन्ति ।।२।। बृहती वा एतत्सत्रायणꣳस्वाराज्यं छन्दसां बृहती प्रस्वाराज्यमाप्नुवन्ति य एतदुपयन्ति ।।३।। तदेतच्छाक्त्यानां दशवीरमेषां दशवीरा जायन्ते य एतदुपयन्ति ।।४।।

अष्टमः खण्डः

पञ्चविंꣳशतिस्त्रिवृतः संवत्सराः पञ्चविंꣳशतिः पञ्चदशाः पञ्चविंꣳशतिः सप्तदशाः पञ्चविंꣳशतिरेकविंꣳशाः साध्यानाꣳ-शतसंवत्सरम् ।।१।। साध्या वै नाम देवेभ्यो देवाः पूर्व आसꣳस्त

एतत्सत्रायणमुपायंस्तेनार्ध्नुवंस्ते सगवः सपुरुषाः सर्व्वएव सह स्वर्गं लोकमायन्नेवं वाव ते सह स्वर्गंलोकं यन्ति य एतदुपयन्ति ॥ २॥ आयुर्व्वा एतत्सत्रायणंशतायुः पुरुषोयावदेवा–युस्तादवरुन्धते नह्यत्यायुषंसत्रमस्ति॥ ३॥ तदभ्यनूक्ता तानीदहानि बहुलान्यासन्या प्राचीनमुदिता सूर्य्यस्य यतः परिजार इवाचरन्त्युषा ददृशे न पुनर्य्यतीवेति ॥ ४॥ ज्योतिष्टोमस्यायनेन यन्ति ज्योतिरेव भवन्ति ॥ ५॥ एकविंशोऽन्ततः स्तोमानां भवति प्रतिष्ठा वा एकविंशोऽन्तत एव यज्ञस्य प्रतितिष्ठन्ति ॥ ६॥

नवमः खण्डः

अतिरात्रः सहस्रमहान्यतिरात्रोऽग्नेः सहस्रसाव्यम् ॥ १॥ एतेन वा अग्निः सर्व्वस्य प्रसवमगच्छत् सर्व्वस्य प्रसवं गच्छन्ति य एतदुपयन्ति ॥ २॥ अग्नेर्वै सर्वमाद्यं सर्व्वमेषामाद्यं भवति य एतदुपयन्ति ॥ ३॥ अथ यत् सहस्रसाव्यं भवति सहस्राक्षरा वै परमा विराट् परमायामेव विराजि प्रतितिष्ठन्ति ॥ ४॥

दशमः खण्डः

सरस्वत्या विनशने दीक्षन्ते ॥ १॥ तेषां द्वादश दीक्षा द्वादशोपसदः ॥ २॥ यदहरतिरात्रो भवति तदहर्व्वत्सानपा कुर्वन्ति संस्थितेऽतिरात्रे सान्नाय्येन यजन्ते ॥ ३॥ सान्नाय्येनेष्ट्वाध्वर्य्युः शम्यां परास्यति सा यत्र निपतति तद्गार्हपत्यस्ततः षट्त्रिंशतं प्रक्रमान् प्रक्रामति तदाहवनीयः ॥ ४॥ चक्रीवत् सदश्चक्रीवद्धविर्द्धानं चक्रीवदाग्नीध्रमुलूखलबुध्नोयूपः प्रकृष्य उपोप्त एव नोपरवान् खनन्ति ॥ ५॥ ते तमापूर्य्यमाणमामावास्ये नयन्ति ॥ ६॥ तेषां पौर्णमास्यां गोष्टोमस्तोमो भवत्युक्थ्यो बृहत्सामा ॥ ७॥

सꣳस्थिते गोष्टोमे पौर्णमासं निर्व्वपन्ते ते तमपक्षीयमाणं पौर्णमासेन यन्ति तेषाममावास्यायामायुष्टोमः स्तोमो भवत्युक्थ्यो रथन्तरसामा ।।८।। मित्रावरुणयोरनयनम् ।।९।। एतेन वै मित्रावरुणाविमान् लोकानाजयतामहोरात्रौ वै मित्रावरुणावहर्मि–त्रोरात्रिर्व्वरुणोऽर्द्धमासौ वै मित्रावरुणौ य आपूर्य्यते स मित्रो योऽपक्षीयते स वरुणः स एष मित्रो वरुणोरेतः सिञ्चति ।।१०।। सरस्वत्या वै देवा आदित्यमस्तभ्नुवन् सा नायच्छत् साभ्यल्वीयत तस्मात् सा नुब्जिमतीव तं बृहत्यास्तभ्नुवन् सायच्छत्तस्माद्बृहती छन्दसां वीर्य्यवत्तमादित्यꣳहि तयास्तभ्नुवन् ।।११।। प्रतीपं यन्ति नह्यन्वीपमष्ट वै पूर्व्वेण पक्षसा यन्ति ।।१२।। तद्धि प्रत्येकाप्येति ।।१३।। दृषद्वत्येव ।।१४।। दृषद्वत्या अप्ययेऽपोनप्त्रीयं चरुं निरूप्याथातियन्ति ।।१५।। चतुश्चत्वारिꣳशदाश्वीनानि सरस्वत्या विनशनात् प्लक्षः प्रास्रवणस्तावदितः स्वर्गोलोकः सरस्वती सम्मिते–नाध्वनाः स्वर्गंलोकं यन्ति ।।१६।। एतेन वै नमी साप्यो वैदेही राजाऽञ्जसा स्वर्गं लोकमैदञ्जसागामेति तदञ्जस्कीयानामञ्ज–स्कीयत्वम् ।।१७।। स एतदवभृथमभ्यवैद्य एष उत्तरेणस्थूलार्म्मꣳ–ह्रदस्तद्धास्य शतं गावः सहस्रꣳसम्पेदुः ।।१८।। शते गोष्वृषभ–मप्यृजन्ति ता यदा सहस्रꣳसम्पद्यन्तेऽथोत्थानम् ।।१९।। यदा सर्व्वज्यानिं जीयन्तेऽथोत्थानं यदा गृहपतिर्म्रियतेऽथोत्थानम् ।। २०।। यदा प्लक्षं प्रास्रवणमागच्छन्त्योत्थानम् ।। २१।। प्लक्षं प्रास्रवण–मागम्याऽग्नये कामायेष्टिं निर्व्वपन्ते तस्यामश्वां च पुरुषीं च धेनुके दत्वा ।। २२।। कारपचवं प्रति यमुनामवभृथमभ्यवयन्ति ।। २३।।

एकादशः खण्डः

अतिरात्रस्त्रिवृत्पञ्चदशमिन्द्राग्न्योरयनं गोआयुषी इन्द्रकुक्षी अतिरात्रः ।।१।।

एतेन वा इन्द्राग्नी अत्यन्यादेवता अभवतामत्यन्याः प्रजा भवन्ति य एतदुपयन्ति ।। २।। इन्द्राग्नी वै देवानामोजिष्ठा ओजिष्ठा भवन्ति य एदुपयन्ति ।। ३।। अथ यत् त्रिवृत्पंचदशमिन्द्राग्न्योरयनं गोआयुषी इन्द्रकुक्षी भवतीसंव्याथाय।। ४।।

द्वादशः खण्डः

अतिरात्रोज्योतिर्गौरायुस्त्र्यहोविश्वजिदभिजिताविन्द्रकुक्षी अतिरात्रः।।१।। एतेन वार्य्यमैतं लोकमजयत् ।। २।। यमाहुरर्य्यम्णः पन्था इत्येष वाव देवयानः पन्थाः ।। ३।। प्रदेवयानं पन्थानमाप्नुवन्ति य एतदुपयन्ति ।। ४।। तस्मादेषोऽरुणतम इव दिव उपदृशेऽरुणतमइव हि पन्थाः ।।५।। अथ यत् ज्योतिर्गौरायुस्त्र्यहो विश्वदभिजिता-विन्द्रकुक्षी भवतोऽसंव्याथाय ।। ६।।

त्रयोदशः खण्डः

संवत्सरं ब्राह्मणस्य गारक्षेत् संवत्सरं व्यर्णेनैतन्धवेऽग्नि-मिन्धीत संवत्सरे परीणह्यग्नीनादधीत ।।१।। स दक्षिणेन तोरेण दृषद्वत्या आग्नेयेनाष्टाकपालेन शम्यापरासीयात् ।। २।। इन्द्रश्च रुशमा चाऽऽशं प्रास्येतां यतरो नौ पूर्वो भूमिं पर्य्येति स जयतीति भूमिमिन्द्रः पर्यैत् कुरुक्षेत्रंऽरुशमा साब्रवीदजैषं त्वेत्यहमेवं त्वामजैषमितीन्द्रोऽब्रवीत्तौ देवेष्वपृच्छेतां ते देवा अब्रुवन्नेतावती वाव प्रजापतेर्व्वेदिर्य्यावत् कुरुक्षेत्रमिति तौ न व्यजयेताम् ।। ३।। स य आग्नेयेनाष्टाकपालेन दक्षिणेन तीरेण दृषद्वत्याः शम्यापरास्येति त्रिप्लक्षान् प्रति यमुनामवभृथमभ्यवैति तदेव मनुष्येभ्यस्तिरो भवति ।।४।।

चतुर्दशः खण्डः

आग्नेयोऽष्टाकपाल ऐन्द्र एकादशकपालो वैश्वदेवश्चरुः ।।१।। अदीक्षितः कृष्णाजिनं प्रतिमुञ्चते यददीक्षितः कृष्णाजिनं प्रतिमुञ्चते या मानुष्यृद्धिस्तां तेनर्ध्नोति ।।२।। अथ यत्तपस्तप्यते या दैवी तां तेन ।।३।। यदाग्नेयोऽष्टाकपालो भवत्यग्निमुखा वै देवता मुखतएव तद्देवता ऋद्ध्न्योत्यथो प्रातः सवनमेवं तेनाप्नोत्यथ यदैन्द्र एकादशकपालो भवत्यैन्द्रं वै माध्यन्दिनꣳसवनं माध्यन्दिन–मेव सवनं तेनाप्नोत्यथ यद्वैश्वदेवश्चरुर्भवति वैश्वदेवं वै तृतीय सवनं तृतीयसवनमेव तेनाप्नोति ।।४।। एतेन वै तुरोदेवमुनिः सर्व्वामृद्धिमार्ध्नोत्सर्व्वामृद्धिमृध्नोति य एतदुपैति ।।५।।

पञ्चदशः खण्डः

अतिरात्रावभितोऽग्निष्टोमा मध्ये सर्व्वो दशदशी संवत्सरो द्वादशो विषुवान् सर्पसामानि विषुवति क्रियन्ते ।।१।। एतेन वै सर्पा एषु लोकेषु प्रत्यतिष्ठन्नेषु लोकेषु प्रतितिष्ठन्ति य एतदुपयन्ति ।।२।। जर्व्वरो गृहपतिर्धृतराष्ट्र ऐरावतो ब्रह्मा पृथुश्रवा दौरेश्रवस उद्गाता ग्लावश्चाजगावश्च प्रस्तोतृप्रतिहर्त्तारौ दत्तस्तापसोहोता शितिपृष्ठो मैत्रावरुणस्तक्षको वैशालेयो ब्राह्मणाच्छꣳसी शिखानुशिखौ नेष्टापोतारावरुण आटोऽच्छावाक–स्तिमिर्धोदौरेश्रुतोऽग्नीत् कौतस्तावध्वर्य्यु अरिमेजयश्च जनमेजयश्चार्ब्बुदो ग्रावस्तुदजिरः सुब्रह्मण्यश्च कपिशङ्गावुन्नेतारौ षण्डकुषण्डावभि–गरापगरौ ।।३।। ऐतेन वै सर्पा अपमृत्युमजयन्नपमृत्युं जयन्ति य एतदुपयन्ति तस्मात्ते हित्वा जीर्णां त्वचमतिसर्पन्त्यपहिते मृत्युमजयन् सर्पा वा आदित्या आदित्यानामिवैषां प्रकाशो भवति य एतदुपयन्ति ।।४।।

षोडशः खण्डः

गवामयनं प्रथमः संवत्सरोऽथादित्यानामथाङ्गिरसाम् ।।१।। एतेन वै गावः प्रजातिं भूमानमगच्छन्प्रजायन्ते बहवो भवन्ति य एतदुपयन्त्येतेन वा आदित्या एषु लोकेषु प्रत्यतिष्ठन्नेषु लोकेषु प्रतितिष्ठन्ति य एतदुपयन्त्येतेन वा अङ्गिरसः स्वर्गं लोकमायन् स्वर्गं लोकं यन्ति य एतदुपयन्ति ।।२।। परआह्णारस्त्रसदस्युः पौरुकुत्सोवीतहव्यः श्रायसः कक्षीवानौशिजस्त एतत्प्रजातिकामाः सत्रायणमुपायꣳस्ते सहस्रꣳसहस्रं पुत्रानपुष्यन्नेवं वाव ते सहस्रꣳ–सहस्रं पुत्रान् पुष्यन्ति य एतदुपयन्ति ।।३।।

सप्तदशः खण्डः

अतिरात्रः सहस्रं त्रिवृतः संवत्सरा अतिरात्रः प्रजापतेः सहस्र–संवत्सरम् ।।१।। एतेन वै प्रजापतिः सर्व्वस्य प्रसवमगच्छत्सर्व्वस्य प्रसवं गच्छन्ति य एतदुपयन्ति ।।२।। एतद्वै प्रजापतिर्ज्जीर्य्यामूर–उपैत्तेन जरामपाहतापजरां घ्नते य एतदुपयन्ति ।।३।। तदेतत्प्रजापतेः सहस्रसंवत्सरमेतेन वै प्रजापतिः सर्व्वामृद्धिमार्ध्नोत् सर्व्वामृद्धि–मृध्नवन्ति य एतदुपयन्ति ।।४।।

अष्टादशः खण्डः

पञ्चपञ्चाशतस्त्रिवृतः संवत्सराः पञ्चपञ्चाशतः पञ्चदशाः पञ्चपञ्चाशतः सप्तदशाः पञ्चपञ्चाशत एकविꣳशा विश्वसृजाꣳ–सहस्रसंवत्सरम् ।।१।। एतेन वै विश्वसृजइदं विश्वमसृजन्त यद्विश्वमसृजन्त तस्माद्विश्वसृजः।। २।। विश्वमेनाननु प्रजायते य एतदुपयन्ति।। ३।। तपो गृहपतिर्ब्रह्म ब्रह्मेरापत्न्यमृतमुद्गाता भूतं प्रस्तोता भविष्यत्प्रतिहर्त्तर्त्तव उपगातार आर्त्तवाः सदस्याः सत्यꣳ–

होतर्त्तं मैत्रावरुण ओजो ब्राह्मणाच्छंसीत्विषिश्चापचितिश्च नेष्टापीतारौ यशोऽच्छावाकोऽग्निरेवाग्नीद्भगो ग्रावस्तुदूर्गुन्नेता वाक्सुब्रह्मण्यः प्राणोऽध्वर्य्युरपानः प्रतिप्रस्थाता दिष्टिर्व्विशास्ताबलं ध्रुवगोपमाशाह- विष्येष्यहोरात्राविध्मवाहौ मृत्युः शमितैतेदीक्षन्ते ।। ४।। तदेषश्लोकी 'विश्वसृजः प्रथमे सत्रमासत सहस्रसमं प्रस्तुतेन यन्तस्ते ह जज्ञे भुवनस्य गोपा हिरण्मयः शकुनो ब्रह्मनामे'ति ।। ५।। ब्रह्मणः सलोकताꣳसार्ष्टिताꣳसायुज्यं गच्छन्ति य एतदुपयन्ति ।। ६।। तदेत द्विश्वसृजाꣳसहस्रसंवत्सरमेतेन वै विश्वसृजः सर्व्वामृद्धि- मार्ध्नुवन्त्सर्व्वामृद्धिमृध्नुवन्ति य एतदुपयन्ति ।। ७।।

।।इति पञ्चविंशोऽध्यायः।।

।।इति ताण्ड्यमहाब्राह्मणम् समाप्तम्।।



॥ श्रीः॥

ॐ नमः सामवेदाय

अष्टब्राह्मणेषु पञ्चमम्

देवताध्यायब्राह्मणम्

प्रथमः खण्डः

अग्निरिन्द्रः प्रजापतिः सोमो वरुणस्त्वष्टाङ्गिरसः पूषा सरस्वतीन्द्राग्नी ॥१॥ इडानिधनानि पदनिधनानीकारणिधनानीत्याग्ने–यानि ॥२॥ सर्व्वाणि निधनवन्त्यैन्द्राण्यन्यान्यादिष्टेभ्यः ॥३॥ सर्वाणि स्वाराणि प्राजापत्यानि ॥४॥ यथा वामदेव्यम् ॥५॥ ऋक्सामानि सौमानि ॥६॥ यथौशनकावे ॥७॥ वाङ्निधनानि वारुणानि ॥८॥ यथा यज्ञायज्ञीयम् ॥९॥ अक्षरानुस्वराणि त्वष्ट्राणि ॥१०॥ यथा वारवन्तीयञ्चाभिवर्तश्च ॥११॥ स्वःपृष्ठान्याङ्गिरसानि ॥१२॥ स्वर्णिधनानि पौषाणि ॥१३॥ कया नश्चित्र आ भुवद् आ पवस्व सहस्रिणमिति वाङ्निधने सारस्वते ॥१४॥ य आनयत्परावत इत्यैन्द्राग्ने ॥१५॥ सुतꣳरयिष्ठाः सहो रयिष्ठा इत्याग्नेयैन्द्रे ॥१६॥ वसवो रुद्रा आदित्या विश्वेदेवाः ॥१७॥ वसूनां स्वाराणि रुद्राणां निधनवन्ति आदित्यानामैडानि विश्वेषां देवानां वाङ्निधनानि ॥१८॥ यथा भूयस्त्वेन प्रदेशा वर्तन्त इत्यन्तराणि ॥१९॥ अथान्तरतराणि सर्वाण्याग्नेयानि सर्वाण्यैन्द्राणि सर्वाणि स्वाराणि प्राजापत्यानि सामानीत्यन्तरतराणि ॥२०॥ अथान्तरतमानि सर्वाणि ब्राह्माणि सामानीति सर्वान्तरतमानि ॥२१॥ अथोपनिषत् ॥२२॥

ऋग्वै माता साम पिता प्रजापतिः स्वरः ।। २३।। तद्यान्यृक्त आख्यायन्ते मातृतस्तान्याख्यायन्ते अथ यानि सामत आख्यायन्ते पितृतस्तान्याख्यायन्ते अथ यानि स्वरत आख्यायन्ते प्रजापतित–स्तान्याख्यायन्ते ।। २४।। स वा एष उद्गीथो बन्धुमान् बन्धु–मत्यः ।। २५।। बन्धुमान् बन्धुमत्यो भवति जानन्ति ह वा एनं पितृतश्च मातृतश्च य एवं वेद ।। २६।।

द्वितीयः खण्डः

अथातश्छन्दसां वर्णाः ।।१।। शुक्ला गायत्र्यो रूपेण सारङ्गं रूपमुष्णिहाम्, पिशङ्गं ककुभां रूपं कृष्णमानुष्टुभं ततः, रोहितं बृहतीनां तु नीलं पाङ्क्तं ततः पुनः, सुवर्णं त्रिष्टुभां रूपं गौरं जागतमुच्यते ।। २।। अतोयान्यन्यानिच्छन्दाꣳसि श्यावं तेषां ततः पुनः नकुलं त्वेकपदानां द्विपदा बभ्रुरुच्यते, सारङ्गशुक्लकृष्णरूपाणि ऋग्यजुःसामब्राह्मणान्वितानि ।। ३।। ये यज्ञेषु प्रयोक्तव्यास्तेषां दैवतमुच्यते ।।४।। विराजः पृश्नयो विद्यात् ।।५।। दैवतं तत उत्तरम् ।।६।। अग्नेर्गायत्र्यभवत्सयुग्वोष्णिहया सविता संबभूवानुष्टुभासोमउक्थैर्महस्वान् बृहस्पतेर्बृहती वाचमावत् ।।७।। विराण्मित्रावरुणयोरभिश्रीरिन्द्रिस्य त्रिष्टुबिह भागोऽह्नः विश्वान् देवान् जगत्याविवेश तेन चाक्लृप्तऋषयोमनुष्याः ।।८।। प्राजापत्या अतिच्छन्दसो विच्छन्दसो वायुदेवताः, पुरुषो द्विपदानां दैवतं ब्राह्मय एकपदाः स्मृताः ।।९।। वासवी पङ्क्तिः ।।१०।। सतुलं मन्येतैतद्दैवत्या एवैतेषु छन्दः स्वृचो भवन्तीति ।।११।। छन्दसामुहैतदैवतम् ।।१२।।

तृतीयःखण्डः

अथातो निर्वचनम् ।।१।। गायत्री गायतेः स्तुतिकर्मण्रः ।। २।।

गायतो मुखादुदपतदिति हि ब्राह्मणम् ।। ३।। उष्णिगुत्स्नानात् स्निह्यतेर्वा कान्तिकर्मणोऽपि वोष्णीषिणीत्यौपमिकम् ।। ४।। ककुप् ककुदरूपिणीत्यौपमिकम् ।। ५।। ककुप् च कुब्जश्च कुजतेर्वोब्जतेर्वा ।। ६।। अनुष्टुबनुस्तोभनात् ।। ७।। अन्वस्तौदिति हि ब्राह्मणम् ।। ८।। पिपीलिका पेलतेर्गतिकर्मणः ।। ९।। पिपीलिक-मध्येत्यौपमिकम् ।।१०।। बृहती बृहतेर्वृद्धिकर्मणः ।।११।। विराड्विरमणाद्विराजनाद्विराधनाद्वा ।।१२।। पङ्क्तिः पञ्चिनी पञ्चपदा ।।१३।। त्रिष्टुभ् स्तोभत्युत्तरपदा ।।१४।। का तु त्रितास्यात्तीर्णतमं छन्दो भवतीति ।।१५।। त्रिवृद्वज्रस्तस्य स्तोभिनीवेत्यौपमिकम् ।।१६।। जगती गततमं छन्दो जज्जगतिर्भवति क्षिप्रगतिर्जज्जलाकुर्वन्नसृजतेति हि ब्राह्मणम् ।।१७।। अतिच्छन्दाश्छदेरर्थे ।।१८।। छन्दाँसि छन्दयतीति वा ।।१९।। निचृन्निपूर्वस्यचृतेःभरणाद्धुरिगुच्यते ।। २०।। अथातो गायत्रमाग्नेयं भक्त्या भवति, देवानां वर्षीणां वा परमेष्ठिनो वा प्राजापत्यस्य साम ।। २१।। सावित्री गेयं यत्रागीतम् ।। २२।।

तत्सवितुर्वरेणियोम्। भार्गो देवस्यधीमाहीऽ२।

धियो यो नः प्रचोऽ१२१२।

हिम् आऽ२। दायो। आऽ३४५।।

ऋषीणां विषयज्ञो यः स शरीराद्विमुच्यते ।
अतीत्य तमसः पारं स्वर्गे लोके महीयते ।।

सहस्रयुगपर्यन्तमहर्ब्राह्मं यदुच्यते,
नाकस्य पृष्ठे तं कालं दिवि सूर्य इव रोचते ।
ततः कृतयुगस्यादौ ब्रह्मपूतो महायशाः,
सर्वज्ञो धृतिमानृषिः पुनराजायते स्मरन्निति स्मरन्निति ।। २३।।

चतुर्थः खण्डः

अथ सावित्र्यङ्गानि व्याख्यास्यामः। शिरो ब्रह्मा, ललाटं द्यौः, चन्द्रादित्यौ चक्षूँषी, मुखमग्निः, जिह्वा सरस्वती, त्वष्टा ग्रीवा, वसवश्च रुद्राश्च बाहू, उरो वायुः, रोमाणि वा यवः, पृष्ठमिन्द्रः, विष्णुर्नाभिः, प्रजापतिर्जघनम्, ऊरू मरुतो वेदाःपादौ, स्मितं विद्युत्, श्वसितं वायु, अस्थीनि पर्वताः, समुद्रा वासाँसि, नक्षत्राण्यलंकारः, य एवं वेद। दुष्टतादुरुपयुक्तान्यूनाधिक्याच्च सर्वस्मात् स्वस्ति देवऋषिभ्यश्च ब्रह्म सत्यं च पातु मामिति ब्रह्म सत्यं च पातु मामिति।

।। इति देवताध्यायब्राह्मणम् ।।



॥ श्रीः ॥

ॐ नमः सामवेदाय

अष्टब्राह्मणेषु षष्ठम्

छान्दोग्यमन्त्रब्राह्मणम्

प्रथमः प्रपाठकः

प्रथमः खण्डः

अदितेऽनुमन्यस्व। अनुमतेऽनुमन्यस्व। सरस्वत्यनुमन्यस्व।

देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय। दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु॥१॥ काम वेद ते नाम मदो नामासि समानयामुं सुरा ते अभवत्। परमत्र जन्माग्ने तपसो निर्मितोऽसि स्वाहा॥२॥ इमं त उपस्थं मधुना संसृजामि प्रजापतेर्मुखमेतद्द्वितीयम्। तेन पुंसोऽभि भवासि सर्वान वशान् वशिन्यसि राज्ञी स्वाहा॥३॥ अग्निं क्रव्यादमकृण्वन् गुहानाः स्त्रीणामुपस्थमृषयः पुराणाः। तेनाज्यमकृण्वंस्त्रैशृङ्गं त्वाष्ट्रं त्वयि तद्दधातु स्वाहा॥४॥ या अकृन्तन्नवयन् या अतन्वत याश्च देव्यो अन्तानभितो ततन्थ। तास्त्वा देव्यो जरसा संव्ययन्त्वायुष्मतीदं परिधत्स्व वासः॥५॥ परिधत्त धत्त वाससैनां शतायुर्षीं कृणुत दीर्घमायुः। शतञ्च जीव शरदः सुवर्चा वसूनि चार्ये विभृजासि जीवन्॥६॥ सोमोऽददद्गन्धर्वाय गन्धर्वोऽदददग्नये। रयिं च पुत्रांश्चादादग्निर्मह्यमथो इमाम्॥७॥ प्र मे पतिर्या नः पन्थाः कल्पताम्। शिवा अरिष्टा पतिलोकं गमेयम्॥८॥ प्रास्याः पतिर्या नः पन्थाः कल्पताम्। शिवा अरिष्टा पतिलोकं गम्याः॥९॥

अग्निरेतु प्रथमो देवताभ्यः सोऽस्यै प्रजां मुञ्चतु मृत्युपाशात्। तदयं राजा वरुणोऽनुमन्यतां यथेयं स्त्री पौत्रमघं न रोदात् स्वाहा॥१०॥ इमामग्निस्त्रायतां गार्हपत्यः प्रजामस्यै जरदष्टिं कृणोतु। अशून्योपस्था जीवतामस्तु माता पौत्रमानन्दमभि विबुध्यतामियं स्वाहा॥११॥ द्यौस्ते पृष्ठं रक्षतु वायुरूरू अश्विनौ च स्तनन्धयांस्ते पुत्रान् सविताऽभिरक्षतु। आ वाससः परिधानाद्बृहस्पतिर्विश्वे देवा अभिरक्षन्तु पश्चात् स्वाहा॥१२॥ मा ते गृहेषु निशि घोष उत्थादन्यत्र त्वद्रुदत्यः संविशन्तु। मा त्वं रुदत्युर आ वधिष्ठा जीवपत्नी पतिलोके विराज पश्यन्ती प्रजां सुमनस्यमानाम् स्वाहा॥१३॥ अप्रजस्यं पौत्रमर्त्यं पाप्मानमुत वा अधम्। शीर्ष्णः स्रजमिवोन्मुच्य द्विषद्भ्यःप्रतिमुञ्चामि पाशम् स्वाहा॥१४॥ परैतु मृत्युरमृतं म अगाद् वैवस्वतो नो अभयं कृणोतु परं मृत्यो अनु परेहि पन्थां यत्र नो अन्य इतरो देवयानात्। चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजां रीरिषो मोत वीरान् स्वाहा॥१५॥

द्वितीयः खण्डः

इममश्मानमारोहाश्मेव त्वं स्थिरा भव। द्विषन्तमप बाधस्व मा च त्वं द्विषतामधः॥१॥ इयं नार्युपब्रूतेऽग्नौ लाजानावपन्ती। दीर्घायुरस्तु मे पतिः शतं वर्षाणि जीवतु। एधन्तां ज्ञातयो मम स्वाहा॥२॥ अर्यमणं नु देवं कन्या अग्निमयक्षत। स इमां देवो अर्यमा प्रेतो मुञ्चातु माऽमुतः स्वाहा॥३॥ पूषणं नु देवं कन्या अग्निमयक्षत। स इमां देवः पूषा प्रेतो मुञ्चातु माऽमुतः स्वाहा॥४॥ कन्यला पितृभ्यः पतिलोकं यतीयमप दीक्षामयष्ट। कन्या उत त्वया वयं धारा उदन्या इवाति गाहेमहि द्विषः॥५॥ एकमिषे विष्णुस्त्वा नयतु॥६॥ द्वे ऊर्जे विष्णुस्त्वा नयतु॥७॥ त्रीणि व्रताय विष्णुस्त्वा नयतु॥८॥ चत्वारि मायोभवाय विष्णुस्त्वा नयतु॥९॥

पञ्च पशुभ्यो विष्णुस्त्वा नयतु॥१०॥ षड् रायस्पोषाय विष्णुस्त्वा नयतु॥११॥ सप्त सप्तभ्यो होत्राभ्यो विष्णुस्त्वा नयतु॥१२॥ सखा सप्तपदी भव सख्यं ते गमेयम्। सख्यं ते मा योषाः सख्यं ते मायोष्ठ्याः॥१३॥ सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत। सौभाग्यमस्यै दत्वायाथास्तं विपरेतन॥१४॥ समञ्जन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ। सं मातरिश्वा सं धाता समु देष्ट्री दधातु नौ॥१५॥ गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं, मया पत्या जरदष्टिर्यथाऽसः। भगो अर्यमा सविता पुरन्धि र्मह्यं त्वाऽदुर्गार्हपत्याय देवाः॥१६॥ अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः। वीरसूर्जीवसूर्देवकामा स्योना शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे॥१७॥ आ नः प्रजां जनयतु प्रजापति राजरसाय समनक्त्वर्यमा। अदुर्मङ्गलीः पतिलोकमा विश शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे॥१८॥ इमां त्वमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृधि। दशास्यां पुत्रानाधेहि पतिमेकादशं कुरु॥१९॥ सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव। ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु॥२०॥ मम व्रते ते हृदयं दधातु मम चित्तमनु चित्तं ते अस्तु। मम वाचमेकमना जुषस्व बृहस्पतिस्त्वा नियुनक्तु मह्यम्॥२१॥

तृतीयः खण्डः

लेखासन्धिषु पक्ष्मस्वावर्तेषु च यानि ते। तानि ते पूर्णाहुत्या सर्वाणि शमयाम्यहम्॥१॥ केशेषु यच्च पापकमीक्षिते रुदिते च यत्। तानि ते पूर्णाहुत्या सर्वाणि शमयाम्यहम्॥२॥ शीलेषु यच्च पापकं भाषिते हसिते च यत्। तानि ते पूर्णाहुत्या सर्वाणि शमयाम्यहम्॥३॥ आरोकेषु च दन्तेषु हस्तयोः पादयोश्च यत्। तानि ते पूर्णाहुत्या सर्वाणि शमयाम्यहम्॥४॥

ऊर्वोरुपस्थे जङ्घयोः सन्धानेषु च यानि ते। तानि ते पूर्णाहुत्या सर्वाणि शमयाम्यहम्॥५॥ यानि कानि च घोराणि सर्वाङ्गेषु तवाभवन्। पूर्णाहुतिभिराज्यस्य सर्वाणि तान्यशीशमम् स्वाहा॥६॥ ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवं विश्वमिदं जगत्। ध्रुवासः पर्वता इमे ध्रुवा स्त्री पतिकुले इयम्॥७॥ अन्नपाशेन मणिना प्राणसूत्रेण पृश्निना। बध्नामि सत्यग्रन्थिना मनश्च हृदयं च ते॥८॥ यदेतद्धृदयं तव तदस्तु हृदयं मम। यदिदं हृदयं मम तदस्तु हृदयं तव॥९॥ अन्नं प्राणस्य षड्विंशस्तेन बध्नामि त्वासौ॥१०॥ सुकिंशुकं शल्मलिं विश्वरूपं, सुवर्णवर्णं सुकृतं सुचक्रम्। आरोह सूर्ये अमृतस्य नाभिं, स्योनं पत्ये वहतुं कृणुष्व॥११॥ मा विदन् परिपन्थिनो य असीदन्ति दम्पती। सुगेभिर्दुर्गमतीतामप द्रान्त्वरातयः॥१२॥ इह गावः प्रजायध्वमिहाश्वा इह पूरुषाः। इहो सहस्रदक्षिणोऽपि पूषा निषीदतु॥१३॥ इह धृतिरिह स्वधृतिरिह रन्तिरिह रमस्व। मयि धृतिर्मयि स्वधृतिर्मयि रमो मयि रमस्व॥१४॥

चतुर्थः खण्डः

अग्ने प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि। ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि याऽस्याः पापी लक्ष्मीस्तामस्या अपजहि॥१॥ वायो प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि। ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि याऽस्याः पतिघ्नी तनूस्तामस्या अपजहि॥२॥ चन्द्र प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि। ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि याऽस्या अपुत्र्या तनूस्तामस्या अपजहि॥३॥ सूर्य प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि। ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि याऽस्या अपशव्या तनूस्तामस्या अपजहि॥४॥

अग्निवायुचन्द्रसूर्याः प्रायश्चित्तयो यूयं देवानां प्रायश्चित्तयः स्थ। ब्राह्मणो वो नाथकाम उपधावामि याऽस्याः पापी लक्ष्मीर्या पतिघ्नी याऽपुत्र्या याऽपशव्या तनूस्तामस्या अपहत॥५॥ विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु। आ सिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते॥६॥ गर्भं धेहि सिनीवाली गर्भं धेहि सरस्वति। गर्भं ते अश्विनौ देवावा धत्तां पुष्करस्रजौ॥७॥ पुमांसौ मित्रावरूणौ पुमांसावश्विनावुभौ। पुमानग्निश्च वायुश्च पुमान् गर्भस्तवोदरे॥८॥ पुमानग्निः पुमानिन्द्रः पुमान् देवो बृहस्पतिः। पुमांसं पुत्रं विन्दस्व तं पुमाननु जायताम्॥९॥

पञ्चमः खण्डः

अयमूर्जावतो वृक्ष ऊर्जीव फलिनी भव। पर्णं वनस्पते नुत्त्वा नुत्त्वा सूयतां रयिः॥१॥ येनादितेःसीमानं नयति प्रजापतिर्महते सौभगाय। तेनाहमस्यै सीमानं नयामि प्रजामस्यै जरदष्टिं कृणोमि॥२॥ राकामहं सुहवां सुष्टुती हुवे शृणोतु नः सुभगा बोधतुत्मना। सीव्यत्वपः सूच्याऽछिद्यमानया ददातु वीरं शतदायुमुख्यम्॥३॥ यास्ते राके सुमतयः सुपेशसो याभिर्ददासि दाशुषे वसूनि। ताभिर्नो अद्य सुमना उपागहि सहस्रपोषं सुभगे रराण॥४॥ किं पश्यसि प्रजां पशून् सौभाग्यं मह्यं दीर्घायुष्ट्वं पत्युः॥५॥ या तिरश्ची निपद्यते अहं विधरणी इति। तां त्वा घृतस्य धारया यजे संराधनीमहम्। संराधन्यै देव्यै देष्ट्र्यै स्वाहा॥६॥ विपश्चित् पुच्छमभरत्तद्धाता पुनराहरत्। परेहि त्वं विपश्चित् पुमानयं जनिष्यतेऽसौ नाम॥७॥ इयमाज्ञे दमन्नमिदमायुरिदम-मृतम्॥८॥ मेधां ते मित्रावरुणौ मेधामग्निर्दधातु ते। मेधां ते अश्विनौ देवावा धत्तां पुष्करस्रजौ॥९॥ यत्ते सुसीमे हृदयं हितमन्तः प्रजापतौ। वेदाहं मन्ये तद्ब्रह्म माहं पौत्रमघं निगाम्॥१०॥

यत् पृथिव्या अनामृतं दिवि चन्द्रमसि श्रितम्। वेदामृतस्याहं नाम माहं पौत्रमघं रिषम्।।११।। इन्द्राग्नी शर्म यच्छतं प्रजायै मे प्रजापती। यथायं न प्रमीयेत पुत्रो जनित्र्या अधि।।१२।। यददश्चन्द्रमसि कृष्णं पृथिव्या हृदयं श्रितम्। तदहं विद्वांस्तत् पश्यन् माहं पौत्रमघं रुदम्।।१३।। कोऽसि कतमोऽस्येषोऽस्यमृतोऽसि। आहस्पत्यं मासं प्रविशासौ।।१४।। स त्वाह्ने परिददात्वहस्त्वा रात्र्यै परिददातु, रात्रिस्त्वाहोरात्राभ्यां परिददात्वहोरात्रौ त्वार्धमासेभ्यः परिदत्तामर्धमासास्त्वा मासेभ्यः परिददतु मासास्त्वर्तुभ्यः परिददत्वृतवस्त्वा संवत्सराय परिददतु संवत्सरस्त्वायुषे जरायै परिददात्वसौ।।१५।। अङ्गादङ्गात् संस्रवसि हृदयादधि जायसे। प्राणन्ते प्राणेन सन्दधामि जीव मे यावदायुषम्।।१६।। अङ्गादङ्गात् सम्भवसि हृदयादधि जायसे। वेदो वै पुत्रनामासि स जीव शरदः शतम्।।१७।। अश्माभव परशुर्भव हिरण्यमस्तृतं भव। आत्मासि पुत्र मा मृथाः स जीव शरदः शतम्।।१८।। पशूनां त्वा हिङ्कारेणाभिजिघ्राम्यसौ।।१९।।

षष्ठः खण्डः

आयमगात् सविता क्षुरेण।।१।। उष्णेन वाय उदकेनैधि।।२।। आप उन्दन्तु जीवसे।।३।। विष्णोर्दंष्ट्रोऽसि।।४।। ओषधे त्रायस्वैनम्।।५।। स्वधिते मैनं हिंसीः।।६।। येन पूषा बृहस्पते-र्वायोरिन्द्रस्य चावपत्। तेन ते वपामि ब्रह्मणा जीवातवे जीवनाय दीर्घायुष्ट्वाय वर्चसे।।७।। त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुष मगस्त्यस्य त्र्यायुषं यद्देवानां त्र्यायुषं तत्ते (तन्मे) अस्तु त्र्यायुषम्।।८।। अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तत्ते प्रब्रवीमि तच्छकेयम्। तेनर्ध्यासमिदमहमनृतात् सत्यमुपैमि स्वाहा।।९।। वायो व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तत्ते प्रब्रवीमि तच्छकेयम्। तेनर्ध्यासमिदमहमनृतात् सत्यमुपैमि स्वाहा।।१०।।

सूर्य व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तत्ते प्रब्रवीमि तच्छकेयम्। तेनर्ध्यासमिदमहमनृतात् सत्यमुपैमि स्वाहा॥११॥ चन्द्र व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तत्ते प्रब्रवीमि तच्छकेयम्। तेनर्ध्यासमिदमहमनृतात् सत्यमुपैमि स्वाहा॥१२॥ व्रतानां व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तत्ते प्रब्रवीमि तच्छकेयम्। तेनर्ध्यासमिदमहमनृतात् सत्यमुपैमि स्वाहा॥१३॥ आगन्त्रा समगन्महि प्र सुमर्त्यं युयोतन। अरिष्टाः सञ्चरेमहि स्वस्ति चरतादयम्॥१४॥ अग्निष्टे हस्तमग्रहीत् सविता हस्तमग्रहीदर्यमा। हस्तमग्रहीन्मित्रस्त्वमसि कर्मणाग्निराचार्यस्तव॥१५॥ ब्रह्मचर्यमागामुप मा नयस्व॥१६॥ को नामासि॥१७॥ असौ नामास्मि॥१८॥ देवस्य ते सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां हस्तं गृह्णाम्यसौ॥१९॥ सूर्यस्यावृतमन्वावर्तस्वासौ॥२०॥ प्राणानां ग्रन्थिरसि मा विस्रसोन्तक इदं ते परिददाम्यमुम्॥२१॥ अहुर इदन्ते परिददाम्यमुम्॥२२॥ कृशन इदन्ते परिददाम्यमुम्॥२३॥ प्रजापतये त्वा परिददाम्यसौ॥२४॥ देवाय त्वा सवित्रे परिददाम्यसौ॥२५॥ ब्रह्मचार्यस्यसौ॥२६॥ समिधमाधेह्यपोऽशान कर्म कुरु मा दिवा स्वाप्सीः॥२७॥ इयं दुरुक्तात् परिबाधमाना वर्णं पवित्रं पुनती न आगात्। प्राणापानाभ्यां बलमाहरन्ती स्वसा देवी सुभगा मेखलेयम्॥२८॥ ऋतस्य गोप्त्री तपसः परस्वी घ्नती रक्षः सहमाना अरातीः। सा मा समन्तमभि पर्येहि भद्रे धर्तारस्ते मेखले मा रिषाम॥२९॥ तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥३०॥ भूर्भुवः स्वरोम् ॥३१॥ सुश्रवः सुश्रवसं मा कुरु यथा त्वं सुश्रवः सुश्रवाः। देवेष्वेवमहं सुश्रवः सुश्रवा ब्राह्मणेषु भूयासम्॥३२॥ अग्नये समिधमाहार्षं बृहते जातवेदसे। यथा त्वमग्ने समिधा समिध्यस एवमहमायुषा मेधया वर्चसा प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन धनेनान्नाद्येन समेधिषीय

स्वाहा॥३ ३॥ पुनर्मामैत्विन्द्रियं पुनरायुः पुनर्भगः पुनर्द्रविणमैतु मा पुनर्ब्राह्मणमैतु मा॥३४॥ पुनर्मनः पुनरात्मा म आगात् पुनश्चक्षुः पुनः श्रोत्रं म आगात्। वैश्वानरो अदब्धस्तनूपा अन्तस्तिष्ठतु मे मनोऽमृतस्य केतुः स्वाहा॥३५॥

सप्तमः खण्डः

ये अप्स्वन्तरग्नयः प्रविष्टा गोह्य उपगोह्यो मरूको मनोहाः। खलो विरुजस्तनूदूषिरिन्द्रियहा अति तान्त्सृजामि॥१॥ यदपां घोरं यदपां क्रूरं यदपामशान्तमति तत् सृजामि॥२॥ यो रोचनस्तमिह गृह्णामि तेनाहं मामभिषिञ्चामि॥३॥ यशसे तेजसे ब्रह्मवर्चसाय बलायेन्द्रियाय वीर्यायान्नाद्याय रायस्पोषाय त्विष्या अपचित्यै॥४॥ येन स्त्रियमकृणुतं येनापामृशतं सुराम्। येनाक्षानभ्यषिञ्चतं येनेमा पृथिवीं महीम्। यद्वां तदश्विना यशस्तेन मामभिषिञ्चतम्॥५॥ उद्यन्भ्राजभृष्टिभिरिन्द्रो मरुद्भिरस्थात् प्रातर्यावभिरस्थात्। दशसनिरसि दशसनिं मा कुर्वा त्वा विशाम्या मा विश॥६॥ उद्यन्भ्राजभृष्टिभिरिन्द्रो मरुद्भिरस्थात् सान्तपनेभिरस्थात्। शतसनिरसि शतसनिं मा कुर्वा त्वा विशाम्या मा विश॥७॥ उद्यन्भ्राजभृष्टिभिरिन्द्रो मरुद्भिरस्थात् सायंयावभिरस्थात्। सहस्रसनिरसि सहस्रसनिं मा कुर्वा त्वा विशाम्या मा विश॥८॥ चक्षुरसि चक्षुष्ट्वमस्यव मे पाप्मानं जहि। सोमस्त्वा राजाऽवतु नमस्तेऽस्तु मा मा हिꣳसीः॥९॥ उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमꣳश्रथाय। अथादित्यव्रते वयं तवानागसो अदितये स्याम॥१०॥ श्रीरसि मयि रमस्व॥११॥ नेत्र्यौ स्थो नयतं माम्॥१२॥ गन्धर्वोऽस्युपाव उप मामव॥१३॥ यक्षमिव चक्षुषः प्रियो वो भूयासम्॥१४॥ ओष्ठापिधाना नकुली दन्तपरिमितः पविः। जिह्वे मा विह्वलो वाचं चारु माऽद्येह वादय॥१५॥ वनस्पते

वीड्वङ्गो हि भूया अस्मत्सखा प्रतरणः सुवीरः। गोभिः सन्नद्धो असि वीडयस्वास्थाता ते जयतु जेत्वानि॥१६॥

अष्टमः खण्डः

इमा मे विश्वतोवीर्यो भव इन्द्रश्च रक्षतम्। पूषंस्त्वं पर्यावर्तयानष्टा आयन्तु नौ गृहान्॥१॥ इमा मधुमतीर्मह्यमनष्टाः पयसा सह। गाव आज्यस्य मातर इहेमाः सन्तु भूयसीः॥२॥ गवां श्लेष्मासि गावो मयि शिलष्यन्तु॥३॥ संग्रहण संगृहाण ये जाताः पशवो मम। पूषैषां शर्म यच्छतु यथा जीवन्तो अप्ययात्॥४॥ भुवनमसि साहस्रमिन्द्राय त्वा सृमोऽददादक्षतमरिष्टमिलान्दम्। गोपोषणमसि गोपोषस्येशिषे गोपोषाय त्वा सहस्रपोषणमसि सहस्रपोषस्येशिषे सहस्रपोषाय त्वा॥५॥ लोहितेन स्वधितिना मिथुनं कर्णयोः कृतम्। यावतीनां यावतीनां व ऐषमो लक्षणमकारिषम्। भूयसीनां भूयसीनां व उत्तरामुत्तरां समां क्रियासम्॥६॥ इयं तन्ती गवां माता सवत्सानां निवेशनी। सा नः पयस्वती दुहा उत्तरामुत्तरां समाम्॥७॥

॥ इति प्रथमः प्रपाठकः ॥



द्वितीयः प्रपाठकः

प्रथमः खण्डः

यः प्राच्यां दिशि सर्पराज एष ते बलिः॥१॥ यो दक्षिणस्यां दिशि सर्पराज एष ते बलिः॥२॥ यः प्रतीच्यां दिशि सर्पराज एष ते बलिः॥३॥ य उदीच्यां दिशि सर्पराज एष ते बलिः॥४॥ नमः पृथिव्यै दँष्ट्राय विश्वभृन्मा ते अन्ते रिषाम। संहतं मा वि वधीर्विहतं माऽभि सं वधीः॥५॥ सोमो राजा सोमस्तम्बो राजा सोमोऽस्माकं राजा सोमस्य वयं स्मः। अहिजम्भनमसि सौमस्तम्बं सौमस्तम्बमहिजम्भनमसि॥६॥ यां सन्धां समधत्त यूयं सप्तऋषिभिः सह। तां सर्पा माऽत्यक्रामिष्ट नमो वो अस्तु मानोहिंसिष्ट॥७॥ मानस्तोके तनये मा न आयौ मा नो गोषु मानो अश्वेषु रीरिषः। वीरान् मा नो रुद्र भामितो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे॥८॥ शतायुधाय शतवीर्याय शतोतयेऽभिमातिषाहे। शतं यो नः शरदो अजीजादिन्द्रो नेषदति दुरितानि विश्वा स्वाहा॥९॥ ये चत्वारः पथयो देवयाना अन्तरा द्यावापृथिवी वियन्ति। तेषां यो अज्यानिमजीजिमावहास्तस्मै नो देवाः परिदत्तेह सर्वे स्वाहा॥१०॥ ग्रीष्मो हेमन्त उत नो वसन्तः शरद्वर्षाः सुवितं नो अस्तु। तेषामृतूनां शतशारदानां निवात एषामभये स्याम॥११॥ इद्वत्सराय परिवत्सराय संवत्सराय कृणुता बृहन्नमः। तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानां ज्योग्जीता अहताः स्याम॥१२॥ भद्रान्नः श्रेयः समनैष्ट देवास्त्वयावसेन समशीमहि त्वा। स नो मयोभूः पितेवा विशस्व शं तोकाय तन्वै स्योनः स्वाहा॥१३॥ अमोऽसि प्राण तदृतं ब्रवीम्यमा ह्यसि सर्वमनुप्रविष्टः। स मे जरां रोगमपमृज्य शरीरादपाम एधि मा मृथा

न इन्द्र॥१४॥ अग्निः प्राशनातु प्रथमः स हि वेद यथा हविः। शिवा अस्मभ्यमोषधीः कृणोतु विश्वचर्षणिः स्वाहा॥१५॥ एतमुत्यं मधुना संयुतं यवं सरस्वत्या अधिवनाव चर्कृधि। इन्द्र आसीत् सीरपतिः शतक्रतुः कीनाशा आसन्मरुतः सुदानवः स्वाहा॥१६॥

द्वितीयः खण्डः

प्रथमा हव्युवास सा धेनुरभवद्यमे। सा नः पयस्वती दुहा उत्तरामुत्तरां समाम्॥१॥ प्रति क्षत्रे प्रति तिष्ठामि राष्ट्रे प्रत्यश्वेषु प्रति तिष्ठामि गोषु। प्रति प्राणे प्रति तिष्ठामि पुष्टौ प्रत्यङ्गेषु प्रति तिष्ठाम्यात्मनि॥२॥ प्रति द्यावापृथिव्योः प्रति तिष्ठामि यज्ञे॥३॥ स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी। यच्छा नः शर्म सप्रथो दैवान् मा भयादिति॥४॥ यत् पशवः प्रध्यायत मनसा हृदयेन च। वाचा सहस्रपाशया मयि बध्नामि वो मनः॥५॥ अनु त्वा माता मन्यतामनु पिताऽनु भ्राताऽनु सगर्भ्योऽनु सखा सयूथ्यः॥६॥ आत्तं देवेभ्यो हविः॥७॥ यत् पशुर्मायुमकृतोरो वा पद्भिराहत। अग्निर्मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वंहसः॥८॥ अग्नावग्निश्चरति प्रविष्ट ऋषीणां पुत्रो अधिराज एषः। स नः स्योनः सुयजा यजा च यथा देवानां जनिमानि वेद॥९॥ औलूखलाः सं प्रवदन्ति ग्रावाणो हविष्कृण्वन्तः परिवत्सरीणाम्। एकाष्टके सुप्रजसः सुवीरा ज्योग्जीवेम बलिहृतो वयं ते॥१०॥ इडायास्पदं घृतवत्सरीसृपं जातवेदः प्रतिहव्या गृभाय। ये ग्राम्याः पशवो विश्वरूपास्तेषां सप्तानां मयि रन्तिरस्तु स्वाहा॥११॥ एषैव सा या पूर्वा व्यौच्छत् सेयमप्स्वन्तश्चरति प्रविष्टा। वसूर्जिगाय प्रथमा जनित्री विश्वे ह्यस्यां महिमानो अन्तः॥१२॥ एषैव सा या प्रथमा व्यौच्छत्सा धेनुरभवद्विश्वरूपा। संवत्सरस्य या पत्नी सा नो अस्तु सुमङ्गली॥१३॥ यां देवाः प्रतिपश्यन्ति रात्रीं धेनुमिवायतीम्। सा

नः पयस्वती दुहा उत्तरामुत्तरां समाम्॥१४॥ संवत्सरस्य प्रतिमां यां त्वा रात्रि यजामहे। प्रजामजर्यां नः कुरु रायस्पोषेण संसृज॥१५॥ अन्विमं नो अनुमतिर्यज्ञं देवेषु मन्यताम्। अग्निश्च हव्यवाहनः स नो दाद्दाशुषे मयः॥१६॥

तृतीयः खण्डः

स्वाहा सोमाय पितृमते॥१॥ स्वाहाऽग्नये कव्यवाहनाय॥२॥ अपहता असुरा रक्षांसि वेदिषदः॥३॥ ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमाना असुराः सन्तः स्वधया चरन्ति। परा पुरो नि पुरो ये भरन्त्यग्निष्टाँल्लोकात् प्रणुदत्वस्मात्॥४॥ एत पितरः सोम्यासो गम्भीरेभिः पथिभिः पूर्विणेभिः। दत्तास्मभ्यं द्रविणेह भद्रं रयिञ्च नः सर्ववीरं नियच्छत॥५॥ अत्र पितरो मादयध्वं यथाभागमावृषायध्वम्॥६॥ अमीमदन्त पितरो यथाभागमावृषायिषत॥७॥ नमो वः पितरो जीवाय नमो वः पितरः शूषाय॥८॥ नमो वः पितरो घोराय नमो वः पितरो रसाय॥९॥ नमो वः पितरः स्वधायै नमो वः पितरो मन्यवे॥१०॥ नमो वः पितरः पितरो नमो वः॥११॥ गृहान्नः पितरो दत्त॥१२॥ सदो वः पितरो देष्म॥१३॥ एतद्वः पितरो वासः॥१४॥ उर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्त्रुतम्। स्वधा स्थ तर्पयत मे पितृन्॥१५॥ आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्करस्त्रजम्। यथेह पुरुषः स्यात्॥१६॥ अभून्नो दूतो हविषो जातवेदा अवाड्व्यानि सुरभीणि कृत्वा। प्रादात् पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन् प्रजानन्नग्ने पुनरेहि योनिम्॥१७॥ वह वपां जातवेदः पितृभ्यो यत्रैतान् वेत्थः निहितान् पराचः। मेदसः कुल्या अभि तान्त्स्रवन्तु सत्या एषामाशिषः सन्तु कामात् स्वाहा॥१८॥ जातवेदो वपया गच्छ देवांस्त्वं हि होता प्रथमो बभूव। सत्या वपा प्रगृहीता मे अस्तु समृध्यतां मे यदिदं करोमि॥१९॥

यत्कुसीदमप्रदत्तं मयेह येन यमस्य निधिना चराणि। इदं तदग्ने अनृणो भवामि जीवन्नेव प्रति तत्ते ददामि॥२०॥ एकाष्टका तपसा तप्यमाना जजान गर्भं महिमानमिन्द्रम्। तेन देवा असहन्त शत्रून्हन्तासुराणामभवच्छचीभिः॥२१॥

चतुर्थः खण्डः

इदं भूमेर्भजामह इदं भद्रं सुमङ्गलम्। परा सपत्नान् बाधस्वान्येषां विन्दते वस्वन्येषां विन्दते धनम्॥१॥ इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया। भद्र हि नः प्रमतिरस्य संसद्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयन्तव॥२॥ भरामेध्मं कृणवामा हवींषि ते चितयन्तः पर्वणापर्वणा वयम्। जीवातवे प्रतरां साधया धियोऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयन्तव॥३॥ शकेम त्वा समिधं साधया धियस्त्वे देवा हविरदन्त्याहुतम्। त्वमादित्याँ आवह तान् ह्युश्मस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयन्तव॥४॥ 'पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ। विष्णोर्मनसा पूते स्थः। देवस्त्वा सवितोत्पुनात्वच्छिद्रेण पवित्रेण वसोः सूर्यस्य रश्मिभिः'। तपश्च तेजश्च श्रद्धा च ह्रीश्च सत्यञ्चाक्रोधश्च त्यागश्च धृतिश्च धर्मश्च सत्त्वञ्च वाक् च मनश्चात्मा च ब्रह्म च तानि प्रपद्ये तानि मामवन्तु भूर्भुवः स्वरों महान्तमात्मानं प्रपद्ये॥५॥ विरूपाक्षोऽसि दन्ताञ्जिस्तस्य ते शय्या पर्णे गृहा अन्तरिक्षे विमितं हिरण्मयम्। तद्देवानां हृदयान्ययस्मये कुम्भेऽन्तः सन्निहितानि। तानि बलभृच्च बलसाच्च रक्षतोऽप्रमणी अनिमिषतः सत्यम्। यत्ते द्वादश पुत्रास्ते त्वा संवत्सरे संवत्सरे कामप्रेण यज्ञेन याजयित्वा पुनर्ब्रह्मचर्यमुपयन्ति। त्वं देवेषु ब्राह्मणोऽस्यहं मनुष्येषु। ब्राह्मणो वै ब्राह्मणमुप धावत्युप त्वा धावामि। जपन्तं मा मा प्रति जापीर्जुह्वन्तं मा मा प्रति हौषीः कुर्वन्तं मा मा प्रति कार्षीः। त्वां प्रपद्ये। त्वया प्रसूत इदं कर्म करिष्यामि। तन्मे राध्यतां तन्मे

समृध्यतां तन्म उप पद्यताम्। समुद्रो मा विश्वव्यचा ब्रह्माऽनु जानातु तुथो मा विश्ववेदा ब्रह्मणः पुत्रोऽनु जानातु श्वात्रो मा प्रचेता मैत्रावरुणोऽनु जानातु। तस्मै विरूपाक्षाय दन्ताञ्जये समुद्राय विश्वव्यचसे तुथाय विश्ववेदसे श्वात्राय प्रचेतसे सहस्राक्षाय ब्रह्मणः पुत्राय नमः॥६॥ 'अक्तं रिहाणा व्यन्तु वयः। यः पशूनामधिपती रुद्रस्तन्तिचरो वृषा। पशूनस्माकं मा हिंसीरेतदस्तु हुतं तव स्वाहा'। सहस्रबाहुर्गौपत्यः स पशूनभि रक्षतु। मयि पुष्टिं पुष्टिपतिर्दधातु मयि प्रजां प्रजापतिः स्वाहा॥७॥ कौतोमतं संवननं सुभागंकरणं मम। नाकुली नाम ते माताऽथाहं पुरुषानयः। यन्नौ कामस्य विच्छिन्नं तन्नौ सं धेह्योषधे॥८॥ वृक्ष इव पक्वस्तिष्ठसि सर्वान् कामान् भुवस्पते। यस्त्वैवं वेद तस्मै मे भोगान् धुक्ष्वाक्षतान् बृहन्॥९॥ ऋतं सत्ये प्रतिष्ठितं भूतं भविष्यता सह। आकाश उप निरज्जतु मह्यमन्नमथो श्रियम्॥१०॥ अभिभागोऽसि सर्वस्मिंस्तदु सर्वं त्वयि श्रितम्। तेन सर्वेण सर्वो मा विवासन वि वासय॥११॥ कोश इव पूर्णो वसुना त्वं प्रीतो ददसे धनम्। अदृष्टो दृष्टमा भर सर्वान् कामान् प्र यच्छ मे॥१२॥ आकाशस्यैष आकाशो यदेतद्भाति मण्डलम्। एवं त्वा वेद यो वेदेशानेशान् प्र यच्छ मे॥१३॥ भूर्भुवः स्वरों सूर्य इव दृशे भूयासमग्निरिव तेजसा वायुरिव प्राणेन सोम इव गन्धेन बृहस्पतिरिव बुद्ध्याऽश्विनाविव रूपेणेन्द्राग्नी इव बलेन ब्रह्मभाग एवाहं भूयासं पाप्मभागा मे द्विषन्तः॥१४॥

पञ्चमः खण्डः

मूर्ध्नोऽधि मे वैश्रवणाञ्छिरसोऽनुप्रवेशिनः। ललाटाद्धस्वरान् घोरान् विघनान् वि बृहामि वः स्वाहा॥१॥ ग्रीवाभ्यो मे स्कन्धाभ्यां मे नस्तो मेऽनुप्रवेशिनः। मुखान्मे बद्वदान् घोरान्

विघनान् वि बृहामि वः स्वाहा॥२॥ बाहुभ्यां मे यतो यतः पार्श्वयोरुत्तु तानधि। उरस्तो बद्धदान् घोरान् विघनान् वि बृहामि वः स्वाहा॥३॥ वङ्क्षणाभ्यां मे लोहितादान् योनिहान् पविहानधि। ऊरुभ्यो निश्लिषो घोरान् विघनान् वि बृहामि वः स्वाहा॥४॥ जङ्घाभ्यां मे यतो यतः पार्ष्ण्योरुत्तु तानधि। पादयोर्विकिरान् घोरान् विघनान् वि बृहामि वः स्वाहा॥५॥ परिबाधं यजामहेऽणुजङ्घं शबलोदरम्। यो नोऽयं परिबाधते दानाय भगाय च स्वाहा॥६॥ अपेहि त्वं परिबाध मा विबाध वि बाधथाः। सुगं पन्थानं मे कुरु येन मा धनमेष्यति स्वाहा॥७॥ प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् स्वाहा॥८॥ यशोऽहं भवामि ब्राह्मणानां यशो राज्ञां यशो विशाम्। यशः सत्यस्य भवामि भवामि यशसां यशः॥९॥ पुनर्मा यन्तु देवता या मदपचक्रमुः। महस्वन्तो महान्तो भवाम्यस्मिन् पात्रे हरिते सोमपृष्ठे॥१०॥ रूप रूपं मे दिश प्रातरह्नस्य तेजसः। अन्नमुग्रस्य प्राशिषमस्तु वै मयि त्वयीदमस्तु त्वयि मयीदम्॥११॥ यदिदं पश्यामि चक्षुषा त्वया दत्तं प्रभासया। तेन मा भुङ्क्ष्व तेन भुक्षिषीय तेन मा विश॥१२॥ अहर्नो अत्यपीपरद्रात्रिर्नो अति पारयत्। रात्रिर्नो अत्यपीपरदहर्नो अति पारयत्॥१३॥ आदित्यनावमारोक्षं पूर्णामपरिवादिनीम्। अच्छिद्रां पारयिष्णवीं शतारित्रां स्वस्तये॥१४॥ ओं नम आदित्याय नम आदित्याय नम आदित्याय॥१५॥ उद्यन्तं त्वादित्यानूदियासं प्रतितिष्ठन्तं त्वादित्यानुप्रति तिष्ठासम्॥१६॥ भलाय स्वाहा॥१७॥ भल्लाय स्वाहा॥१८॥

षष्ठः खण्डः

वास्तोष्पते प्रतिजानि ह्यस्मान्त्स्वावेशोऽनमीवो भवा नः। यत्ते महे प्रति तन्नो जुषस्व शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे॥१॥ हये राके

सिनीवालि सिनीवालि पृथुष्टुके। सुभद्रे पथ्ये रेवति पथा नो यश आवह स्वाहा॥२॥ ये यन्ति प्राञ्च पन्थानो य उ चोत्तरत आययुः। ये चेमे सर्वे पन्थानस्तेभिर्नो यश आवह स्वाहा॥३॥ यथा यन्ति प्रपदो यथा मासा अहर्जरम्। एवं मा श्रीधातारः समव यन्तु सर्वतः स्वाहा॥४॥ यथा समुद्रं स्रवन्तीः समवयन्ति दिशो दिशः। एवं मा सखायो ब्रह्मचारिणः समव यन्तु दिशो दिशः स्वाहा॥५॥ वसुवन एधि वसुवन एधि वसुवन एधि॥६॥ वशङ्गमौ देवयानौ युवं स्थो यथा युवयोः। सर्वाणि भूतानि वशमायन्त्येवं ममासौ वशमेतु स्वाहा॥७॥ शङ्खश्च मन आयुश्च देवयानौ युवं स्थो यथा युवयोः। सर्वाणि भूतानि वशमायन्त्येवं ममासौ वशमेतु स्वाहा॥८॥ आकूतीं देवीं मनसा प्रपद्ये यज्ञस्य मातरं सुहवा मे अस्तु। यस्यास्त एकमक्षरं परं सहस्रा अयुतं च शाखास्तस्यै वाचे निहवे जुहोभ्या मा वरो गच्छतु श्रीर्यशश्च स्वाहा॥९॥ इदमहमिमं विश्वकर्माणं श्रीवत्समभि जुहोमि स्वाहा॥१०॥ पूर्णहोमं यशसे जुहोमि योऽस्मै जुहोति वरमस्मै ददाति। वरं वृणे यशसा भामि लोके स्वाहा॥११॥ इन्द्रामवदात्तमो वः परस्तादहं वो ज्योतिर्मामभ्येत सर्वे स्वाहा॥१२॥ अन्नं वा एकच्छन्दस्यमन्नं ह्येकं भूतेभ्यश्छन्दयति स्वाहा॥१३॥ श्रीर्वा एषा यत्सत्वानो विरोचनो मयि सत्त्वमवदधातु स्वाहा॥१४॥ अन्नस्य धृतमेव रसस्तेजःसम्पत्कामो जुहोमि स्वाहा॥१५॥ क्षुधे स्वाहा॥१६॥ क्षुत्पिपासाभ्यां स्वाहा॥१७॥ मा भैषीर्न मरिष्यसि जरदष्टिर्भविष्यसि॥१८॥ रसं विषस्य नाविदमुग्रम्फेनमिवास्यम्॥१९॥ तुर गोपाय मा नाथ गोपाय मा। अशस्तिभ्यो अरातिभ्यः स्वस्त्ययनमसि॥२०॥

सप्तमः खण्डः

हतस्ते अत्रिणा क्रिमिर्हतस्ते जमदग्निना। गोतमेन तिनीकृतोऽत्रैव त्वा क्रिमे ब्रह्मवद्यमवद्यम्॥१॥ भरद्वाजस्य मन्त्रेण

सं तिनोमि क्रिमे त्वा॥२॥ क्रिमिं ह वक्व्रतोदिनं क्रिमिमान्त्रानु-चारिणम्। क्रिमिं द्विशीर्षमर्जुनं द्विशीर्षं ह चतुर्हनुम्॥३॥ हतः क्रिमीणां क्षुद्रको हता माता हतः पिता। अथैषां भिन्नकः कुम्भो य एषां विषधानकः॥४॥ क्रिमिमिन्द्रस्य बाहुभ्यामवाञ्चं पातयामसि॥५॥ हताः क्रिमयः साशातिकाः सनील-मक्षिकाः॥६॥

अष्टमः खण्डः

अर्हणा पुत्रवाससा धेनुरभवद्यमे। सा नः पयस्वती दुहा उत्तरामुत्तरां समाम्॥१॥ इदमहमिमां पद्यां विराजमन्नाद्यायाधि-तिष्ठामि॥२॥ या ओषधीः सोमराज्ञीर्बह्वीः शतविचक्षणाः। ता मह्यमस्मिन्नासनेऽच्छिद्राः शर्म यच्छत॥३॥ या ओषधीः सोमराज्ञीर्विष्ठिताः पृथिवीमनु। ता मह्यमस्मिन् पादयोरच्छिद्राः शर्म यच्छत॥४॥ यतो देवीः प्रतिपश्याम्यापस्ततो मा राद्धिरा-गच्छतु॥५॥ सव्यं पादमव नेनिजेऽस्मिन् राष्ट्रे श्रियं दधे॥६॥ दक्षिणं पादमव नेनिजेऽस्मिन् राष्ट्रे श्रियमा वेशयामि॥७॥ पूर्वमन्यमपरमन्यमुभौ पादावव नेनिजे राष्ट्रस्यर्ध्या अभयस्याव-रुद्ध्यै॥८॥ अन्नस्य राष्ट्ररसि राष्ट्रस्ते भूयासम्॥९॥ यशोऽसि यशो मयि धेहि॥१०॥ यशसो यशोऽसि॥११॥ यशसो भक्षोऽसि महसो भक्षोऽसि। श्रीभक्षोऽसि श्रियं मयि धेहि स्वाहा॥१२॥ मुञ्च गां वरुण पाशाद्द्विषन्तं मेऽभि धेहि। तं जह्यमुष्य चोभयोरुत्सृज गामत्तु तृणानि पिबतूदकम्॥१३॥ माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः। प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ट॥१४॥

॥ इति द्वितीयः प्रपाठकः ॥

॥ इति छान्दोग्यमन्त्रब्राह्मणम् ॥



तृतीयः प्रपाठकः

प्रथमः खण्डः

ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक्प्राणश्चक्षुः श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि। सर्वं ब्रह्मौपनिषदं माहं ब्रह्मनिराकुर्यां मा मा ब्रह्मनिराकरोदनिराकरणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु। तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु ते मयि सन्तु।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

ॐ ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत ओमितिह्युद्गायति तस्योपव्याख्यानम्॥१॥ एषां भूतानां पृथिवी रसः पृथिव्या आपो रसोऽपामोषधयो रस ओषधीनां पुरुषो रसः पुरुषस्य वाग्रसो वाच ऋग्रस ऋचः साम रसः साम्न उद्गीथो रसः॥२॥ स एष रसानां रसतमः परमः परार्ध्योऽष्टमो यदुद्गीथः॥३॥ कतमा कतमर्क्कतमत्कतमत्साम कतमः कतम उद्गीथ इति विमृष्टं भवति॥४॥ वागेवर्क् प्राणः सामोमित्येतदक्षरमुद्गीथस्तद्वा एतन्मिथुनं यद्वाक् च प्राणश्चर्क् च साम च॥५॥ तदेतन्मिथुनमोमित्येत स्मिन्नक्षरे सं सृज्यते यदा वै मिथुनौ समागच्छत आपयतो वै तावन्योन्यस्य कामम्॥६॥ आपयिता ह वै कामानां भवति य एतदेवं विद्वानक्षरमुद्गीथमुपास्ते॥७॥ तद्वा एतदनुज्ञाक्षरं यद्धि किं चानुजानात्योमित्येव तदाहैषा एव समृद्धिर्यदनुज्ञा। समर्द्धयिता ह वै कामानां भवति य एतदेवं विद्वानक्षरमुद्गीथमुपास्ते॥८॥ तेनेयं त्रयी विद्या वर्त्तत ओमित्याश्रावयत्योमितिशंसत्योमित्युद्गायत्येतस्यैवाक्षरस्यापचित्यै महिम्ना रसेन॥९॥ तेनोभौ कुरुतो यश्चैतदेवं वेद यश्च न वेद। नाना तु विद्या चाविद्या च यदेव विद्यया करोति श्रद्धयोपनिषदा

तदेव वीर्य्यवत्तरं भवतीति खल्वेतस्यैवाक्षरस्योपव्याख्यानं भवति॥१०॥

द्वितीयः खण्डः

देवासुरा ह वै यत्र संयेतिर उभये प्राजापत्यास्तद्ध देवा। उद्गीथमाजह्रुरनेनैनानभिभविष्याम इति॥१॥ ते ह नासिक्यं प्राणमुद्गीथमुपासाञ्चक्रिरे। तꣳहासुराः पाप्मना विविधुस्तस्मात्ते-नोभयं जिघ्रति सुरभि च दुर्गन्धि च पाप्मना ह्येष विद्धः॥२॥ अथ ह वाचमुद्गीथमुपासाञ्चक्रिरे। ताꣳहासुराः पाप्मना विविधुस्तस्मात्तयोभयं वदति सत्यं चानृतं च पाप्मना ह्येषा विद्धा॥३॥ अथ ह चक्षुरुद्गीथमुपासाञ्चक्रिरे। तद्धासुराः पाप्मना विविधुस्तस्मात्तेनोभयं पश्यति दर्शनीयं चादर्शनीयं च पाप्मना ह्येतद्विद्धम्॥४॥ अथ ह श्रोत्रमुद्गीथमुपासाञ्चक्रिरे। तद्धासुराः पाप्मना विविधुस्तस्मात्तेनोभयꣳशृणोति श्रवणीयं चाश्रवणीयं च पाप्मना ह्येतद्विद्धम्॥५॥ अथ ह मन उद्गीथमुपासाञ्चक्रिरे। तद्धासुराः पाप्मना विविधुस्तस्मात्तेनोभयं सङ्कल्पते सङ्कल्पनीयञ्चासङ्कल्पनीयञ्च पाप्मना ह्येतद्विद्धम्॥६॥ अथ ह य एवायं मुख्यः प्राणस्तमुद्गीथमुपासाञ्चक्रिरे। तꣳहासुरा ऋत्वा विदध्वꣳसुर्यथाऽश्मानमाखणमृत्वा विध्वꣳसत एव॥७॥ यथा ऽश्मानमाखणमृत्वा विध्वꣳसत एवꣳहैव स विध्वꣳसते य एवंविदि पापं कामयते यश्चैनमभिदासति स एषोऽश्माखणः॥८॥ नैवैतेन सुरभि न दुर्गन्धि विजानात्यपहतपाप्मा ह्येष तेन यदश्नाति यत्पिबति तेनेतरान् प्राणानवत्येतमु एवान्ततोऽवित्त्वोत्क्रामति व्याददात्येवान्तत इति॥९॥ तꣳहाङ्गिरा उद्गीथमुपासाञ्चक्र एतमु एवाङ्गिरसं मन्यन्तेऽङ्गानां यद्रसः॥१०॥ तेन तꣳह बृहस्पतिरुद्गीथमुपासाञ्चक्र एतमु एव बृहस्पतिं मन्यन्ते वाग्घि

बृहती तस्या एष पतिः॥११॥ तेन तꣳहायास्यमुद्गीथ मुपासाञ्चक्र एतमु एवायास्यं मन्यन्त आस्याद्यदयते॥१२॥ तेन तꣳह बको दाल्भ्यो विदाञ्चकार। स ह नैमिषीयानामुद्गाता बभूव स ह स्मैभ्यः कामानागायति॥१३॥ आगाता ह वै कामानां भवति य एतदेवं विद्वानक्षरमुद्गीथमुपास्त इत्यध्यात्मम्॥१४॥

तृतीयः खण्डः

अथाधिदैवतं य एवासौ तपति तमुद्गीथमुपासीतोद्यन्वा एष प्रजाभ्य उद्गायति। उद्यꣳस्तमोभयमपहन्त्यपहन्ता ह वै भयस्य तमसो भवति य एवं वेद॥१॥ समान उ एवायञ्चासौ चोष्णोऽयमुष्णोऽसौ स्वर इतीममाचक्षते स्वर इति प्रत्यास्वरित्यमुं तस्माद्वा एतमिमममुञ्चोद्गीथमुपासीत॥२॥ अथ खलु व्यानमेवोद्गीथमुपासीत यद्वै प्राणिति स प्राणो यदपानिति सोऽपानः। अथ यः प्राणापानयोः सन्धिः स व्यानो यो व्यानः सावाक्। तस्मादप्राणन्ननपानन्वाचमभिव्याहरति॥३॥ यावाक्सर्क्तस्माद-प्राणन्ननपानन्नृचमभीव्याहरति यर्क्तत्साम तस्मादप्राणन्ननपानन्-सामगायति यत्साम स उद्गीथस्तस्मादप्राणन्ननपानन्नुद्गायति॥४॥ अतो यान्यन्यानि वीर्य्यवन्ति कर्म्माणि यथाग्नेर्मन्थनमाजेः सरणं दृढस्य धनुष आयमनमप्राणन्ननपानꣳस्तानि करोत्येतस्य हेतोर्व्यानमेवोद्गीथमुपासीत॥५॥ अथ खलूद्गीथाक्षराण्युपा-सीतोद्गीथ इति प्राण एवोत्प्राणेन ह्युत्तिष्ठति वाग्गीर्वाचो ह गिर इत्याचक्षतेऽन्नं थमन्ने हीदꣳसर्वꣳस्थितम्॥६॥ द्यौरेवोदन्तरीक्षं गीः पृथिवी थमादित्य एवोद्वायुर्गीरग्निस्थꣳसामवेद एवोद्यजुर्वेदो गीर्ऋग्वेदस्थं दुग्धेऽस्मै वाग्दोहं यो वाचो दोहोऽन्नवानन्नादो भवति य एतान्येवं विद्वानुद्गीथाक्षराण्युपास्त उद्गीथ इति॥७॥ अथ खल्वाशीः समृद्धिरुपसरणानीत्युपासीत येन साम्ना-स्तोष्यन्स्यात्तत्सामोपधावेत्॥८॥ यस्मामृचि तामृचं यदार्षेयं तमृषिं

यां देवतामभिष्टोष्यन्स्यात्तां देवतामुपधावेत्॥९॥ येनच्छन्दसास्तोष्यन्स्यात्तच्छन्द उपधावेद्येन स्तोमेन स्तोष्यमाणःस्यात्तꣳ स्तोममुपधावेत्॥१०॥ यां दिशमभिष्टोष्यन्स्यात्तां दिशमुपधावेत्॥११॥ आत्मानमन्तत उपसृत्य स्तुवीत कामं ध्यायन्नप्रमत्तोऽभ्याशो ह यदस्मै स कामः समृद्ध्येत यत्कामः स्तुवीतेति यत्कामः स्तुवीतेति॥१२॥

चतुर्थः खण्डः

ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीतोमिति ह्युद्गायति तस्योप व्याख्यानम्॥१॥ देवा वै मृत्योर्बिभ्यतस्त्रयीं विद्यां प्राविशꣳस्ते छन्दोभिरच्छादयन्यदेभिरच्छादयꣳस्तच्छन्दसां छन्दस्त्वम्॥२॥ तानु तत्र मृत्युर्यथा मत्स्यमुदके परिपश्येदेवं पर्यपश्यदृचि साम्नि यजुषि। ते नु विदित्वोर्ध्वा ऋचः साम्नो यजुषः स्वरमेव प्राविशन्॥३॥ यदा वा ऋचमाप्नोत्योमित्येवातिस्वरत्येवꣳसामैवं यजुरेष उ स्वरो यदेतक्षरमेतदमृतमभयं तत्प्रविश्य देवा अमृता अभया अभवन्॥४॥ स य एतदेवं विद्वानक्षरं प्रणौत्येतदेवाक्षरꣳ स्वरममृतमभयं प्रविशति तत्प्रविश्य यदमृता देवास्तदमृतोभवति॥५॥

पञ्चमः खण्डः

अथ खलु य उद्गीथः स प्रणवो यः प्रणवः स उद्गीथ इत्यसौ वा आदित्य उद्गीथ एष प्रणव ओमिति ह्येष स्वरन्नेति॥१॥ एतमु एवाहमभ्यगासिषं तस्मान्मम त्वमेकोऽसीति ह कौषीतकिः पुत्रमुवाच रस्मीꣳस्त्वं पर्यावर्तयाद् बहवो वै ते भविष्यन्तीत्यधिदैवतम्॥२॥ अथाध्यात्मं य एवायं मुख्यः प्राणस्तमुद्गीथमुपासीतोमिति ह्येष स्वरन्नेति॥३॥ एतमु एवाहमभ्यगासिषं तस्मान्मम त्वमेकोऽसीति ह कौषीतकिः पुत्रमुवाच प्राणाꣳस्त्वं

भूमानभिगायताद्बहवो वै मे भविष्यन्तीति॥४॥ अथ खलु य उद्गीथः स प्रणवो यः प्रणवः स उद्गीथ इति होतृषदनाद्धैवापि दुरुद्गीतमनुसमाहरतीत्यनु समाहरतीति॥५॥

षष्ठः खण्डः

इयमेवर्गग्निः साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढꣳसाम तस्मादृच्यध्यूढꣳसाम गीयत इयमेव साऽग्निरमस्तत्साम॥१॥ अन्तरिक्षमेवर्ग्वायुः साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढꣳसाम। तस्मादृच्यध्यूढꣳसाम गीयतेऽन्तरिक्षमेव सा वायुरमस्तत्साम॥२॥ द्यौरेवर्गादित्यः साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढꣳसाम। तस्मादृच्यध्यूढꣳ साम गीयते। द्यौरेव साऽऽदित्योऽमस्तत्साम॥३॥ नक्षत्राण्येवर्क् चन्द्रमाः साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढꣳसाम। तस्मादृच्यध्यूढꣳसाम गीयते। नक्षत्राण्येव सा चन्द्रमा अमस्तत्साम॥४॥ अथ यदेतदादित्यस्य शुक्लं भाः सैवर्गथ यन्नीलं परः कृष्णं तत्साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढꣳसाम। तस्मादृच्यध्यूढꣳसाम गीयते॥५॥ अथ यदेवैतदादित्यस्य शुक्लं भाः सैव साऽथ यन्नीलं परः कृष्णं तदमस्तत्सामाथ य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते हिरण्यश्मश्रुर्हिरण्यकेश आप्रणखात्सर्व एव सुवर्णः॥६॥ तस्य यथा कप्यासं पुण्डरीकमेवमक्षिणी तस्योदिति नाम स एष सर्वेभ्यः पाप्मभ्य उदित उदेति ह वै सर्वेभ्यः पाप्मभ्यो य एवं वेद॥७॥ तस्यर्क् च साम च गेष्णौ तस्मादुद्गीथस्तस्मात्त्वेवोद्गातैतस्य हि गाता। स एष ये चामुष्मात्पराञ्चो लोकास्तेषां चेष्टे देवकामानां चेत्यधिदैवतम्॥८॥

सप्तमः खण्डः

अथाध्यात्मं वागेवर्क् प्राणः साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढꣳसाम तस्मादृच्यध्यूढꣳसाम गीयते। वागेव सा प्राणोऽमस्तत्साम॥१॥

चक्षुरेवर्गात्मा साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढꣳसाम तस्मादृच्यध्यूढꣳ साम गीयते। चक्षुरेव सात्मामस्तत्साम॥२॥ श्रोत्रमेवर्ङ्मनः साम तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढꣳसाम तस्मादृच्यध्यूढꣳसाम गीयते। श्रोत्रमेव सा मनोऽमस्तत्साम॥३॥ अथ यदेतदक्ष्णः शुक्लं भाः सैवर्गथ यन्नीलं परः कृष्णं तत्साम। तदेतदेतस्यामृच्यध्यूढꣳसाम। तस्मादृच्यध्यूढꣳसाम गीयते। अथ यदेवैतदक्ष्णः शुक्लं भाः सैव साऽथ यन्नीलं परः कृष्णं तदमस्तत्साम॥४॥ अथ य एषोऽन्तरक्षिणि पुरुषो दृश्यते सैवर्क्तत्साम तदुक्थं तद्यजुस्तद्ब्रह्म। तस्यैतस्य तदेव रूपं यदमुष्य रूपं यावमुष्य गेष्णौ तौ गेष्णौ यन्नाम तन्नाम॥५॥ स एष ये चैतस्मादर्वाञ्चो लोकास्तेषां चेष्टे मनुष्यकामानां चेति। तद्य इमे वीणायां गायन्त्येतं ते गायन्ति तस्मात्ते धनसनयः॥६॥ अथ य एतदेवं विद्वान् साम गायत्युभौ स गायति सोऽमुनैव स एष ये चामुष्मात्पराञ्चो लोकास्ताꣳश्चाप्नोति देवकामाꣳश्च॥७॥ अथानेनैव ये चैतस्मादर्वाञ्चो लोकास्ताꣳश्चाप्नोति मनुष्यकामाꣳश्च तस्मादु हैवं विदुद्गाता ब्रूयात्॥८॥ कं ते काममागायानीत्येष ह्येव कामागानस्येष्टे य एवं विद्वान्साम गायति साम गायति॥९॥

अष्टमः खण्डः

त्रयो होद्गीथे कुशला बभूवुः शिलकः शालावत्यश्चैकितायनो दाल्भ्यः प्रवाहणो जैवलिरिति ते होचुरुद्गीथे वै कुशलाः स्मो हन्तोद्गीथे कथां वदाम इति॥१॥ तथेति ह समुपविविशुः स ह प्रवाहणो जैवलिरुवाच भगवन्तावग्रे वदतां ब्राह्मणयोर्वदतोर्वाचꣳ-श्रोष्यामीति॥२॥ स ह शिलकः शालावत्यश्चैकितायनं दाल्भ्यमुवाच हन्त त्वा पृच्छानीति पृच्छेति होवाच॥३॥ का साम्नो गतिरति स्वर इति होवाच। स्वरस्य का गतिरिति प्राण इति

होवाच। प्राणस्य का गतिरित्यन्नमिति होवाचान्नस्य का गतिरित्याप इति होवाच॥४॥ अपां का गतिरित्यसौ लोक इति होवाचामुष्य लोकस्य का गतिरिति न स्वर्गं लोकमतिनयेदिति होवाच स्वर्गं वयं लोकꣳसामाभिसꣳस्थापयामः स्वर्गसꣳस्तावꣳहि सामेति॥५॥ तꣳह शिलकः शालावत्यश्चैकितायनं दाल्भ्यमुवाचाप्रतिष्ठितं वै किल ते दाल्भ्य साम यस्त्वेतर्हि ब्रूयान्मूर्धा ते विपतिष्यतीति मूर्धा ते विपतेदिति॥६॥ हन्ताहमेतद्भगवतो वेदानीति विद्धीति होवाचामुष्य लोकस्य का गतिरित्ययं लोक इति होवाचास्य लोकस्य का गतिरिति न प्रतिष्ठां लोकमतिनयेदिति होवाच प्रतिष्ठां वयं लोकꣳसामाभिसꣳस्थापयामः प्रतिष्ठासꣳस्तावꣳहि सामेति॥७॥ तꣳह प्रवाहणो जैवलिरुवाचान्तवद्वै किल ते शालावत्य साम यस्त्वेतर्हि ब्रूयान्मूर्धा ते विपतिष्यतीति मूर्धा ते विपतेदिति हन्ताहमेतद्भगवतो वेदानीति विद्धीति होवाच॥८॥

नवमः खण्डः

अस्य लोकस्य का गतिरित्याकाश इति होवाच सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्याकाशादेव समुत्पद्यन्त आकाशं प्रत्यस्तं यन्त्याकाशो ह्येवैभ्यो ज्यायानाकाशः परायणम्॥१॥ स एष परोवरीयानुद्गीथः स एषोऽनन्तः परोवरीयो हास्य भवति परोवरीयसो ह लोकाञ्जयति य एतदेवं विद्वान्परोवरीयाꣳसमुद्गीथमुपास्ते॥२॥ तꣳहैतमतिधन्वा शौनक उदरशाण्डिल्या-योक्त्वोवाच यावत्त एनं प्रजायामुद्गीथं वेदिष्यन्ते परोवरीयो हैभ्यस्तावदस्मिँल्लोके जीवनं भविष्यति॥३॥ तथामुष्मिँल्लोके लोक इति। स य एतमेवं विद्वानुपास्ते परोवरीय एव हास्यास्मिँल्लोके जीवनं भवति तथामुष्मिँल्लोके लोक इति लोके लोक इति॥४॥

दशमः खण्डः

मटचीहतेषु कुरुष्वाटिक्या सह जाययोषस्तिर्ह चाक्रायण इभ्यग्रामे प्रद्राणक उवास॥१॥ स हेभ्यं कुल्माषान्खादन्तं बिभिक्षे तꣳहोवाच। नेतोऽन्ये विद्यन्ते यच्च ये म इम उपनिहिता इति॥२॥ एतेषां मे देहीति होवाच तानस्मै प्रददौ हन्तानुपानमित्युच्छिष्टं वै मे पीतꣳस्यादिति होवाच॥३॥ न स्विदेतेऽप्युच्छिष्टा इति न वा अजीविष्यमिमानखादन्निति होवाच कामो म उदकपानमिति॥४॥ स ह खादित्वातिशेषाञ्जायाया आजहार साग्र एव सुभिक्षा बभूव तान्प्रतिगृह्य निदधौ॥५॥ स ह प्रातः सञ्जिहान उवाच यद्बतान्नस्य लभेमहि लभेमहि धनमात्रꣳराजासौ यक्ष्यते स मा सर्वैरार्त्विज्यैर्वृणीतेति॥६॥ तं जायोवाच हन्त पत इम एव कुल्माषा इति तान्खादित्वामुं यज्ञं विततमेयाय॥७॥ तत्रोद्गातृनास्तावे स्तोष्यमाणानुपोपविवेश स ह प्रस्तोतार-मुवाच॥८॥ प्रस्तोतर्या देवता प्रस्तावमन्वायत्ता तां चेदविद्वान्प्रस्तोष्यसि मूर्धा ते विपतिष्यतीति॥९॥ एवमेवोद्गातारमुवाचोद्गातर्या देवतोद्गीथमन्वायत्ता तां चेदविद्वानुद्गास्यसि मूर्धा ते विपतिष्यतीति॥१०॥ एवमेव प्रतिहर्तारमुवाच प्रतिहर्तर्या देवता प्रतिहारमन्वायत्ता तां चेदविद्वान्प्रतिहरिष्यसि मूर्धा ते विपतिष्यतीति ते ह समारतास्तूष्णीमासाञ्चक्रिरे॥११॥

एकादशः खण्डः

अथ हैनं यजमान उवाच भगवन्तं वा अहं विविदिषाणीत्युषस्तिरस्मि चाक्रायण इति होवाच॥१॥ स होवाच भगवन्तं वा अहमेभिः सर्वैरार्त्विज्यैः पर्यैषिषं भगवतो वा अहमवित्त्यन्यानवृषि॥२॥ भगवाꣳस्त्वेव मे सर्वैरार्त्विज्यैरिति

तथेत्यथ तर्ह्येत एव समतिसृष्टाः स्तुवतां यावत्त्वेभ्यो धनं दद्यास्तावन्मम दद्या इति तथेति ह यजमान उवाच॥३॥ अथ हैनं प्रस्तोतोपससाद प्रस्तोतर्या देवता प्रस्तावमन्वायत्ता तां चेदविद्वान्प्रस्तोष्यसि मूर्धा ते विपतिष्यतीति मा भगवानवोचत्कतमा सा देवतेति॥४॥ प्राण इति होवाच सर्वाणि ह वा इमानि भूतानि प्राणमेवाभिसं विशन्ति प्राणमभ्युज्जिहते। सैषा देवता प्रस्तावमन्वायत्ता। तां चेदविद्वान्प्रास्तोष्यो मूर्धा ते व्यपतिष्यत्तथोक्तस्य मयेति॥५॥ अथ हैनमुद्गातोपससादोद्गातर्या देवतोद्गीथमन्वायत्ता तां चेदविद्वानुद्गास्यसि मूर्धा ते विपतिष्यतीति मा भगवानवोचत्कतमा सा देवतेति॥६॥ आदित्य इति होवाच सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्यादित्यमुच्चैः सन्तं गायन्ति सैषा देवतोद्गीथमन्वायत्ता तां चेदविद्वानुदगास्यो मूर्धा ते व्यपतिष्यत्तथोक्तस्य मयेति॥७॥ अथ हैनं प्रतिहर्तोपससाद प्रतिहर्तर्या देवता प्रतिहारमन्वायत्ता तां चेदविद्वान्प्रतिहरिष्यसि मूर्धा मे विपतिष्यतीति मा भगवानवोचत्कतमा सा देवतेति॥८॥ अन्नमिति होवाच सर्वाणि ह वा इमानि भूतान्यन्नमेव प्रतिहरमाणानि जीवन्ति सैषा देवता प्रतिहारमन्वायत्ता तां चेदविद्वान्प्रत्यहरिष्यो मूर्धा ते व्यपतिष्यत्तथोक्तस्य मयेति तथोक्तस्य मयेति॥९॥

द्वादशः खण्डः

अथातः शौव उद्गीथस्तद्ध बको दाल्भ्यो ग्लावो वा मैत्रेयः स्वाध्यायमुद्वव्राज॥१॥ तस्मै श्वा श्वेतः प्रादुर्बभूव तमन्ये श्वान उपसमेत्योचुरन्नं नो भगवानागायत्वशनायाम वा इति॥२॥ तान्होवाचे हैव मा प्रातरुपसमीयातेति तद्ध बको दाल्भ्यो ग्लावो वा मैत्रेयः प्रतिपालयाञ्चकार॥३॥ ते ह यथैवेह बहिष्पवमानेन

स्तोष्यमाणाः सꣳरब्धाः सर्पन्तीत्येवमाससृपुस्ते ह समुपविश्य हिं चक्रुः॥४॥ ओ३मदा३मों३पिबा३ मों३ देवो वरुणः प्रजापतिः सविता२ न्नमिहा२हरदन्नपते३ऽन्नमिहा२हरा२हरो२मिति॥५॥

त्रयोदशः खण्डः

अयं वाव लोको हाउकारो वायुर्हाइकारश्चन्द्रमा अथकारः। आत्मेहकारोऽग्निरीकारः॥१॥ आदित्य ऊकारो निहव एकारो विश्वे देवा औहोयिकारः प्रजापतिर्हिङ्कारः प्राणः स्वरोऽन्नं या वाग्विराट्॥२॥ अनिरुक्तस्त्रयोदशः स्तोभः सञ्चरो हुङ्कारः॥३॥ दुग्धेऽस्मै वाग्दोहं यो वाचो दोहोऽन्नवानन्नादो भवति य एतामेव ꣳसाम्नामुपनिषदं वेदोपनिषदं वेद॥४॥

॥ इति तृतीयः प्रपाठकः ॥



चतुर्थः प्रपाठकः

प्रथमः खण्डः

समस्तस्य खलु साम्न उपासनꣳसाधु यत्खलु साधु तत्सामेत्याचक्षते यदसाधु तदसामेति॥१॥ तदुताप्याहुः साम्नैनमुपागादिति साधुनैनमुपागादित्येव तदाहुरसाम्नैनमुपागादि-त्यसाधुनैनमुपागादित्येव तदाहुः॥२॥ अथोताप्याहुः साम नो बतेति यत्साधु भवति साधु बतेत्येव तदाहुरसाम नो बतेति यदसाधु भवत्यसाधु बतेत्येव तदाहुः॥३॥ स य एतदेवं विद्वान्साधु सामेत्युपास्तेऽभ्याशो ह यदेनꣳसाधवो धर्मा आ च गच्छेयुरुप च नमेयुः॥४॥

द्वितीयः खण्डः

लोकेषु पञ्चविधꣳसामोपासीत पृथिवी हिङ्कारः। अग्निः प्रस्तावोऽन्तरिक्षमुद्गीथ आदित्यः प्रतिहारो द्यौर्निधनमित्यूर्ध्वेषु॥१॥ अथावृत्तेषु द्यौर्हिङ्कार आदित्यः प्रस्तावोऽन्तरिक्षमुद्गीथोऽग्निः प्रतिहारः पृथिवी निधनम्॥२॥ कल्पन्ते हास्मै लोका ऊर्ध्वाश्चावृत्ताश्च य एतदेवं विद्वाँल्लोकेषु पञ्चविधं सामोपास्ते॥३॥

तृतीयः खण्डः

वृष्टौ पञ्चविधꣳसामोपासीत पुरावातो हिङ्कारो मेघो जायते स प्रस्तावो वर्षति स उद्गीथो विद्योतते स्तनयति स प्रतिहारः॥१॥ उद्गृह्णाति तन्निधनं वर्षति हास्मै वर्षयति ह य एतदेवं विद्वान्वृष्टौ पञ्चविधꣳसामोपास्ते॥२॥

चतुर्थः खण्डः

सर्वास्वप्सु पञ्चविधꣳसामोपासीत मेघो यत्संप्लवते स हिङ्कारो यद्वर्षति स प्रस्तावो याः प्राच्यः स्यन्दन्ते स उद्गीथो याः प्रतीच्यः स प्रतिहारः समुद्रो निधनम्॥१॥ न हाप्सु प्रैत्यप्सुमान्भवति य एतदेवं विद्वान्सर्वास्वप्सु पञ्चविधꣳसामोपास्ते॥२॥

पञ्चमः खण्डः

ऋतुषु पञ्चविधꣳसामोपासीत वसन्तो हिङ्कारो ग्रीष्मः प्रस्तावो वर्षा उद्गीथः शरत्प्रतिहारो हेमन्तो निधनम्॥१॥ कल्पन्ते हास्मा ऋतव ऋतुमान्भवति य एतदेवं विद्वानृतुषु पञ्चविधꣳ-सामोपास्ते॥२॥

षष्ठः खण्डः

पशुषु पञ्चविधꣳसामोपसीताजा हिङ्कारोऽवयः प्रस्तावो गाव उद्गीथोऽश्वाः प्रतिहारः पुरुषो निधनम्॥१॥ भवन्ति हास्य पशवः पशुमान्भवति य एतदेवं विद्वान्पशुषु पञ्चविधꣳसामोपास्ते॥२॥

सप्तमः खण्डः

प्राणेषु पञ्चविधं परोवरीयः सामोपासीत प्राणो हिङ्कारो वाक्प्रस्तावश्चक्षुरुद्गीथः श्रोत्रं प्रतिहारो मनो निधनं परोवरीयाꣳसि वा एतानि॥१॥ परोवरीयो हास्य भवति परोवरीयसो ह लोकाञ्जयति य एतदेवं विद्वान् प्राणेषु पञ्चविधं परोवरीयः सामोपास्त इति तु पञ्चविधस्य॥२॥

अष्टमः खण्डः

अथ सप्तविधस्य वाचि सप्तविधꣳसामोपासीत यत्किं च वाचो हुमिति स हिङ्कारो यत्प्रेति स प्रस्तावो यदेति स आदिः॥१॥ यदुदिति स उद्गीथो यत्प्रतीति स प्रतिहारो यदुपेति स उपद्रवो

यन्नीति तन्निधनम्॥२॥ दुग्धेऽस्मै वाग्दोहं यो वाचो दोहोऽन्नवानन्नादो भवति य एतदेवं विद्वान्वाचि सप्तविधꣳ-सामोपास्ते॥३॥

नवमः खण्डः

अथ खल्वमुमादित्यꣳसप्तविधꣳसामोपासीत सर्वदा समस्तेन साम मां प्रति मां प्रतीति सर्वेण समस्तेन साम॥१॥ तस्मिन्निमानि सर्वाणि भूतान्यन्वायत्तानीति विद्यात्तस्य यत्पुरोदयात्स हिङ्कारस्तदस्य पशवोऽन्वायत्तास्तस्मात्ते हिं कुर्वन्ति हिङ्कारभाजिनो ह्येतस्य साम्नः॥२॥ अथ यत्प्रथमोदिते स प्रस्तावस्तदस्य मनुष्या अन्वायत्तास्तस्मात्ते प्रस्तुतिकामाः प्रशꣳसाकामाः प्रस्तावभाजिनो ह्येतस्य साम्नः॥३॥ अथ यत्सङ्गववेलायाꣳस आदिस्तदस्य वयाꣳ-स्यन्वायत्तानि तस्मात्तान्यन्तरिक्षेऽनारम्बणान्यादायात्मानं परिपतन्त्यादि भाजीनि ह्येतस्य साम्नः॥४॥ अथ यत्सम्प्रति मध्यन्दिने स उद्गीथस्तदस्य देवा अन्वायत्तास्तस्मात्ते सत्तमाः प्राजापत्यानामुद्गीथभाजिनो ह्येतस्य साम्नः॥५॥ अथ यदूर्ध्वं मध्यन्दिनात्प्रागपराह्णात्स प्रतिहारस्तदस्य गर्भा अन्वायत्तास्तस्मात्ते प्रतिहृता नावपद्यन्ते प्रतिहारभाजिनो ह्येतस्य साम्नः॥६॥ अथ यदूर्ध्वमपराह्णात्प्रागस्तमयात्स उपद्रवस्तदस्यारण्या अन्वायत्ता-स्तस्मात्ते पुरुषं दृष्ट्वा कक्षꣳश्वभ्रमित्युपद्रवन्त्युपद्रवभाजिनो ह्येतस्य साम्नः॥७॥ अथ यत्प्रथमास्तमिते तन्निधनं तदस्य पितरोऽन्वायत्तास्तस्मात्तान्निदधति निधनभाजिनो ह्येतस्य साम्न एवं खल्वमुमादित्यꣳसप्तविधꣳसामोपास्ते॥८॥

दशमः खण्डः

अथ खल्वात्मसंमितमतिमृत्यु सप्तविधꣳसामोपासीत हिङ्कार इति त्र्यक्षरं प्रस्ताव इति त्र्यक्षरं तत्समम्॥१॥ आदिरिति द्व्यक्षरं

प्रतिहार इति चतुरक्षरं तत इहैकं तत्समम्॥२॥ उद्गीथ इति त्र्यक्षरमुपद्रव इति चतुरक्षरं त्रिभिस्त्रिभिः समं भवत्यक्षरमतिशिष्यते त्र्यक्षरं तत्समम्॥३॥ निधनमिति त्र्यक्षरं तत्सममेव भवति तानि ह वा एतानि द्वाविंशतिरक्षराणि॥४॥ एकविंशत्यादित्यमाप्नोत्येकविंशो वा इतोऽसावादित्यो द्वाविंशेन परमादित्याज्जयति तन्नाकं तद्विशोकम्॥५॥ आप्नोति हादित्यस्य जयं परो हास्यादित्यजयाज्जयो भवति य एतदेवं विद्वानात्मसंमितमतिमृत्यु सप्तविधंसामोपास्ते सामोपास्ते॥६॥

एकादशः खण्डः

मनो हिङ्कारो वाक्प्रस्तावश्चक्षुरुद्गीथः श्रोत्रं प्रतिहारः प्राणो निधनमेतद्गायत्रं प्राणेषु प्रोतम्॥१॥ स य एवमेतद्गायत्रं प्राणेषु प्रोतं वेद प्राणी भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्या महामनाः स्यात्तद्व्रतम्॥२॥

द्वादशः खण्डः

अभिमन्थति स हिङ्कारो धूमो जायते स प्रस्तावो ज्वलति स उद्गीथोऽङ्गारा भवन्ति स प्रतिहार उपशाम्यति तन्निधनंसंशाम्यति तन्निधनमेतद्रथन्तरमग्नौ प्रोतम्॥१॥ स य एवमेतद्रथन्तरमग्नौ प्रोतं वेद ब्रह्मवर्चस्यन्नादो भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्या न प्रत्यङ्ङग्निमाचामेन्न निष्ठीवेत्तद्व्रतम्॥२॥

त्रयोदशः खण्डः

उपमन्त्रयते स हिङ्कारो ज्ञपयते स प्रस्तावः स्त्रिया सह शेते स उद्गीथः प्रति स्त्रीं सह शेते स प्रतिहारः कालं गच्छति तन्निधनं पारं गच्छति तन्निधनमेतद्वामदेव्यं मिथुने प्रोतम्॥१॥ स य एवमेतद्वामदेव्यं मिथुने प्रोतं वेद मिथुनी भवति

मिथुनान्मिथुनात्प्रजायते सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्या न काञ्चन परिहरेत्तद्व्रतम्॥२॥

चतुर्दशः खण्डः

उद्यन्हिङ्कार उदितः प्रस्तावो मध्यन्दिन उद्गीथोऽपराह्णः प्रतिहारोऽस्तं यन्निधनमेतद्बृहदादित्ये प्रोतम्॥१॥ स य एवमेतद्बृहदादित्ये प्रोतं वेद तेजस्व्यन्नादो भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्या तपन्तं न निन्देत्तद्व्रतम्॥२॥

पञ्चदशः खण्डः

अभ्राणि संप्लवन्ते स हिङ्कारो मेघो जायते स प्रस्तावो वर्षति स उद्गीथो विद्योतते स्तनयति स प्रतिहार उद्गृह्णाति तन्निधनमेतद्वैरूपं पर्जन्ये प्रोतम्॥१॥ स य एवमेतद्वैरूपं पर्जन्ये प्रोतं वेद विरूपांश्च सुरूपांश्च पशूनवरुन्धे सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान् प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्या वर्षन्तं न निन्देत्तद्व्रतम्॥२॥

षोडशः खण्डः

वसन्तो हिङ्कारो ग्रीष्मः प्रस्तावो वर्षा उद्गीथः शरत्प्रतिहारो हेमन्तो निधनमेतद्वैराजमृतुषु प्रोतम्॥१॥ स य एवमेतद्वैराजमृतुषु प्रोतं वेद विराजति प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्यर्तूंन्न निन्देत्तद्व्रतम्॥२॥

सप्तदशः खण्डः

पृथिवी हिङ्कारोऽन्तरिक्षं प्रस्तावो द्यौरुद्गीथो दिशः प्रतिहारः समुद्रो निधनमेताः शक्वर्यो लोकेषु प्रोताः॥१॥ स य एवमेताः

शक्वर्यो लोकेषु प्रोता वेद लोकी भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्या लोकान्न निन्देत्तद्व्रतम्॥२॥

अष्टादशः खण्डः

अजा हिङ्कारोऽवयः प्रस्तावो गाव उद्गीथोऽश्वाः प्रतिहारः पुरुषो निधनमेता रेवत्यः पशुषु प्रोताः॥१॥ स य एवमेता रेवत्यः पशुषु प्रोता वेद पशुमान् भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्या पशून्न निन्देत्तद्व्रतम्॥२॥

एकोनविंशः खण्डः

लोम हिङ्कारस्त्वक्प्रस्तावो माꣳसमुद्गीथोऽस्थि प्रतिहारो मज्जा निधनमेतद्यज्ञायज्ञीयमङ्गेषु प्रोतम्॥१॥ स य एवमेतद्यज्ञा-यज्ञीयमङ्गेषु प्रोतं वेदाङ्गी भवति नाङ्गेन विहूर्छति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्या संवत्सरं मज्ज्ञो नाश्नीयात्तद्व्रतं मज्ज्ञो नाश्नीयादिति वा॥२॥

विंशः खण्डः

अग्निर्हिङ्कारो वायुः प्रस्ताव आदित्य उद्गीथो नक्षत्राणि प्रतिहारश्चन्द्रमा निधनमेतद्राजनं देवतासु प्रोतम्॥१॥ स य एवमेतद्राजनं देवतासु प्रोतं वेदैतासामेव देवतानाꣳसलोकताꣳ सार्ष्टिताꣳसायुज्यं गच्छति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति महान्प्रजया पशुभिर्भवति महान्कीर्त्या ब्राह्मणान्न निन्देत्तद्व्रतम्॥२॥

एकविंशः खण्डः

त्रयी विद्या हिङ्कारस्त्रय इमे लोकाः स प्रस्तावोऽग्निर्वायुरादित्यः स उद्गीथो नक्षत्राणि वयाꣳसि मरीचयः स प्रतिहारः सर्पा गन्धर्वाः पितरस्तन्निधनमेतत्साम सर्वस्मिन्प्रोतम्॥१॥ स य एवमेतत्साम सर्वस्मिन्प्रोतं वेद सर्वꣳह

भवति॥२॥ तदेष श्लोको यानि पञ्चधा त्रीणि त्रीणि तेभ्यो न ज्यायः परमन्यदस्ति॥३॥ यस्तद्वेद स वेद सर्वꣳसर्वा दिशो बलिमस्मै हरन्ति सर्वमस्मीत्युपासीत तद्व्रतं तद्व्रतम्॥४॥

द्वाविंशः खण्डः

विनर्दि साम्नो वृणे पशव्यमित्यग्नेरुद्गीथोऽनिरुक्तः प्रजापतेर्निरुक्तः सोमस्य मृदु श्लक्ष्णं वायोः श्लक्ष्णं बलवदिन्द्रस्य क्रौञ्चं बृहस्पतेरपध्वान्तं वरुणस्य तान्सर्वानेवोपसेवेत वारुणं त्वेव वर्जयेत्॥१॥ अमृतत्वं देवेभ्य आगायानीत्यागायेत्स्वधां पितृभ्य आशां मनुष्येभ्यस्तृणोदकं पशुभ्यः स्वर्गं लोकं यजमानायान्नमात्मन आगायनीत्येतानि मनसा ध्यायन्नप्रमत्तः स्तुवीत॥२॥ सर्वे स्वरा इन्द्रस्यात्मनः सर्व ऊष्माणः प्रजापतेरात्मानः सर्वे स्पर्शा मृत्योरात्मानस्तं यदि स्वरेषूपालभेतेन्द्रꣳशरणं प्रपन्नोऽभूवं स त्वा प्रति वक्ष्यतीत्येनं ब्रूयात्॥३॥ अथ यद्येनमूष्मसूपालभेत प्रजापतिꣳशरणं प्रपन्नोऽभूवं स त्वा प्रति पेक्ष्यतीत्येनं ब्रूयादथ यद्येनꣳस्पर्शेषूपालभेत मृत्युꣳशरणं प्रपन्नोऽभूवं स त्वा प्रति धक्ष्यतीत्येनं ब्रूयात्॥४॥ सर्वे स्वरा घोषवन्तो बलवन्तो वक्तव्या इन्द्रे बलं ददानीति सर्व ऊष्माणोऽग्रस्ता अनिरस्ता विवृता वक्तव्याः प्रजापतेरात्मानं परिददानीति सर्वे स्पर्शा लेशेनानभिनिहिता वक्तव्या मृत्योरात्मानं परिहराणीति॥५॥

त्रयोविंशः खण्डः

त्रयो धर्मस्कन्धा यज्ञोऽध्ययनं दानमिति प्रथमस्तप एव द्वितीयो ब्रह्मचार्याचार्यकुलवासी तृतीयोऽत्यन्तमात्मानमाचार्य-कुलेऽवसादयन्सर्व एते पुण्यलोका भवन्ति ब्रह्मसꣳस्थोऽमृतत्वमेति॥१॥ प्रजापतिर्लोकानभ्यतपत्तेभ्योऽभितप्ते-

भ्यस्त्रयी विद्या संप्रास्त्रवत्तामभ्यतपत्तस्या अभितप्ताया एतान्यक्षराणि संप्रास्त्रवन्त भूर्भुवः स्वरिति॥२॥ तान्यभ्यतपत्तेभ्योऽभितप्तेभ्य ॐकारः संप्रास्त्रवत्तद्यथा शङ्कुना सर्वाणि पर्णानि संतृण्णान्येवमोंकारेण सर्वा वाक्संतृण्णोङ्कार एवेदꣳसर्वमोङ्कार एवेदꣳसर्वम्॥३॥

चतुर्विंशः खण्डः

ब्रह्मवादिनो वदन्ति यद्वसूनां प्रातः सवनꣳरुद्राणां माध्यन्दिनꣳसवनमादित्यानां च विश्वेषां च देवानां तृतीयसवनम्॥१॥ क्व तर्हि यजमानस्य लोक इति स यस्तं न विद्यात्कथं कुर्यादथ विद्वान्कुर्यात्॥२॥ पुरा प्रातरनुवाकस्योपाकरणाज्जघनेन गार्हपत्यस्योदङ्मुख उपविश्य स वासवꣳसामाभिगायति॥३॥ लोकद्वारमपावार्णूऽ२ पश्येमत्वावयꣳराऽ१२१२ हिम् आऽ२ जायो आऽ ३४५ इति॥४॥ अथ जुहोति नमोऽग्नये पृथिवीक्षिते लोकक्षिते लोकं मे यजमानाय विन्दैष वै यजमानस्य लोक एतास्मि॥५॥ अत्र यजमानः परस्तादायुषः स्वाहापजहि परिघमित्युक्त्वोत्तिष्ठति तस्मै। वसवः प्रातः सवनꣳसम्प्रयच्छन्ति॥६॥ पुरा माध्यन्दिनस्य सवनस्योपाकरणाज्जघनेनाग्नीध्रीयस्योदङ्मुख उपविश्य स रौद्रꣳ सामाभिगायति॥७॥ लोकद्वारमपावार्णूऽ२पश्येमत्वावयꣳवैराऽ१२१२हिम् आऽ२-जायो आऽ३४५ इति॥८॥ अथ जुहोति नमो वायवेऽन्तरिक्षक्षिते लोकक्षिते लोकं मे यजमानाय विन्दैष वै यजमानस्य लोक एतास्मि॥९॥ अत्र यजमानः परस्तादायुषः स्वाहापजहि परिघमित्युक्त्वोत्तिष्ठति तस्मै रुद्रा माध्यन्दिनꣳसवनꣳ संप्रयच्छन्ति॥१०॥ पुरा तृतीयसवनस्योपाकरणाज्जघनेनाहवनीयस्योदङ्मुख उपविश्य स आदित्यꣳस वैश्वदेवꣳसामाभि-

गायति॥११॥ लोकद्वारमपावार्णू३ २पश्येमत्वावयꣳस्वारा३ १२१२। हिम् आ३ २। जायो। आ३ ३४५। इति॥१२॥ आत्यिमथ वैश्वदेवं लोकद्वारमपावार्णू३ २। पश्येमत्वा वयꣳसांम्रा३ १२१२ हिम् आ३ २। जायो। आ३ ३४५। इति॥१३॥ अथ जुहोति नम आदित्येभ्यश्च विश्वेभ्यश्च देवेभ्यो दिविक्षिद्भ्यो लोकक्षिद्भ्यो लोकं मे यजमानाय विन्दत॥१४॥ एष वै यजमानस्य लोक एतास्म्यत्र यजमानः परस्तादायुषः स्वाहापहत परिघमित्युक्त्वो-त्तिष्ठति॥१५॥ तस्मा आदित्याश्च विश्वे च देवास्तृतीयसवनꣳ-सम्प्रयच्छन्त्येष ह वै यज्ञस्य मात्रां वेद य एवं वेद य एवं वेद॥१६॥

॥ इति चतुर्थः प्रपाठकः ॥



पञ्चमः प्रपाठकः

प्रथमः खण्डः

असौ वा आदित्यो देवमधु तस्य द्यौरेव तिरश्चीनवꣳशोऽन्तरिक्षमपूपो मरीचयः पुत्राः॥१॥ तस्य ये प्राञ्चो रश्मयस्ता एवास्य प्राच्यो मधुनाड्यः। ऋच एव मधुकृत ऋग्वेद एव पुष्पं ता अमृता आपस्ता वा एता ऋचः॥२॥ एतमृग्वेदमभ्यतपꣳ-स्तस्याभितप्तस्य यशस्तेज इन्द्रियं वीर्यमन्नाद्यꣳरसोऽजायत॥३॥ तद्व्यक्षरत्तदादित्यमभितोऽश्रयत्तद्वा एतद्यदेतदादित्यस्य रोहितं रूपम्॥४॥

द्वितीयः खण्डः

अथ येऽस्य दक्षिणा रश्मयस्ता एवास्य दक्षिणा मधुनाड्यो यजूꣳष्येव मधुकृतो यजुर्वेद एव पुष्पं ता अमृता आपः॥१॥ तानि वा एतानि यजूꣳष्येतं यजुर्वेदमभ्यतपꣳस्त स्याभितप्तस्य यशस्तेज इन्द्रियं वीर्यमन्नाद्यꣳरसोऽजायत॥१॥ तद्व्यक्षरत्तदादित्यमभितोऽ-श्रयत्तद्वा एतद्यदेतदादित्यस्य शुक्लꣳरूपम्॥२॥

तृतीयः खण्डः

अथ येऽस्य प्रत्यञ्चो रश्मयस्ता एवास्य प्रतीच्यो मधुनाड्यः सामान्येव मधुकृतः सामवेद एव पुष्पं ता अमृता आपः॥१॥ तानि वा एतानि सामान्येतꣳसामवेदमभ्यतपꣳस्तस्याभितप्तस्य यशस्तेज इन्द्रियं वीर्यमन्नाद्यꣳरसोऽजायत॥२॥ तद्व्यक्षरत्तदादित्यमभितोऽ-श्रयत्तद्वा एतद्यदेतदादित्यस्य कृष्णꣳरूपम्॥३॥

चतुर्थः खण्डः

अथ येऽस्योदञ्चो रश्मयस्ता एवास्योदीच्यो मधुनाड्योऽथर्वाङ्गिरस एव मधुकृत इतिहासपुराणं पुष्पं ता अमृता आपः॥१॥ ते वा एतेऽथर्वाङ्गिरस एतदितिहासपुराणमभ्यतपंस्तस्याभितप्तस्य यशस्तेज इन्द्रियं वीर्यमन्नाद्यंरसोऽजायत॥२॥ तद्व्यक्षरत्तदादित्यमभितोऽश्रयत्तद्वा एतद्यदेतदादित्यस्य परं कृष्णंरूपम्॥३॥

पञ्चमः खण्डः

अथ येऽस्योर्ध्वा रश्मयस्ता एवास्योर्ध्वा मधुनाड्यो गुह्या एवादेशा मधुकृतो ब्रह्मैव पुष्पं ता अमृता आपः॥१॥ ते वा एते गुह्या आदेशा एतद्ब्रह्माभ्यतपंस्तस्याभितप्तस्य यशस्तेज इन्द्रियं वीर्यमन्नाद्यंरसोऽजायत॥२॥ तद्व्यक्षरंत्तदादित्यमभितोऽश्रयत्तद्वा एतद्यदेतदादित्यस्य मध्ये क्षोभत इव॥३॥ ते वा एते रसानांरसा वेदा हि रसास्तेषामेते रसास्तानि वा एतान्यमृतानाममृतानि वेदा ह्यमृतास्तेषामेतान्यमृतानि॥४॥

षष्ठः खण्डः

तद्यत्प्रथमममृतं तद्वसव उपजीवन्त्यग्निना मुखेन न वै देवा अश्नन्ति न पिबन्त्येतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति॥१॥ त एतदेव रूपमभिसंविशन्त्येतस्माद्रूपादुद्यन्ति॥२॥ स य एतदेवममृतं वेद वसूनामेवैको भूत्वाग्निनैवमुखेनैतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यति स एतदेव रूपमभिसंविशत्येतस्माद्रूपादुदेति॥३॥ स यावदादित्यःपुरस्तादुदेता पश्चादस्तमेता वसूनामेव तावदाधिपत्यंस्वाराज्यं पर्येता॥४॥

सप्तमः खण्डः

अथ यद्द्वितीयममृतं तद्रुद्रा उपजीवन्तीन्द्रेण मुखेन न वै देवा अश्नन्ति न पिबत्येतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति॥१॥ त एतदेव

रूपमभिसंविशन्त्येतस्माद्रूपादुद्यन्ति॥२॥ स य एवदेवममृतं वेद रुद्राणामेवैको भूत्वेन्द्रेणैव मुखेनैतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यति स एवदेव रूपभिसंविशत्येतस्माद्रूपादुदेति॥३॥ स यावदादित्यः पुरस्तादुदेता पश्चादस्तमेता द्विस्तावद्दक्षिणत उदेतोत्तरतोऽस्तमेता रुद्राणामेव तावदाधिपत्यꣳस्वाराज्यं पर्येता॥४॥

अष्टमः खण्ड

अथ यत्तृतीयममृतं तदादित्या उपजीवन्ति वरुणेन मुखेन न वै देवा अश्नन्ति न पिबन्त्येतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति॥१॥ त एतदेव रूपमभिसंविशन्त्येतस्माद्रूपादुद्यन्ति॥२॥ स य एतदेवममृतं वेदादित्यानामेवैको भूत्वा वरुणेनैव मुखेनैतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यति स एतदेव रूपमभिसंविशत्येतस्माद्रूपादुदेति॥३॥ स यावदादित्यो दक्षिणत उदेतोत्तरतोऽस्तमेता द्विस्तावत्पश्चादुदेता पुरस्तादस्तमेतादित्यानामेव तावदाधिपत्यꣳस्वाराज्यं पर्येता॥४॥

नवमः खण्डः

अथ यच्चतुर्थममृतं तन्मरुत उपजीवन्ति सोमेन मुखेन न वै देवा अश्नन्ति न पिबन्त्येतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति॥१॥ त एतदेव रूपमभिसंविशन्त्येतस्माद्रूपादुद्यन्ति॥२॥ स य एतदेवममृतं वेद मरुतामेवैको भूत्वा सोमेनैव मुखेनैतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यति स एतदेव रूपमभिसंविशत्येमतस्माद्रूपादुदेति॥३॥ स यावदादित्यः पश्चादुदेता पुरस्तादस्तमेता द्विस्तावदुत्तरत उदेता दक्षिणतोऽस्तमेता मरुतामेव तावदाधिपत्यꣳस्वाराज्यं पर्येता॥४॥

दशमः खण्डः

अथ यत्पञ्चमममृतं तत्साध्या उपजीवन्ति ब्रह्मणा मुखेन न वै देवा अश्नन्ति न पिबन्त्येतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यन्ति॥१॥ त एतदेव

रूपमभिसंविशन्त्येतस्माद्रूपादुद्यन्ति॥२॥ स य एतदेवममृतं वेद साध्यानामेवैको भूत्वा ब्रह्मणैव मुखेनैतदेवामृतं दृष्ट्वा तृप्यति स एतदेव रूपमभिसंविशत्येतस्माद्रूपादुदेति॥३॥ स यावदादित्य उत्तरत उदेता दक्षिणतोऽस्तमेता द्विस्तावदूर्ध्व उदेतार्वाङस्तमेता साध्यानामेव तावदाधिपत्यꣳस्वाराज्यं पर्येता॥४॥

एकादशः खण्डः

अथ तत ऊर्ध्व उदेत्य नैवोदेता नास्तमेतैकल एव मध्ये स्थाता तदेष श्लोकः॥१॥ न वै तत्र न निम्लोच नोदियाय कदाचन। देवास्तेनाहꣳसत्येन मा विराधिषि ब्रह्मणेति॥२॥ न ह वा अस्मा उदेति न निम्लोचति सकृद्दिवा हैवास्मै भवति य एतामेवं ब्रह्मोपनिषदं वेद॥३॥ तद्धैतद्ब्रह्मा प्रजापतय उवाच प्रजापतिर्मनवे मनुः प्रजाभ्यस्तद्धैतदुद्दालकायारुणये ज्येष्ठाय पुत्राय पिता ब्रह्म प्रोवाच॥४॥ इदं वाव तज्ज्येष्ठाय पुत्राय पिता ब्रह्म प्रब्रूयात् प्राणाय्याय वान्तेवासिने॥५॥ नान्यस्मै कस्मैचन यद्यप्यस्मा इमामद्भिः परिगृहीतां धनस्य पूर्णां दद्यादेतदेव ततो भूय इत्येतदेव ततो भूय इति॥६॥

द्वादशः खण्डः

गायत्री वा इदꣳसर्वं भूतं यदिदं किं च वाग्वै गायत्री वाग्वा इदꣳसर्वं भूतं गायति च त्रायते च॥१॥ या वै सा गायत्रीयं वाव सा येयं पृथिव्यस्याꣳहीदꣳसर्वं भूतं प्रतिष्ठितमेतामेव नातिशीयते॥२॥ या वै सा पृथिवी इयं वाव सा यदिदमस्मिन्पुरुषे शरीरमस्मिन्हीमे प्राणाः प्रतिष्ठिता एतदेव नातिशीयन्ते॥३॥ यद्वै तत्पुरुषे शरीरमिदं वाव तद्यदिदमस्मिन्नन्तः पुरुषे हृदयमस्मिन्हीमे प्राणाः प्रतिष्ठिता एतदेव नातिशीयन्ते॥४॥ सैषा चतुष्पदा षड्विधा गायत्री तदेतदृचाभ्यनूक्तम्॥५॥ तावानस्य महिमा ततो ज्यायाँश्च पूरुषः।

पादोऽस्य सर्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवीति॥६॥ यद्वै तद्ब्रह्मेतीदं वाव तद्योऽयं बहिर्धा पुरुषादाकाशो यो वै स बहिर्धा पुरुषादाकाशः॥७॥ अयं वाव स योऽयमन्त पुरुष आकाशो यो वै सोऽन्तः पुरुष आकाशः॥८॥ अयं वाव स योऽयमन्तर्हृदय आकाशस्तदेतत्पूर्णमप्रवर्ति पूर्णामप्रवर्तिनीꣳश्रियं लभते य एवं वेद॥९॥

त्रयोदशः खण्डः

तस्य ह वा एतस्य हृदयस्य पञ्च देवसुषयः स योऽस्य प्राङ् सुषिः स प्राणस्तच्चक्षुः स आदित्यस्तदेतत्तेजोऽन्नाद्यमित्युपासीत तेजस्व्यन्नादो भवति य एवं वेद॥१॥ अथ योऽस्य दक्षिणः सुषिः स व्यानस्तच्छ्रोत्रꣳस चन्द्रमास्तदेतच्छ्रीश्च यशश्चेत्युपासीत श्रीमान्यशस्वी भवति य एवं वेद॥२॥ अथ योऽस्य प्रत्यङ् सुषिः सोऽपानः सा वाक्सोऽग्निस्तदेतद्ब्रह्मवर्चसन्नाद्यमित्युपासीत ब्रह्मवर्चस्यन्नादो भवति य एवं वेद॥३॥ अथ योऽस्योदङ् सुषिः स समानस्तन्मनः स पर्जन्यस्तदेतत्कीर्तिश्च व्युष्टिश्चेत्युपासीत कीर्तिमान्व्युष्टिमान्भवति य एवं वेद॥४॥ अथ योऽस्योर्ध्वः सुषिः स उदानः स वायुः स आकाशस्तदेतदोजश्च महश्चेत्युपासीतौजस्वी महस्वान्भवति य एवं वेद॥५॥ ते वा एते पञ्च ब्रह्मपुरुषाः स्वर्गस्य लोकस्य द्वारपाः स य एतानेवं पञ्च ब्रह्मपुरुषान्स्वर्गस्य लोकस्य द्वारपान्वेदास्य कुले वीरो जायते प्रतिपद्यते स्वर्गं लोकं य एतानेवं पञ्च ब्रह्मपुरुषान्स्वर्गस्य लोकस्य द्वारपान्वेद॥६॥ अथ यदतः परो दिवो ज्योतिर्दीप्यते विश्वतः पृष्ठेषु सर्वतः पृष्ठेष्वनुत्तमेषूत्तमेषु लोकेष्विदं वाव तद्यदिदमस्मिन्नतः पुरुषे ज्योतिः॥७॥ तस्यैषादृष्टिर्यत्रैतदस्मिञ्छरीरे सꣳस्पर्शेनोष्णिमानं विजानाति तस्यैषा श्रुतिर्यत्रैतत्कर्णावपिगृह्य निनदमिव नदथुरिवाग्नेरिव ज्वलत

उपश्रृणोति तदेतद्दृष्टं च श्रुतं चेत्युपासीत चक्षुष्यः श्रुतो भवति य एवं वेद य एवं वेद॥८॥

चतुर्दशः खण्डः

सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत। अथ खलु क्रतुमयः पुरुषो यथाक्रतुरस्मिंल्लोके पुरुषो भवति तथेतः प्रेत्य भवति स क्रतुं कुर्वीत॥१॥ मनोमयः प्राणशरीरो भारूपः सत्यसंकल्प आकाशात्मा सर्वकर्मा सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरसः सर्वमिदमभ्यात्तोऽवाक्यनादरः॥२॥ एष म आत्मान्तर्हृदयेऽणीयान्व्रीहेर्वा यवाद्वा सर्षपाद्वा श्यामाकाद्वा श्यामाकतण्डुलाद्वैष म आत्मान्तर्हृदये ज्यायान्पृथिव्या ज्यायानन्तरिक्षाज्ज्यायान्दिवो ज्यायानेभ्यो लोकेभ्यः॥३॥ सर्वकर्मा सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरसः सर्वमिदमभ्यात्तोऽवाक्यनादर एष म आत्मान्तर्हृदय एतद्ब्रह्मैतमितः प्रेत्याभिसंभवितास्मीति यस्य स्यादद्धा न विचिकित्सास्तीति ह स्माह शाण्डिल्यः शाण्डिल्यः॥४॥

पञ्चदशः खण्डः

अन्तरिक्षोदरः कोशो भूमिबुध्नो न जीर्यति दिशो ह्यस्य स्रक्तयो द्यौरस्योत्तरं बिलꣳस एष कोशो वसुधानस्तस्मिन्विश्वमिदꣳश्रितम्॥१॥ तस्य प्राची दिग्जुहूर्नाम सहमाना नाम दक्षिणा राज्ञीनाम प्रतीची सुभूता नामोदीची तासां वायुर्वत्सः स य एतमेवं वायुं दिशां वत्सं वेद न पुत्ररोदꣳरोदिति सोऽहमेतमेवं वायुं दिशां वत्सं वेद मा पुत्ररोदꣳरुदम्॥२॥ अरिष्टं कोशं प्रपद्योऽमुनामुनामुना प्राणं प्रपद्येऽमुनामुनामुना भूः प्रपद्येऽमुनामुनामुना भुवः प्रपद्येऽमुनामुनामुना स्वः प्रपद्येमुनामुनाऽमुना॥३॥ स यदवोचं प्राणं प्रपद्य इति प्राणो वा इदꣳसर्वं भूतं यदिदं किं च तमेव तत्प्रापत्सि॥४॥ अथ यदवोचं भूः

प्रपद्य इति पृथिवीं प्रपद्येऽन्तरिक्षं प्रपद्ये दिवं प्रपद्य इत्येव तदवोचम्॥५॥ अथ यदवोचं भुवः प्रपद्य इत्यग्निं प्रपद्ये वायुं प्रपद्य आदित्यं प्रपद्य इत्येव तदवोचम्॥६॥ अथ यदवोचꣳस्वः प्रपद्य इत्यृग्वेदं प्रपद्ये यजुर्वेदं प्रपद्ये सामवेदं प्रपद्य इत्येव तदवोचं तदवोचम्॥७॥

षोडशः खण्डः

पुरुषो वाव यज्ञस्तस्य यानि चतुर्विꣳशति वर्षाणि तत्प्रातः सवनं चतुर्विꣳशत्यक्षरा गायत्री गायत्रं प्रातः सवनं तदस्य वसवोऽन्वायत्ताः प्राणा वाव वसव एते हीदꣳसर्वं वासयन्ति॥१॥ तं चेदेतस्मिन्वयसि किञ्चिदुपतपेत्स ब्रूयात्प्राणा वसव इदं मे प्रातः सवनं माध्यदिनꣳसवनमनुसंतनुतेति माहं प्राणानां वसूनां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो ह भवति॥२॥ अथ यानि चतुश्चत्वारिꣳशद्वर्षाणि तन्माध्यन्दिनꣳसवनं चतुश्चत्वारिꣳशदक्षरा त्रिष्टुप्त्रैष्टुभं माध्यन्दिनꣳसवनं तदस्य रुद्रा अन्वायत्ताः प्राणा वाव रुद्रा एते हीदꣳसर्वं रोदयन्ति॥३॥ तं चेदेतस्मिन्वयसि किञ्चिदुपतपेत्स ब्रूयात्प्राणा रुद्रा इदं मे माध्यन्दिनꣳसवनं तृतीयसवनमनुसंतनुतेति माहं प्राणानाꣳरुद्राणां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो ह भवति॥४॥ अथ यान्यष्टाचत्वारिꣳशद्वर्षाणि तत्तृतीयसवनमष्टाचत्वारिꣳशदक्षरा जगती जागतं तृतीयसवनं तदस्यादित्या अन्वायत्ताः प्राणा वावादित्या एते हीदꣳसर्वमाददते॥५॥ तं चेदेतस्मिन्वयसि किञ्चिदुपतपेत्स ब्रूयात् प्राणा आदित्या इदं मे तृतीयसवनमायुरनुसंतनुतेति माहं प्राणानामादित्यानां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो हैव भवति॥६॥ एतद्ध स्म वै तद्विद्वानाह महिदास ऐतरेयः स किं म एतदुपतपसि योऽहमनेन न

प्रेष्यामीति स ह षोडशं वर्षशतमजीवत्प्र ह षोडशं वर्षशतं जीवति य एवं वेद॥७॥

सप्तदशः खण्डः

स यदशिशिषति यत्पिपासति यन्न रमते ता अस्य दीक्षाः॥१॥ अथ यदश्नाति यत्पिबति यद्रमते तदुपसदैरेति॥२॥ अथ यद्धसति यज्जक्षति यन्मैथुनं चरति स्तुतशस्त्रैरेव तदेति॥३॥ अथ यत्तपो दानमार्जवमहिꣳसा सत्यवचनमिति ता अस्य दक्षिणाः॥४॥ तस्मादाहुः सोष्यत्यसोष्टेति पुनरुत्पादनमेवास्य तन्मरणमेवा-स्यावभृथः॥५॥ तद्धैतद्घोर आङ्गिरसः कृष्णाय देवकी-पुत्रायोक्त्वोवाचापिपास एव स बभूव सोऽन्तवेलायामेतत्त्रयं प्रतिपद्येताक्षितमस्यच्युतमसि प्राणसꣳशितमसीति तत्रैते द्वे ऋचौ भवतः॥६॥ आदित्प्रत्नस्य रेतसः। उद्वयं तमसस्परि ज्योतिः पश्यन्त उत्तरꣳस्वः पश्यन्त उत्तरं देवं देवत्रा सूर्य मगन्मज्योतिरुत्तममिति ज्योतिरुत्तममिति॥७॥

अष्टादशः खण्डः

मनो ब्रह्मेत्युपासीतेत्यध्यात्ममथाधिदैवतमाकाशो ब्रह्मेत्युभयमादिष्टं भवत्यध्यात्मं चाधिदैवतं च॥१॥ तदेतच्चतुष्पाद्ब्रह्म। वाक्पादः प्राणः पादश्चक्षुः पादः श्रोत्रं पाद इत्यध्यात्मम्।अथाधिदैवतमग्निः पादो वायुः पाद आदित्यः पादो दिशः पाद इत्युभयमेवादिष्टं भवत्यध्यात्मं चैवाधिदैवतं च॥२॥ वागेव ब्रह्मणश्चतुर्थः पादः। सोऽग्निना ज्योतिषा भाति च तपति च। भाति च तपति च कीर्त्या यशसा ब्रह्मवर्चसेन य एवं वेद॥३॥ प्राण एव ब्रह्मणश्चतुर्थः पादः। स वायुना ज्योतिषा भाति च तपति च। भाति च तपति च कीर्त्या यशसा ब्रह्मवर्चसेन य एवं वेद॥४॥ चक्षुरेव ब्रह्मणश्चतुर्थः पादः। स आदित्येन ज्योतिषा भाति च तपति

च। भाति च तपति च कीर्त्या यशसा ब्रह्मवर्चसेन य एवं वेद॥५॥ श्रोत्रमेव ब्रह्मणश्चतुर्थः पादः। स दिग्भिर्ज्योतिषा भाति च तपति च। भाति च तपति च कीर्त्या यशसा ब्रह्मवर्चसेन य एवं वेद य एवं वेद॥६॥

एकोनविंशः खण्डः

आदित्यो ब्रह्मेत्यादेशस्तस्योपव्याख्यानमसदेवेदमग्र आसीत्। तत्सदासीत्तत्समभवत्तदाण्डं निरवर्तत तत्संवत्सरस्य मात्रामशयत तन्निरभिद्यत ते आण्डकपाले रजतं च सुवर्णं चाभवताम्॥१॥ तद्यद्रजतꣳसेयं पृथिवी यत्सुवर्णꣳसा द्यौर्यज्जरायु ते पर्वता यदुल्बꣳसमेघो नीहारो या धमनयस्ता नद्यो यद्वास्तेयमुदकꣳस समुद्रः॥२॥ अथ यत्तदजायत सोऽसावादित्यस्तं जायमानं घोषा उलूलवोऽनूदतिष्ठन्त्सर्वाणि च भूतानि सर्वे च कामास्तस्मात्तस्योदयं प्रति प्रत्यायनं प्रति घोषा उलूलवोऽनूत्तिष्ठन्ति सर्वाणि च भूतानि सर्वे चैव कामाः॥३॥ स य एतमेवं विद्वानादित्यं ब्रह्मेत्युपास्तेऽभ्याशो ह यदेनꣳसाधवो घोषा आ च गच्छेयुरुप च निम्रेडेरन्निम्रेडेरन्॥४॥

॥ इति पञ्चमः प्रपाठकः ॥



षष्ठः प्रपाठकः

प्रथम खण्डः

जानश्रुतिर्ह पौत्रायणः श्रद्धादेयो बहुदायी बहुपाक्य आस। स ह सर्वत आवसथान्मापयाञ्चक्रे सर्वत एव मेऽन्नमत्स्यन्तीति॥१॥ अथ ह हꣳसा निशायामतिपेतुस्तद्धैवꣳहꣳसो हꣳसमभ्युवाद हो होऽयि भल्लाक्ष भल्लाक्ष जानश्रुतेः पौत्रायणस्य समं दिवा ज्योतिराततं तन्मा प्रसाङ्क्षी स्तत्त्वा मा प्रधाक्षीरिति॥२॥ तमु ह परः प्रत्युवाच कम्वर एनमेतत्सन्तꣳसयुग्वानमिव रैक्कमात्थेति यो नु कथꣳसयुग्वा रैक्क इति॥३॥ यथा कृतायविजितायाधरेयाः संयन्त्येवमेनꣳसर्वं तदभिसमेति यत्किञ्च प्रजाः साधु कुर्वन्ति यस्तद्वेद यत्स वेद स मयैतदुक्त इति॥४॥ तदु ह जानश्रुतिः पौत्रायण उपशुश्राव। स ह संजिहान एव क्षत्तारमुवाचाङ्गारे ह सयुग्वानमिव रैक्कमात्थेति यो नु कथꣳसयुग्वा रैक्क इति॥५॥ यथा कृतायविजितायाधरेयाः संयन्त्येवमेनꣳसर्वं तदभिसमेति यत्किञ्च प्रजाः साधु कुर्वन्ति यस्तद्वेद यत्स वेद स मयैतदुक्त इति॥६॥ स ह क्षत्तान्विष्य नाविदमिति प्रत्येयाय तꣳहोवाच यत्रारे ब्राह्मणस्यान्वेषणा तदेनमर्च्छेति॥७॥ सोऽधस्ताच्छकटस्य पामानं कषमाणमुपोपविवेश तꣳहाभ्युवाद त्वं नु भगवः सयुग्वा रैक्क इत्यहꣳह्यरा ३ इति ह प्रतिजज्ञे स ह क्षत्ताविदमिति प्रत्येयाय॥८॥

द्वितीयः खण्डः

तदु ह जानश्रुतिः पौत्रायणः षट्शतानि गवां निष्कमश्वतरीरथं तदादाय प्रतिचक्रमे तꣳहाभ्युवाद॥१॥ रैक्केमानि षट्शतानि गवामयं निष्कोऽयमश्वतरीरथोऽनु म एतां भगवो देवताꣳशाधि यां

देवतामुपास्स इति॥२॥ तमु ह परः प्रत्युवाचाह हारेत्वा शूद्र तवैव सह गोभिरस्त्विति। तदु ह पुनरेव जानश्रुतिः पौत्रायणः सहस्रं गवां निष्कमश्वतरीरथं दुहितरं तदादाय प्रतिचक्रमे॥३॥ तꣳहाभ्युवाद रैक्वेदꣳसहस्रं गवामयं निष्कोऽयमश्वतरीरथ इयं जायायं ग्रामो यस्मिन्नास्सेऽन्वेव मा भगवः शाधीति॥४॥ तस्या ह मुखमुपोद्गृह्णन्नुवाचाजहारेमाः शूद्रानेनैव मुखेनालापयिष्यथा इति ते हैते रैक्वपर्णा नाम महावृषेषु यत्रास्मा उवास स तस्मै होवाच॥५॥

तृतीयः खण्डः

वायुर्वाव संवर्गो यदा वा अग्निरुद्वायति वायुमेवाप्येति यदा सूर्योऽस्तमेति वायुमेवाप्येति यदा चन्द्रोऽस्तमेति वायुमेवाप्येति॥१॥ यदाप उच्छुष्यन्ति वायुमेवापियन्ति वायुर्ह्येवैतान् सर्वान्संवृङ्क्त इत्यधिदैवतम्॥२॥ अथाध्यात्मं प्राणो वाव संवर्गः स यदा स्वपिति प्राणमेव वागप्येति प्राणं चक्षुः प्राणं श्रोत्रं प्राणं मनः प्राणो ह्येवैतान् सर्वान्संवृङ्क्त इति॥३॥ तौ वा एतौ द्वौ संवर्गौ वायुरेव देवेषु प्राणः प्राणेषु॥४॥ अथ ह शौनकं च कापेयमभिप्रतारिणं च काक्षसेनिं परिविष्यमाणौ ब्रह्मचारी बिभिक्षे तस्मा उ ह न ददतुः॥५॥ स होवाच महात्मनश्चतुरो देव एकः कः स जगार भुवनस्य गोपास्तं कापेय नाभिपश्यन्ति मर्त्या अभिप्रतारिन्बहुधा वसन्तं यस्मै वा एतदन्नं तस्मा एतन्न दत्तमिति॥६॥ तदु ह शौनकः कापेयः प्रतिमन्वानः प्रत्येयायात्मा देवानां जनिता प्रजानाꣳहिरण्यदꣳष्ट्रो बभसोऽनसूरिर्महान्तमस्य महिमानमाहुरनद्यमानो यदनन्नमत्तीति वै वयं ब्रह्मचारिन्नेदमुपास्महे दत्तास्मै भिक्षामिति॥७॥ तस्मा उ ह ददुस्ते वा एते पञ्चान्ये पञ्चान्ये दश सन्तस्तत्कृतं तस्मात्सर्वासु दिक्ष्वन्नमेव दश कृतꣳसैषा

विराडन्नादि तयेदꣳसर्वं दृष्टꣳसर्वमस्येदं दृष्टं भवत्यन्नादो भवति य एवं वेद य एवं वेद॥८॥

चतुर्थः खण्डः

सत्यकामो ह जाबालो जबालां मातरमामन्त्रयाञ्चक्रे ब्रह्मचर्यं भवति विवत्स्यामि किं गोत्रोऽन्वहमस्मीति॥१॥ सा हैनमुवाच नाहमेतद्वेद तात यद्गोत्रस्त्वमसि बह्वहं चरन्ती परिचारिणी यौवने त्वमलभे साहमेतन्न वेद यद्गोत्रस्त्वमसि जबाला तु नामाहमस्मि सत्यकामो नाम त्वमसि स सत्यकाम एव जाबालो ब्रुवीथा इति॥२॥ स ह हारिद्रुमतं गौतममेत्योवाच ब्रह्मचर्यं भगवति वत्स्याम्युपेयां भगवन्तमिति॥३॥ तꣳहोवाच किं गोत्रो नु सोम्यासीति स होवाच नाहमेतद्वेद भो यद्गोत्रोऽहमस्म्यपृच्छं मातरꣳसा मा प्रत्यब्रवीद्बह्वहं चरन्ती परिचारिणी यौवने त्वामलभे साहमेतन्न वेद यद्गोत्रस्त्वमसि जबाला तु नामाहमस्मि सत्यकामो नाम त्वमसीति सोऽहꣳसत्यकामो जाबालोऽस्मि भो इति॥४॥ तꣳहोवाच नैतदब्राह्मणो विवक्तुमर्हति समिधꣳसोम्याहरोप त्वा नेष्ये न सत्यादगा इति तमुपनीय कृशानामबलानां चतुःशता गा निराकृत्योवाचेमाः सोम्यानुसंव्रजेति ता अभिप्रस्थापयन्नुवाच नासहस्रेणावर्तेयेति स ह वर्षगणं प्रोवास ता यदा सहस्रꣳसंपेदुः॥५॥

पञ्चमः खण्डः

अथ हैनमृषभोऽभ्युवाद सत्यकाम ३ इति भगव इति ह प्रतिशुश्राव प्राप्ताः सोम्य सहस्रꣳस्मः प्रापय न आचार्यकुलम्॥१॥ ब्रह्मणश्च ते पादं ब्रवाणीति ब्रवीतु मे भगवानिति तस्मै होवाच प्राची दिक्कला प्रतीची दिक्कला दक्षिणा दिक्कलोदीची दिक्कलैष वै सोम्य चतुष्कलः पादो ब्रह्मणः प्रकाशवान्नाम॥२॥ स य एतमेवं

विद्वाँश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणः प्रकाशवानित्युपास्ते प्रकाशवान-स्मिँल्लोके भवति प्रकाशवतो ह लोकाञ्जयति य एतमेवं विद्वाँश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणः प्रकाशवानित्युपास्ते॥३॥

षष्ठः खण्डः

अग्निष्टे पादं वक्तेति स ह श्वोभूते गा अभिप्रस्थाप्रयाञ्चकार। ता यत्राभि सायं बभूवुस्तत्राग्निमुपसमाधाय गा उपरुध्य समिधमाधाय पश्चादग्नेः प्राङुपोपविवेश॥१॥ तमग्निरभ्युवाद सत्यकाम ३ इति भगव इति ह प्रतिशुश्राव॥२॥ ब्रह्मणः सोम्य ते पादं ब्रवाणीति ब्रवीतु मे भगवानिति तस्मै होवाच पृथिवी कलाऽन्तरिक्षं कला द्यौः कला समुद्रः कलैष वै सोम्य चतुष्कलः पादो ब्रह्मणोऽनन्तवान्नाम॥३॥ स य एतमेवं विद्वाँश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणोऽनन्तवानित्युपास्ते अनन्तवानस्मिँल्लोके भवत्यनन्तवतो ह लोकाञ्जयति य एतमेवं विद्वाँश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणोऽनन्त-वानित्युपास्ते॥४॥

सप्तमः खण्डः

हꣳसस्ते पादं वक्तेति स ह श्वोभूते गा अभिप्रस्थापयाञ्चकार ता यत्राभि सायं बभूवुस्तत्राग्निमुपसमाधाय गा उपरुध्य समिधमाधाय पश्चादग्नेः प्राङुपोपविवेश॥१॥ तꣳहꣳस उपनिपत्याभ्युवाद सत्यकाम३ इति भगव इति ह प्रतिशुश्राव॥२॥ ब्रह्मणः सोम्य ते पादं ब्रवाणीति ब्रवीतु मे भगवानिति तस्मै होवाचाग्निः कला सूर्यः कला चन्द्रः कला विद्युत्कलैष वै सोम्य चतुष्कलः पादो ब्रह्मणो ज्योतिष्मान्नाम॥३॥ स च एतमेवं विद्वाँश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणो ज्योतिष्मानित्युपास्ते ज्योतिष्मानस्मिँल्लोके भवति ज्योतिष्मतो ह लोकाञ्जयति य एतमेवं विद्वाँश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मणो ज्योतिष्मानित्युपास्ते॥४॥

अष्टमः खण्डः

मद्गुष्टे पादं वक्तेति स ह श्वोभूते गा अभिप्रस्थापयाञ्चकार ता यत्राभि सायं बभूवुस्तत्राग्निमुपसमाधाय गा उपरुध्य समिधमाधाय पश्चादग्नेः प्राङुपोपविवेश॥१॥ तं मद्गुरुपनिपत्याभ्युवाद सत्यकाम ३ इति भगव इति ह प्रतिशुश्राव॥२॥ ब्रह्मणः सोम्य ते पादं ब्रवाणीति ब्रवीतु मे भगवानिति तस्मै होवाच प्राणः कला चक्षुः कला श्रोत्रं कला मनः कलैष वै सोम्य चतुष्कलाः पादो ब्रह्मण आयतनवान्नाम॥३॥ स य एतमेवं विद्वाँश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मण आयतनवानित्युपास्त आयतनवानस्मिँल्लोके भवत्यायतनवतो ह लोकाञ्जयति य एतमेवं विद्वाँश्चतुष्कलं पादं ब्रह्मण आयतनवानित्युपास्ते॥४॥

नवमः खण्डः

प्राप हाचार्यकुलं तमाचार्योऽभ्युवाद सत्यकाम ३ इति भगव इति ह प्रतिशुश्राव॥१॥ ब्रह्मविदिव वै सोम्य भासि को नु त्वानुशशासेत्यन्ये मनुष्येभ्य इति ह प्रतिजज्ञे भगवाँस्त्वेव मे कामे ब्रूयात्॥२॥ श्रुतꣳह्येव मे भगवद्दृशेभ्य आचार्याद्धैव विद्या विदिता साधिष्ठं प्रापतीति तस्मै हैतदेवोवाचात्र ह न किञ्चन वीयायेति वीयायेति॥३॥

दशमः खण्डः

उपकोसलो ह वै कामलायनः सत्यकामे जाबाले ब्रह्मचर्यमुवास तस्य ह द्वादशवर्षाण्यग्नीन्परिचचार स ह स्मान्यानन्तेवासिनः समावर्तयꣳस्तꣳह स्मैव न समावर्तयति॥१॥ तं जायोवाच तप्तो ब्रह्मचारी कुशल मग्नीन्परिचचारीन्मा त्वाग्नयः परिप्रवोचन्प्रब्रूह्यस्मा इति तस्मै हा प्रोच्यैव प्रवासाञ्चक्रे॥२॥ स ह

व्याधिनानशितुं दध्रे तमाचार्यजायोवाच ब्रह्मचारिन्नशान किं नु नाश्नासीति। स होवाच बहव इमेऽस्मिन्पुरुषे कामा नानात्यया व्याधिभिः प्रतिपूर्णोऽस्मि नाशिष्यामीति॥३॥ अथ हाग्नयः समूदिरे तप्तो ब्रह्मचारी कुशलं नः पर्यचारीद्धन्तास्मै प्रब्रवामेति तस्मै होचुः प्राणो ब्रह्म कं ब्रह्म खं ब्रह्मेति॥४॥ स होवाच विजानाम्यहं यत्प्राणे ब्रह्म कं च तु खं च न विजानामीति ते होचुर्यद्वाव कं तदेव खं यदेव खं तदेव कमिति प्राणं च हास्मै तदाकाशं चोचुः॥५॥

एकादशः खण्डः

अथ हैनं गार्हपत्योऽनुशशास पृथिव्यग्निरन्नमादित्य इति। य एष आदित्ये पुरुषो दृश्यते सोऽहमस्मि स एवाहमस्मीति॥१॥ स यँ एतमेवं विद्वानुपास्तेऽपहते पापकृत्यां लोकी भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति नास्यावरपुरुषाः क्षीयन्त उप वयं तं भुञ्जामोऽस्मिँश्च लोकेऽमुष्मिँश्च य एतमेवं विद्वानुपास्ते॥२॥

द्वादशः खण्डः

अथ हैनमन्वाहार्यपचनोऽशशासापो दिशो नक्षत्राणि चन्द्रमा इति। य एष चन्द्रमसि पुरुषो दृश्यते सोऽहमस्मि स एवाहमस्मीति॥१॥ स य एतमेवं विद्वानुपास्तेऽपहते पापकृत्यां लोकी भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति नास्यावरपुरुषाः क्षीयन्त उप वयं तं भुञ्जामोऽस्मिँश्च लोकेऽमुष्मिँश्च य एतमेवं विद्वानुपास्ते॥२॥

त्रयोदशः खण्डः

अथ हैनमाहवनीयोऽनुशशास प्राण आकाशो द्यौर्विद्युदिति।

य एष विद्युति पुरुषो दृश्यते सोऽहमस्मि स एवाहमस्मीति॥१॥ स य एतमेवं विद्वानुपास्तेऽपहते पापकृत्यां लोकी भवति सर्वमायुरेति ज्योग्जीवति नास्यावरपुरुषाःक्षीयन्त उप वयं तं भुञ्जामोऽस्मिँश्च लोकेऽमुष्मिँश्च य एतमेवं विद्वानुपास्ते॥२॥

चतुर्दशः खण्डः

ते होचुरुपकोसलैषा सोम्य तेऽस्मद्विद्यात्मविद्याचाचार्यस्तु ते गतिं वक्तेत्याजगाम हास्याचार्यस्तमाचार्योऽभ्युवादोपकोसल ३ इति॥१॥ भगव इति ह प्रतिशुश्राव ब्रह्मविद इव सोम्य ते मुखं भाति को नु त्वानुशशासेति को नु माऽनुशिष्याद्भो इतीहापेव निह्नुत इमे नूनमीदृशा अन्यादृशा इतीहाग्नीनभ्यूदे किं नु सोम्य किल तेऽवोचन्निति॥२॥ इदमिति ह प्रतिजज्ञे लोकान्वाव किल सोम्य तेऽवोचन्नहं तु ते तद्वक्ष्यामि यथा पुष्कर पलाश आपो न श्लिष्यन्त एवमेवंविदि पापं कर्म न श्लिष्यत इति ब्रवीतु मे भगवानिति तस्मै होवाच॥३॥

पञ्चदशः खण्डः

य एषोऽक्षिणि पुरुषो दृश्यत एष आत्मेति होवाचैतदमृत-मभयमेतद्ब्रह्मेति। तद्यद्यप्यस्मिन्सर्पिर्वोदकं वा सिञ्चति वर्त्मनी एव गच्छति॥१॥ एतꣳसंयद्वाम इत्याचक्षत एतꣳहि सर्वाणि वामान्यभिसंयन्ति सर्वाण्येनं वामान्यभिसंयन्ति य एवं वेद॥२॥ एष उ एव वामनीरेष हि सर्वाणि वामानि नयति सर्वाणि वामानि नयति य एवं वेद॥३॥ एष उ एव भामनीरेष हि सर्वेषु लोकेषु भाति सर्वेषु लोकेषु भाति य एवं वेद॥४॥ अथ यदु चैवास्मिञ्छव्यं कुर्वन्ति यदि च नार्चिषमेवाभिसंभवन्त्यर्चिषोऽहरह्न आपूर्यमाण-पक्षमापूर्यमाणपक्षाद्यान्षडुदङ्ङेति मासाꣳस्तान्मासेभ्यः

संवत्सरꣳसंवत्सरादादित्यमादित्याच्चन्द्रमसं चन्द्रमसो विद्युतं तत्पुरुषोऽमानवः स एनान्ब्रह्म गमयत्येष देवपथो ब्रह्मपथ एतेन प्रतिपद्यमाना इमं मानवमावर्तं नावर्तन्ते नावर्तन्ते॥५॥

षोडशः खण्डः

एष ह वै यज्ञो योऽयं पवत एष ह यन्निदꣳसर्वं पुनाति। यदेष यन्निदꣳसर्वं पुनाति तस्मादेष एव यज्ञस्तस्य मनश्च वाक्च वर्तनी॥१॥ तयोरन्यतरां मनसा सꣳस्करोति ब्रह्मा वाचा होताध्वर्युरुद्गातान्यतराꣳ स यत्रोपाकृते प्रातरनुवाके पुरा परिधानीयाया ब्रह्मा व्यववदति॥२॥ अन्यतरामेव वर्तनीं सँस्करोति हीयतेऽन्यतरा स यथैकपादव्रजन्रथो वैकेन चक्रेण वर्तमानो रिष्यत्येवमस्य यज्ञो रिष्यति यज्ञꣳरिष्यन्तं यजमानोऽनुरिष्यति स इष्ट्वा पापीयान् भवति॥३॥ अथ यत्रोपाकृते प्रातरनुवाके न पुरा परिधानीयाया ब्रह्मा व्यवदत्युभे एव वर्तनी सँस्कुर्वन्ति न हीयतेऽन्यतरा॥४॥ स यथोभयपाद् व्रजन्रथो वोभाभ्यां चक्राभ्यां वर्तमानः प्रतितिष्ठत्येवमस्य यज्ञः प्रतितिष्ठति यज्ञं प्रतितिष्ठन्तं यजमानोऽनुप्रतितिष्ठति स इष्ट्वा श्रेयान् भवति॥५॥

सप्तदशः खण्डः

प्रजापतिर्लोकानभ्यतपत्तेषां तप्यमानानाꣳरसान् प्रावृहदग्निं पृथिव्या वायुमन्तरिक्षादादित्यं दिवः॥१॥ स एतास्तिस्रो देवता अभ्यतपत्तासां तप्यमानानाꣳरसान् प्रावृहदग्नेर्ऋचो वायोर्यजूँषि सामान्यादित्यात्॥२॥ स एतां त्रयीं विद्यामभ्यतपत्तस्या स्तप्यमानाया रसान् प्रावृहद्भूरित्यृग्भ्यो भुवरिति यजुर्भ्यः स्वरिति सामभ्यः॥३॥ तद्यद्यृक्तोरिष्येद्भूः स्वाहेति गार्हपत्ये जुहुयादृचामेव तद्रसेनर्चां वीर्येणर्चां यज्ञस्य विरिष्टꣳ संदधाति॥४॥ अथ यदि

यजुष्टोरिष्येद्भुवः स्वाहेति दक्षिणाग्नौ जुहुयाद् यजुषामेव तद्रसेन यजुषां वीर्येण यजुषां यज्ञस्य विरिष्टꣳ संदधाति॥५॥ अथ यदि सामतो रिष्येत्स्वः स्वाहेत्याहवनीये जुहुयात्साम्नामेव तद्रसेन साम्नां विर्येण साम्नां यज्ञस्य विरिष्टꣳ संदधाति॥६॥ तद्यथा लवणेन सुवर्णं संदध्यात् सुवर्णेन रजतꣳरजतेन त्रपु त्रपुणा सीसꣳसीसेन लोहं लोहेन दारु दारु चर्मणा॥७॥ एवमेषां लोकानामासां देवताना मस्यास्त्रय्या विद्याया वीर्येण यज्ञस्य विरिष्टꣳसंदधाति भेषजकृतो ह वा एष यज्ञो यत्रैवं विद्ब्रह्मा भवति॥८॥ एष ह वा उदक्प्रवणो यज्ञो यत्रैवंविद् ब्रह्मा भवत्येवंविदꣳह वा एषा ब्रह्माणमनुगाथा यतो यत आवर्तते तत्तद्गच्छति॥९॥ मानवो ब्रह्मैवैक ऋत्विक्कुरू नश्वाभिरक्षत्येवंविद्ध वै ब्रह्मा यज्ञं यजमानꣳसर्वांश्चर्त्विजोऽभिरक्षति तस्मादेवंविदमेव ब्रह्माणं कुर्वीत नानेवंविदं नानेवंविदम्॥१०॥

॥ इति षष्ठः प्रपाठकः ॥



सप्तमः प्रपाठकः

प्रथमः खण्डः

यो ह वै ज्येष्ठं च श्रेष्ठं च वेद ज्येष्ठश्च ह वै श्रेष्ठश्च भवति प्राणो वाव ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्च॥१॥ यो ह वै वसिष्ठं वेद वसिष्ठो ह स्वानां भवति वाग्वाव वसिष्ठः॥२॥ यो ह वै प्रतिष्ठां वेद प्रति ह तिष्ठत्यस्मिँश्च लोकेऽमुष्मिँश्च चक्षुर्वाव प्रतिष्ठा॥३॥ यो ह वै संपदं वेद सꣳहास्मै कामाः पद्यन्ते दैवाश्च मानुषाश्च श्रोत्रं वाव संपत्॥४॥ यो ह वा आयतनं वेदायतनꣳह स्वानां भवति मनो ह वा आयतनम्॥५॥ अथ ह प्राणा अहꣳश्रेयसि व्यूदिरेऽहꣳश्रेयानस्म्यꣳह श्रेयानस्मीति॥६॥ ते ह प्राणाः प्रजापतिं पितरमेत्योचुर्भगवन्को नः श्रेष्ठ इति तान्होवाच यस्मिन्व उत्क्रान्ते शरीरं पापिष्ठतरमिव दृश्येत स वः श्रेष्ठ इति॥७॥ सा ह वागुच्चक्राम सा संवत्सरं प्रोष्य पर्येत्योवाच कथमशकतर्ते मज्जीवितुमिति? यथा कला अवदन्तः प्राणन्तः प्राणेन पश्यन्तश्चक्षुषा शृण्वन्तः श्रोत्रेण ध्यायन्तो मनसैवमिति प्रविवेश ह वाक्॥८॥ चक्षुर्होच्चक्राम तत्संवत्सरं प्रोष्य पर्येत्योवाच कथमशकतर्ते मज्जीवितुमिति? यथान्धा अपश्यन्तः प्राणन्तः प्राणेन वदन्तो वाचा शृण्वन्तः श्रोत्रेण ध्यायन्तो मनसैवमिति प्रविवेश ह चक्षुः॥९॥ श्रोत्रꣳहोच्चक्राम तत्संवत्सरं प्रोष्य पर्येत्योवाच कथमशकतर्ते मज्जीवितुमिति? यथा बधिरा अशृण्वन्तः प्राणन्तः प्राणेन वदन्तो वाचा पश्यन्तश्चक्षुषा ध्यायन्तो मनसैवमिति प्रविवेश ह श्रोत्रम्॥१०॥ मनो होच्चक्राम तत्संवत्सरं प्रोष्य पर्येत्योवाच कथमशकतर्ते मज्जीवितुमिति? यथा बाला अमनसः प्राणन्तः प्राणेन वदन्तो वाचा पश्यन्तश्चक्षुषा शृण्वन्तः श्रोत्रेणैवमिति प्रविवेश ह

मनः॥११॥ अथ ह प्राण उच्चिक्रमिषन्स यथा सुहयः षड्वीशशङ्कून् सङ्खिदेदेवमितरान् प्राणान् समखिदत्तꣳहाभिसमेत्योचुर्भगवन्नेधि त्वं नः श्रेष्ठोऽसि मोत्क्रमीरिति॥१२॥ अथ हैनं वागुवाच यदहं वसिष्ठोऽस्मि त्वं तद्वसिष्ठोऽसीत्यथ हैनं चक्षुरुवाच यदहं प्रतिष्ठास्मि त्वं तत्प्रतिष्ठासीति॥१३॥ अथ हैनꣳश्रोत्रमुवाच यदहꣳसम्पदस्मि त्वं तत्सम्पदसीत्यथ हैनं मन उवाच यदहमायतनमस्मि त्वं तदायतनमसीति॥१४॥ न वै वाचो न चक्षूꣳषि न श्रोत्राणि न मनाꣳसीत्याचक्षते प्राणा इत्येवाचक्षते प्राणो ह्येवैतानि सर्वाणि भवति॥१५॥

द्वितीयः खण्डः

स होवाच किं मेऽन्नं भविष्यतीति यत्किञ्चिदिदमाश्वभ्य आ शकुनिभ्य इति होचुस्तद्वा एतदनस्यान्नमनो ह वै नाम प्रत्यक्षं न ह वा एवंविदि किञ्चनानन्नं भवतीति॥१॥ स होवाच किं मे वासो भविष्यतीत्याप इति होचुस्तस्माद्वा एतदशिष्यन्तः पुरस्ताच्चोपरिष्टाच्चाद्भिः परिदधति लम्भुको ह वासो भवत्यनग्नो ह भवति॥२॥ तद्धैतत्सत्यकामो जाबालो गोश्रुतये वैयाघ्रपद्यायोक्त्वोवाच यद्यप्येनच्छुष्काय स्थाणवे ब्रूयाज्जायेरन्नेवास्मिन् शाखाः प्ररोहेयुः पलाशानीति॥३॥ अथ यदि महज्जिगमिषेदमावास्यायां दीक्षित्वा पौर्णमास्याꣳरात्रौ सर्वौषधस्य मन्थं दधिमधुनोरुपमथ्य ज्येष्ठाय श्रेष्ठाय स्वाहेत्यग्नावाज्यस्य हुत्वा मन्थे संपातमवनयेत्॥४॥ वसिष्ठाय स्वाहेत्यग्नावाज्यस्य हुत्वा मन्थे संपातमवनयेत्प्रतिष्ठायै स्वाहेत्यग्नावाज्यस्य हुत्वा मन्थे संपातमवनयेत्संपदे स्वाहेत्यग्नावाज्यस्य हुत्वा मन्थे संपातमवनयेदायतनाय स्वाहेत्यग्नावाज्यस्य हुत्वा मन्थे संपातमवनयेत्॥५॥ अथ प्रतिसृप्याञ्जलौ मन्थमाधाय जपत्यमो नामास्यमा हि ते सर्वमिदꣳस हि ज्येष्ठः श्रेष्ठो राजाधिपतिः स मा

ज्येष्ठ्यꣳश्रेष्ठ्यꣳराज्यमाधिपत्यं गमयत्वहमेवेदꣳसर्वमसानीति॥६॥ अथ खल्वेतयर्चा पच्छ आचामति। तत्सवितुर्वृणीमह इत्याचामति। वयं देवस्य भोजन मित्याचामति। श्रेष्ठꣳसर्वधातमित्याचामति। तुरं भर्गस्य धीमहीति सर्वं पिबति। निर्णिज्य कꣳसं चमसं वा पश्चादग्नेः संविशति चर्मणि वा स्थण्डिले वा वाचंयमोऽप्रसाहः। स यदि स्त्रियं पश्येत्समृद्धं कर्मेति विद्यात्॥७॥ तदेषश्लोको यदा कर्मसु काम्येषु स्त्रियꣳस्वप्नेषु पश्यति समृद्धिं तत्र जानीयात्तस्मिन् स्वप्ननिदर्शने तस्मिन् स्वप्ननिदर्शने॥८॥

तृतीयः खण्डः

श्वेतकेतुर्हारुणेयः पञ्चालानाꣳसमितिमेयाय तꣳह प्रवाहणो जैवलिरुवाच कुमारानु त्वाशिषत्पितेत्यनु हि भगव इति॥१॥ वेत्थ यदितोऽधि प्रजाः प्रयन्तीति न भगव इति वेत्थ यथा पुनरावर्तन्त३ इति न भगव इति वेत्थ पथोर्देवयानस्य पितृयाणस्य च व्यावर्तना३ इति न भगव इति॥२॥ वेत्थ यथासौ लोको न संपूर्यत३ इति न भगव इति वेत्थ यथा पञ्चम्यामाहुतावापः पुरुषवचसो भवन्तीति नैव भगव इति॥३॥ अथानु किमनुशिष्टोऽवोचथा यो हीमानि न विद्यात् कथꣳ सोऽनुशिष्टो ब्रुवीतेति स हायस्तः पितुरर्धमेयाय तꣳहोवाचाननुशिष्य वाव किल मा भगवान्ब्रवीदनु त्वाशिषमिति॥४॥ पञ्च मा राजन्यबन्धुः प्रश्नानप्राक्षीत्तेषां नैकञ्चनाशकं विवक्तुमिति स होवाच यथा मा त्वं तदैतानवदो यथाहमेषां नैकञ्चन वेद यद्यहमिमानवेदिष्यं कथं ते नावक्ष्यमिति॥५॥ स ह गौतमो राज्ञोऽर्धमेयाय तस्मै ह प्राप्तायार्हां चकार स ह प्रातः सभाग उदेयाय तꣳहोवाच मानुषस्य भगवन् गौतम वित्तस्य वरं वृणीथा इति स होवाच तवैव राजन्मानुषं वित्तं यामेव कुमारस्यान्ते वाचमभाषथास्तामेव मे ब्रूहीति स ह कृच्छ्री बभूव॥६॥ तꣳह चिरं वसेत्याज्ञापयाञ्चकार तꣳहोवाच यथा मा त्वं

गौतमावदो यथेयं न प्राक्त्वत्तः पुरा विद्या ब्राह्मणान्गच्छति तस्मादु सर्वेषु लोकेषु क्षत्रस्यैव प्रशासनमभूदिति तस्मै होवाच॥७॥

चतुर्थः खण्डः

असौ वाव लोको गौतमाग्निस्तस्यादित्य एव समिद्रश्मयो धूमोऽहरर्चिश्चन्द्रमा अङ्गारा नक्षत्राणि विस्फुलिङ्गाः॥१॥ तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवाः श्रद्धां जुह्वति तस्या आहुतेः सोमो राजा संभवति॥२॥

पञ्चमः खण्डः

पर्जन्यो वाव गौतमाग्निस्तस्य वायुरेव समिदभ्रं धूमो विद्युदर्चिरशनिरङ्गारा ह्रादनयो विस्फुलिङ्गाः॥१॥ तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवाः सोमꣳराजानं जुह्वति तस्या आहुतेर्वर्षं संभवति॥२॥

षष्ठः खण्डः

पृथिवी वाव गौतमाग्निस्तस्याः संवत्सर एव समिदाकाशो धूमो रात्रिरर्चिर्दिशोऽङ्गारा अवान्तरदिशो विस्फुलिङ्गाः॥३॥ तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा वर्षं जुह्वति तस्या आहुतेरन्नꣳसंभवति॥४॥

सप्तमः खण्डः

पुरुषो वाव गौतमाग्निस्तस्य वागेव समित्प्राणो धूमो जिह्वार्चिश्चक्षुरङ्गाराः श्रोत्रं विस्फुलिङ्गाः॥१॥ तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा अन्नं जुह्वति तस्या आहुतेरेतः संभवति॥२॥

अष्टमः खण्डः

योषा वाव गौतमाग्निस्तस्या उपस्थ एव समिद्यदुपमन्त्रयते स धूमो योनिरर्चिर्यदन्तः करोति तेऽङ्गारा अभिनन्दा विस्फुलिङ्गाः॥१॥ तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा रेतो जुह्वति तस्या आहुतेर्गर्भः संभवति॥२॥

नवमः खण्डः

इति तु पञ्चम्यामाहुतावापः पुरुषवचसो भवन्तीति स उल्बावृतो गर्भो दश वा नव वा मासानन्तः शयित्वा यावद्वाऽथ जायते॥१॥ स जातो यावदायुषं जीवति तं प्रेतं दिष्टमितोऽग्नय एव हरन्ति यत एवेतो यतः संभूतो भवति॥२॥

दशमः खण्डः

तद्य इत्थं विदुः। ये चे मेऽरण्ये श्रद्धा तप इत्युपासते तेऽर्चिषमभिसंभवन्त्यर्चिषोऽहरह्न आपूर्यमाणपक्षमापूर्यमाणपक्षा-द्यान्षडुदङ्ङेति मासाँस्तान्॥१॥ मासेभ्यः संवत्सरꣳ-संवत्सरादादित्यमादित्याच्चन्द्रमसं चन्द्रमसो विद्युतं तत्पुरुषोऽमानवः स एनान्ब्रह्म गमयत्येषदेवयानः पन्था इति॥२॥ अथ य इमे ग्राम इष्टापूर्ते दत्तमित्युपासते ते धूममभिसंभवन्ति धूमाद्रात्रिꣳरात्रेरपरपक्षमपरपक्षाद्यान्षड्दक्षिणैति मासास्तान्नैते संवत्सरमभिप्राप्नुवन्ति॥३॥ मासेभ्यः पितृलोकं पितृलोकादाकाशमाकाशाच्चन्द्रमसमेष सोमो राजा तद्देवानामन्नं तं देवा भक्षयन्ति॥४॥ तस्मिन्यावत्संपातमुषित्वाथैतमेवाध्वानं पुनर्निवर्तन्ते यथैतमाकाशमाकाशाद्वायुं वायुर्भूत्वा धूमो भवति धूमो भूत्वाभ्रं भवति॥५॥ अभ्रं भूत्वा मेघो भवति मेघो भूत्वा प्रवर्षति त इह व्रीहियवा ओषधिवनस्पतयस्तिलमाषा इति जायन्तेऽतो वै खलु दुर्निष्प्रपतरं यो यो ह्यन्नमत्ति यो रेतः सिञ्चति तद्भूय एव भवति॥६॥ तद्य इह रमणीयचरणा अभ्याशो ह यत्ते रमणीयां योनिमापद्येरन्ब्राह्मयोनिं वा क्षत्रिययोनिं वा वैश्ययोनिं वाथ य इह कपूयचरणा अभ्याशो ह यत्ते कपूयां योनिमापद्येरन् श्वयोनिं वा सूकरयोनिं वा चण्डालयोनिं वा॥७॥ अथैतयोः पथोर्न कतरेण च न तानीमानि क्षुद्राण्यसकृदावर्तीनि भूतानि भवन्ति

जायस्व म्रियस्वेत्येतत्तृतीयꣳस्थानं तेनासौ लोको न संपूर्यते तस्माज्जुगुप्सेत तदेष श्लोकः॥८॥ स्तेनो हिरण्यस्य सुरां पिबँश्च गुरोस्तल्पमावसन् ब्रह्महा चैते पतन्ति चत्वारः पञ्चमश्चाचरँ स्तैरिति॥९॥ अथ ह य एतानेवं पञ्चाग्नीन्वेद न सह तैरप्याचरन्पाप्मना लिप्यते शुद्धः पूतः पुण्यलोको भवति य एवं वेद य एवं वेद॥१०॥

एकादशः खण्डः

प्राचीनशाल औपमन्यवः सत्ययज्ञः पौलुषिरिन्द्रद्युम्नो भाल्लवेयो जनः शार्कराक्ष्यो बुडिल आश्वतराश्विस्ते हैते महाशाला महाश्रोत्रियाः समेत्य मीमाँसाञ्चक्रुः को न आत्मा किं ब्रह्मेति॥१॥ ते ह संपादयाञ्चक्रुरुद्दालको वै भगवन्तोऽयमारुणिः संप्रतीममात्मानं वैश्वानरमध्येति तꣳहन्ताभ्यागच्छमेति तꣳहाभ्याजग्मुः॥२॥ स ह संपादयाञ्चकार प्रक्ष्यन्ति मामिमे महाशाला महाश्रोत्रियास्तेभ्यो न सर्वमिव प्रतिपत्स्ये हन्ताहमन्यमभ्यनुशासानीति॥३॥ तान्होवाचाश्वपतिर्वै भगवन्तोऽयं कैकेयः संप्रतीममात्मानं वैश्वानरमध्येति तꣳहन्ताभ्यागच्छमेति तꣳहाभ्याजग्मुः॥४॥ तेभ्यो ह प्राप्तेभ्यः पृथगर्हाणि कारयाञ्चकार स ह प्रातः सञ्जिहान उवाच न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपो नानाहिताग्निर्नाविद्वान्न स्वैरी स्वैरिणी कुतो यक्ष्यमाणो वै भगवन्तोऽहमस्मि यावदेकैकस्मा ऋत्विजे धनं दास्यामि तावद्भगवद्भ्यो दास्यामि वसन्तु भगवन्त इति॥५॥ ते होचुर्येन हैवार्थेन पुरुषश्चरेत्तꣳहैव वदेदात्मानमेवेमं वैश्वानरँ संप्रत्यध्येषि तमेव नो ब्रूहीति॥६॥ तान्होवाच प्रातर्वः प्रतिवक्तास्मीति ते ह समित्पाणयः पूर्वाह्णे प्रतिचक्रमिरे तान्हानुपनीयैवैतदुवाच॥७॥

द्वादशः खण्डः

औपमन्यव कं त्वमात्मानमुपास्स इति दिवमेव भगवो राजन्निति होवाचैष वै सुतेजा आत्मा वैश्वानरो यं त्वमात्मानमुपास्से तस्मात्तव सुतं प्रसुतमासुतं कुले दृश्यते॥१॥ अत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमत्त्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते मूर्धा त्वेष आत्मन इति होवाच मूर्धा ते व्यपतिष्यद्यन्मां नागमिष्य इति॥२॥

त्रयोदशः खण्डः

अथ होवाच सत्ययज्ञं पौलुषिं प्राचीनयोग्यं कं त्वमात्मानमुपास्स इत्यादित्यमेव भगवो राजन्निति होवाचैष वै विश्वरूप आत्मा वैश्वानरो यं त्वमात्मानमुपास्से तस्मात्तव बहु विश्वरूपं कुले दृश्यते॥१॥ प्रवृत्तोऽश्वतरीरथो दासीनिष्कोऽत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमत्त्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते चक्षुष्ट्वे तदात्मान इति होवाचान्धोऽभविष्यो यन्मां नागमिष्य इति॥२॥

चतुर्दशः खण्डः

अथ होवाचेन्द्रद्युम्नं भाल्लवेयं वैयाघ्रपद्य कं त्वमात्मानमुपास्स इति वायुमेव भगवो राजन्निति होवाचैष वै पृथग्वर्त्मात्मा वैश्वानरो यं त्वमात्मानमुपास्से तस्मात्त्वां पृथग्बलय आयन्ति पृथग्रथश्रेणयोऽनुयन्ति॥१॥ अत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमत्त्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते प्राणस्त्वेष आत्मन इति होवाच प्राणस्त उदकमिष्यद्यन्मां नागमिष्य इति॥२॥

पञ्चदशः खण्डः

अथ होवाच जनꣳशार्कराक्ष्य कं त्वमात्मानमुपास्स इत्याकाशमेव भगवो राजन्निति होवाचैष वै बहुल आत्मा वैश्वानरो यं त्वमात्मानमुपास्से तस्मात्त्वं बहुलोऽसि प्रजया च धनेन च॥१॥ अत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमत्त्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते संदेहस्त्वेष आत्मन इति होवाच संदेहस्ते व्यशीर्यद्यन्मां नागमिष्य इति॥२॥

षोडशः खण्डः

अथ होवाच बुडिलमाश्वतराश्विं वैयाघ्रपद्य कं त्वमात्मानमुपास्स इत्यप एव भगवो राजन्निति होवाचैष वै रयिरात्मा वैश्वानरो यं त्वमात्मानमुपास्से तस्मात्त्वं रयिमान्पुष्टिमानसि॥१॥ अत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमत्त्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते बस्तिस्त्वेष आत्मन इति होवाच बस्तिस्ते व्यभेत्स्यद्यन्मां नागमिष्य इति॥२॥

सप्तदशः खण्डः

अथ होवाचोद्दालकमारुणिं गौतम कं त्वमात्मानमुपास्स इति पृथिवीमेव भगवो राजन्निति होवाचैष वै प्रतिष्ठात्मा वैश्वानरो यं त्वमात्मानमुपास्से तस्मात्त्वं प्रतिष्ठितोऽसि प्रजया च पशुभिश्च॥१॥ अत्स्यन्नं पश्यसि प्रियमत्त्यन्नं पश्यति प्रियं भवत्यस्य ब्रह्मवर्चसं कुले य एतमेवमात्मानं वैश्वानरमुपास्ते पादौ त्वेतावात्मन इति होवाच पादौ ते व्यम्लास्येतां यन्मां नागमिष्य इति॥२॥

अष्टादशः खण्डः

तान्होवाचैते वै खलु यूयं पृथगिवेममात्मानं वैश्वानरं विद्वाꣳसोऽन्नमत्थ यस्त्वेतमेवं प्रादेशमात्रमभिविमानमात्मानं

वैश्वानरमुपास्ते स सर्वेषु लोकेषु सर्वेषु भूतेषु सर्वेष्वात्मस्वन्नमत्ति॥१॥ तस्य ह वा एतस्यात्मनो वैश्वानरस्य मूर्धैव सुतेजाश्चक्षुर्विश्वरूपः प्राणः पृथग्वर्त्मात्मा संदेहो बहुलो बस्तिरेव रयिः पृथिव्येव पादावुर एव वेदिर्लोमानि बर्हिर्हृदयं गार्हपत्यो मनोऽन्वाहार्यपचन आस्यमाहवनीयः॥२॥

एकोनविंशः खण्डः

तद्यद्भक्तं प्रथममागच्छेत्तद्धोमीयꣳस यां प्रथमामाहुतिं जुहुयात्तां जुहुयात्प्राणाय स्वाहेति प्राणस्तृप्यति॥१॥ प्राणो तृप्यति चक्षुस्तृप्यति चक्षुषि तृप्यत्यादित्यस्तृप्यत्यादित्ये तृप्यति द्यौस्तृप्यति दिवि तृप्यन्त्यां यत्किं च द्यौश्चादित्यश्चाधि तिष्ठतस्तत्तृप्यति तस्यानुतृप्तिं तृप्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति॥२॥

विंशः खण्डः

अथ यां द्वितीयां जुहुयात्तां जुहुयाद्व्यानाय स्वाहेति व्यानस्तृप्यति॥१॥ व्याने तृप्यति श्रोत्रं तृप्यति श्रोत्रे तृप्यति चन्द्रमास्तृप्यति चन्द्रमसि तृप्यति दिशस्तृप्यन्ति दिक्षु तृप्यन्तीषु यत्किं च दिशश्च चन्द्रमाश्चाधितिष्ठन्ति तत्तृप्यति तस्यानु तृप्तिं तृप्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति॥२॥

एकविंशः खण्डः

अथ यां तृतीयां जुहुयात्तां जुहुयादपानाय स्वाहेत्यपानस्तृप्यति॥१॥ अपाने तृप्यति वाक्तृप्यति वाचि तृप्यन्त्यामग्निस्तृप्यत्यग्नौ तृप्यति पृथिवी तृप्यति पृथिव्यां तृप्यन्त्यां यत्किं च पृथिवी चाग्निश्चाधितिष्ठतस्तत्तृप्यति तस्यानु तृप्तिं तृप्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति॥२॥

द्वाविंशः खण्डः

अथ यां चतुर्थीं जुहुयात्तां जुहुयात्समानाय स्वाहेति समानस्तृप्यति॥१॥ समाने तृप्यति मनस्तृप्यति मनसि तृप्यति पर्जन्यस्तृप्यति पर्जन्ये तृप्यति विद्युत्तृप्यति विद्युति तृप्यन्त्यां यत्किं च विद्युच्च पर्जन्यश्चाधितिष्ठतस्तत्तृप्यति तस्यानु तृप्तिं तृप्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति॥२॥

त्रयोविंशः खण्डः

अथ यां पञ्चमीं जुहुयात्तां जुहुयादुदानाय स्वाहेत्युदानस्तृप्यति॥१॥ उदाने तृप्यति त्वक्तृप्यति त्वचि तृप्यन्त्यां वायुस्तृप्यति वायौ तृप्यत्याकाशस्तृप्यत्याकाशे तृप्यति यत्किं च वायुश्चाकाशश्चाधितिष्ठतस्तत्तृप्यति तस्यानु तृप्तिं तृप्यति प्रजया पशुभिरन्नाद्येन तेजसा ब्रह्मवर्चसेनेति॥२॥

चतुर्विंशः खण्डः

स य इदमविद्वानग्निहोत्रं जुहोति यथाङ्गारानपोह्य भस्मनि जुहुयात्तादृक्तत्स्यात्॥१॥ अथ य एतदेवं विद्वानग्निहोत्रं जुहोति तस्य सर्वेषु लोकेषु सर्वेषु भूतेषु सर्वेष्वात्मसु हुतं भवति॥२॥ तद्यथेषीकातूलमग्नौ प्रोतं प्रदूयेतैवन्हास्य सर्वे पाप्मानः प्रदूयन्ते य एतदेवं विद्वानग्निहोत्रं जुहोति॥३॥ तस्मादु हैवं विद्यद्यपि चण्डालायोच्छिष्टं प्रयच्छेदात्मनि हैवास्य तद्वैश्वानरे हुतꣳस्यादिति तदेषश्लोकः॥४॥ यथेह क्षुधिता बाला मातरं पर्युपासत एवꣳसर्वाणि भूतान्यग्निहोत्रमुपासत इत्यग्निहोत्रमुपासत इति॥५॥

॥ इति सप्तमः प्रपाठकः ॥



अष्टमः प्रपाठकः

प्रथमः खण्डः

श्वेतकेतुर्हारुणेय आस तꣳह पितोवाच श्वेतकेतो वस ब्रह्मचर्यम्। न वै सोम्यास्मत्कुलीनोऽननूच्य ब्रह्मबन्धुरिव भवतीति॥१॥ स ह द्वादशवर्ष उपेत्य चतुर्विꣳशतिवर्षः सर्वान् वेदानधीत्य महामना अनूचानमानी स्तब्ध एयाय। तꣳह पितोवाच श्वेतकेतो यन्नु सोम्येदं महामना अनूचानमानी स्तब्धोऽस्युत-तमादेशमप्राक्ष्यः॥२॥ येनाश्रुतꣳश्रुतं भवत्यमतं मतमविज्ञातं विज्ञातमिति। कथं नु भगवः स आदेशो भवतीति॥३॥ यथा सोम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातꣳस्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्॥४॥ यथा सोम्यैकेन लोहमणिना सर्वं लोहमयं विज्ञातꣳस्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं लोहमित्येव सत्यम्॥५॥ यथा सोम्यैकेन नखनिकृन्तनेन सर्वं कार्ष्णायसं विज्ञातꣳस्याद् वाचारम्भणं विकारो नामधेयं कृष्णायसमित्येव सत्यमेवꣳसोम्य स आदेशो भवतीति॥६॥ न वै नूनं भगवन्तस्त एतदवेदिषुर्यद्ध्येतदवेदिष्यन् कथं मे नावक्ष्यन्निति भगवाꣳस्त्वेव मे तद्ब्रवीत्विति तथा सोम्येति होवाच॥७॥

द्वितीयः खण्डः

सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्। तद्धैक आहुरसदेवेदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयं तस्मादसतः सज्जायत॥१॥ कुतस्तु खलु सोम्यैवꣳस्यादिति होवाच कथमसतः सज्जायेतेति। सत्त्वेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्॥२॥ तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति तत्तेजोऽसृजत। तत्तेज ऐक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति

तदपोऽसृजत। तस्माद्यत्र क्व च शोचति स्वेदते वा पुरुषस्तेजस एव तदध्यापो जायन्ते॥३॥ ता आप ऐक्षन्त बह्व्यः स्याम प्रजायेमहीति ता अन्नमसृजन्त। तस्माद्यत्र क्व वर्षति तदेव भूयिष्ठमन्नं भवत्यद्भ्य एव तदध्यन्नाद्यं जायते॥४॥

तृतीयः खण्डः

तेषां खल्वेषां भूतानां त्रीण्येव बीजानि भवन्त्याण्डजं जीवजमुद्भिज्जमिति॥१॥ सेयं देवतैक्षत हन्ताहमिमास्तिस्रो देवता अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणीति॥२॥ तासां त्रिवृतं त्रिवृतमेकैकां करवाणीति सेयं देवतेमास्तिस्रो देवता अनेनैव जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरोत्॥३॥ तासां त्रिवृतं त्रिवृतमेकैकामकरोद्यथा तु खलु सोम्येमास्तिस्रो देवतास्त्रिवृत्त्रिवृदेकैका भवति तन्मे विजानीहीति॥४॥

चतुर्थः खण्डः

यदग्ने रोहितꣳरूपं तेजसस्तद्रूपं यच्छुक्लं तदपां यत्कृष्णं तदन्नस्यापागादग्नेरग्नित्वं वाचारम्भणं विकारो नामधेयं त्रीणि रूपाणीत्येव सत्यम्॥१॥ यदादित्यस्य रोहितꣳरूपं तेजसस्तद्रूपं यच्छूक्लं तदपां यत्कृष्णं तदन्नस्यापागादादित्यादादित्यत्वं वाचारम्भणं विकारो नामधेयं त्रीणि रूपाणीत्येव सत्यम्॥२॥ यच्चन्द्रमसो रोहितꣳरूपं तेजसस्तद्रूपं यच्छुक्लं तदपां यत्कृष्णं तदन्नस्यापागाच्चन्द्राच्चन्द्रत्वं वाचारम्भणं विकारो नामधेयं त्रीणि रुपाणीत्येव सत्यम्॥३॥ यद्विद्युते रोहितꣳरूपं तेजसस्तद्रुपं यच्छुक्लं तदपां यत्कृष्णं तदन्नस्यापागाद्विद्युतो विद्युत्त्वं वाचारम्भणं विकारो नामधेयं त्रीणि रूपाणीत्येव सत्यम्॥४॥ एतद्ध स्म वै तद्विद्वाꣳस आहुः पूर्वे महाशाला महाश्रोत्रिया न नोऽद्य कश्चनाश्रुतममतम-विज्ञातमुदाहरिष्यतीति ह्येभ्यो विदाञ्चक्रुः॥५॥

यदु रोहितमिवाभूदिति तेजसस्तद्रूपमिति तद्विदाञ्चक्रुर्यदु शुक्लमिवाभूदित्यपाꣳरूपमिति तद्विदाञ्चक्रुर्यदु कृष्णमिवाभूदित्यन्नस्य रूपमिति तद्विदाञ्चक्रुः॥६॥ यद् विज्ञातमिवाभूदित्येतासामेव देवतानाꣳसमास इति तद्विदाञ्चक्रुर्यथा नु खलु सोम्येमास्तिस्रो देवताः पुरुषं प्राप्य त्रिवृत्त्रिवृदेकैका भवति तन्मे विजानीहीति॥७॥

पञ्चमः खण्डः

अन्नमशितं त्रेधा विधीयते तस्य यः स्थविष्ठो धातुस्तत्पुरीषं भवति यो मध्यमस्तन्माꣳसं योऽणिष्ठस्तन्मनः॥१॥ आपः पीतास्त्रेधा विधीयन्ते तासां यः स्थविष्ठो धातुस्तन्मूत्रं भवति यो मध्यमस्तल्लोहितं योऽणिष्ठः स प्राणः॥२॥ तेजोऽशितं त्रेधा विधीयते तस्य यः स्थविष्ठो धातुस्तदस्थि भवति यो मध्यमः स मज्जा योऽणिष्ठः सा वाक्॥३॥ अन्नमयꣳहि सोम्य मन आपोमयः प्राणस्तेजोमयी वागिति भूय एव मा भगवान्विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच॥४॥

षष्ठः खण्डः

दध्नः सोम्य मथ्यमानस्य योऽणिमा स ऊर्ध्वः समुदीषति तत्सर्पिर्भवति॥१॥ एवमेव खलु सोम्यान्नस्याश्यमानस्य योऽणिमा स ऊर्ध्वः समुदीषति तन्मनो भवति॥२॥ अपाꣳसोम्य पीयमानानां योऽणिमा स ऊर्ध्वः समुदीषति सा प्राणो भवति॥३॥ तेजसः सोम्याश्यमानस्य योऽणिमा स ऊर्ध्वः समुदीषति सा वाग्भवति॥४॥ अन्नमयꣳहि सोम्य मन आपोमयः प्राणस्तेजोमयी वागिति भूय एव मा भगवान्विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच॥५॥

सप्तमः खण्डः

षोडशकलः सोम्यः पुरुषः पञ्चदशाहानि माशीः काममपः पिबापोमयः प्राणो न पिबतो विच्छेत्स्यत इति॥१॥ स ह पञ्चदशाहानि नाशाथ हैनमुपससाद किं ब्रवीमि भो इत्यृचः सोम्य यजूꣳषि सामानीति स होवाच न वै मा प्रतिभान्ति भो इति॥२॥ तꣳहोवाच यथा सोम्य महतोऽभ्याहितस्यैकोऽङ्गारः खद्योतमात्रः परिशिष्टः स्यात्तेन ततोऽपि न बहु दहेदेवꣳसोम्य ते षोडशानां कलानामेका कलातिशिष्टा स्यात्तयैतर्हि वेदान्नानुभवस्यशानाथ मे विज्ञास्यसीति॥३॥ स हाशाथ हैनमुपससाद तꣳह यत्किं च पप्रच्छ सर्वꣳह प्रतिपेदे॥४॥ तꣳहोवाच यथा सोम्य महतोऽभ्याहि-तस्यैकमङ्गारं खद्योतमात्रं परिशिष्टं तं तृणैरुपसमाधाय प्राज्वलयेत्तेन ततोऽपि बहु दहेत्॥५॥ एवꣳसोम्य ते षोडशानां कलानामेका कलातिशिष्टाऽभूत्सान्नेनोपसमाहिता प्राज्वाली तयैतर्हि वेदाननुभवस्यन्नमयꣳहि सोम्य मन आपोमयः प्राणस्तेजोमयी वागिति तद्धास्य विजज्ञाविति विजज्ञाविति॥६॥

अष्टमः खण्डः

उद्दालको हारुणिः श्वेतकेतुं पुत्रमुवाच स्वप्नान्तं मे सोम्य विजानीहीति यत्रैतत्पुरुषः स्वपिति नाम सता सोम्य तदा सम्पन्नो भवति स्वमपीतो भवति तस्मादेनꣳस्वपितीत्याचक्षते स्वꣳह्यपीतो भवति॥१॥ स यथा शकुनिः सूत्रेण प्रबद्धो दिशं दिशं पतित्वान्यत्रायतनमलब्ध्वा बन्धनमेवोपश्रयत एवमेव खलु सोम्य तन्मनो दिशं दिशं पतित्वान्यत्रायतनमलब्ध्वा प्राणमेवोपश्रयते प्राणबन्धनꣳहि सोम्य मन इति॥२॥ अशनापिपासे मे सोम्य विजानीहीति यत्रैतत्पुरुषोऽशिशिषति नामाप एव तदशितं नयन्ते तद्यथा गोनायोऽश्वनायः पुरुषनाय इत्येवं तदप आचक्षतेऽशनायेति

तत्रैतच्छुङ्गमुत्पतितꣳसोम्य विजानीहि नेदममूलं भविष्यतीति॥३॥ तस्य क्व मूलꣳस्यादन्यत्रान्नादेवमेव खलु सोम्यान्नेव शुङ्गेनापो मूलमन्विच्छाद्भिः सोम्य शुङ्गेन तेजो मूलमन्विच्छ तेजसा सोम्य शुङ्गेन सन्मूलमन्विच्छ सन्मूलाः सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः सदायतनाः सत्यप्रतिष्ठाः॥४॥ अथ यत्रैतत्पुरुषः पिपासति नाम तेज एव तत्पीतं नयते तद्यथा गोनायोऽश्वनायः पुरुषनाय इत्येवं तत्तेज आचष्ट उदन्येति तत्रैतदेव शुङ्गमुत्पतितꣳसोम्य विजानीहि नेदममूलं भविष्यतीति॥५॥ तस्य क्व मूलꣳस्यादन्यत्राद्भ्योऽद्भिः सोम्य शुङ्गेन तेजो मूलमन्विच्छ तेजसा सोम्य शुङ्गेन सन्मूलमन्विच्छ सन्मूलाः सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः सदायतनाः सत्यप्रतिष्ठा यथा नु खलु सोम्येमास्तिस्त्रो देवताः पुरुषं प्राप्य त्रिवृत्त्रिवृदेकैका भवति तदुक्तं पुरस्तादेव भवत्यस्य सोम्य पुरुषस्य प्रयतो वाङ्मनसि सम्पद्यते मनः प्राणे प्राणस्तेजसि तेजः परस्यां देवतायाम्॥६॥ स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳसर्वं तत्सत्यꣳस आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान्विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच॥७॥

नवमः खण्डः

यथा सोम्य मधु मधुकृतो निस्तिष्ठन्ति नानात्ययानां वृक्षाणाꣳरसान्समवहारमेकताꣳरसं गमयन्ति॥१॥ ते तथा तत्र न विवेकं लभन्तेऽमुष्याहं वृक्षस्य रसोऽस्म्यमुष्याहं वृक्षस्य रसोऽस्मीत्येव खलु सोम्येमाःसर्वाः प्रजाः सति सम्पद्य न विदुः सति सम्पद्यामहं इति॥२॥ त इह व्याघ्रो वा सिꣳहो वा वृको वा वराहो वा कीटो वा पतङ्गो वा दꣳशो वा मशको वा यद्यद्भवन्ति तदा भवन्ति॥३॥ स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳसर्वं तत्सत्यꣳस आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान्विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच॥४॥

दशमः खण्डः

इमाः सोम्य नद्यः पुरस्तात्प्राच्यः स्यन्दन्ते पश्चात्प्रतीच्यस्ताः समुद्रात्समुद्रमेवापियन्ति स समुद्र एव भवति ता यथा तत्र न विदुरियमहमस्मीयमहमस्मीति॥१॥ एवमेव खलु सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः सत आगम्य न विदुः सत आगच्छामह इति त इह व्याघ्रो वा सिꣳहो वा वृको वा वराहो वा कीटो वा पतङ्गो वा दꣳशो वा मशको वा यद्यद्भवन्ति तदाभवन्ति॥२॥ स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳसर्वं तत्सत्यꣳस आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान्विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच॥३॥

एकादशः खण्डः

अस्य सोम्य महतो वृक्षस्य यो मूलेऽभ्याहन्याज्जीवन्स्रवेद्यो मध्येऽभ्याहन्याज्जीवन्स्रवेद्योऽग्रेऽभ्याहन्याज्जीवन्स्रवेत्स एष जीवेनात्मनानुप्रभूतः पेपीयमानो मोदमानस्तिष्ठति॥१॥ अस्य यदेकाꣳशाखां जीवो जहात्यथ सा शुष्यति द्वितीयां जहात्यथ सा शुष्यति तृतीयां जहात्यथ सा शुष्यति सर्वं जहाति सर्वः शुष्यति॥२॥ एवमेव खलु सोम्य विद्धीति होवाच जीवापेतं वाव किलेदं म्रियते न जीवो म्रियत इति स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳसर्वं तत्सत्यꣳस आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान्विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच॥३॥

द्वादशः खण्डः

न्यग्रोधफलमत आहरेतीदं भगव इति भिन्द्धीति भिन्नं भगव इति किमत्र पश्यसीत्यण्व्य इवेमा धाना भगव इत्यासामङ्गैकां भिन्द्धीति भिन्ना भगव इति किमत्र पश्यसीति न किञ्चन भगव इति॥१॥ तꣳहोवाच यं वै सोम्यैतमणिमानं न निभालयस एतस्य वै

सोम्यैषोऽणिम्न एवं महान्यग्रोधस्तिष्ठति श्रद्धत्स्व सोम्येति॥२॥ स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳसर्वं तत्सत्यꣳस आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान् विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच॥३॥

त्रयोदशः खण्डः

लवणमेतदुदकेऽवधायाथ मा प्रातरुपसीदथा इति स ह तथा चकार तꣳहोवाच यद्दोषा लवणमुदकेऽवाधा अङ्ग तदाहरेति तद्धावमृश्य न विवेद॥१॥ यथा विलीनमेवाङ्गास्यान्तादाचामेति कथमिति लवणमिति मध्यादाचामेति कथमिति लवणमित्यन्तादाचामेति कथमिति लवणमित्यभिप्रास्यैतदथ-मोपसीदथा इति तद्ध तथा चकार तच्छश्वत्संवर्तते तꣳहोवाचात्र वाव किल सत्सोम्य न निभालयसेऽत्रैव किलेति॥२॥ स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳसर्वं तत्सत्यꣳस आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान् विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच॥३॥

चतुर्दशः खण्डः

यथा सोम्य पुरुषं गन्धारेभ्योऽभिनद्धाक्षमानीय तं ततोऽतिजने विसृजेत्स यथा तत्र प्राङ् वोदङ् वाधराङ् वा प्रत्यङ् वा प्रध्मायीताभिनद्धाक्ष आनीतोऽभिनद्धाक्षो विसृष्टः॥१॥ तस्य यथाभिनहनं प्रमुच्य प्रब्रूयादेतां दिशं गन्धारा एतां दिशं व्रजेति स ग्रामाद्ग्रामं पृच्छन् पण्डितो मेधावी गन्धारानेवोपसंपद्येतैवमेवेहाचार्यवान् पुरुषो वेद तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्येऽथ सम्पत्स्य इति॥२॥ स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳसर्वं तत्सत्यꣳस आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान् विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच॥३॥

पञ्चदशः खण्डः

पुरुषꣳसोम्योतोपतापिनं ज्ञातयः पर्युपासते जानासि मां जानासि मामिति। तस्य यावन्न वाङ्मनसि संपद्यते मनः प्राणे प्राणस्तेजसि तेजः परस्यां देवतायां तावज्जानाति॥१॥ अथ यदास्य वाङ्मनसि संपद्यते मनः प्राणे प्राणस्तेजसि तेजः परस्यां देवतायामथ न जानाति॥२॥ स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदꣳसर्वं तत्सत्यꣳस आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति भूय एव मा भगवान् विज्ञापयत्विति तथा सोम्येति होवाच॥३॥

षोडशः खण्डः

पुरुषꣳ सोम्योत हस्तगृहीतमानन्त्यपहार्षीत्स्तेयमकार्षीत्परशुमस्मै तपतेति स यदि तस्य कर्ता भवति तत एवानृतमात्मानं कुरुते सोऽनृताभिसन्धोऽनृतेनात्मानमन्तर्धाय परशुं तप्तं प्रतिगृह्णाति स दह्यतेऽथ हन्यते॥१॥ अथ यदि तस्याकर्ता भवति तत एव सत्यमात्मानं कुरुते स सत्याभिसन्धः सत्येनात्मानमन्तर्धाय परशुं तप्तं प्रतिगृह्णाति स न दह्यतेऽथ मुच्यते॥२॥ स यथा तत्र नादाह्येतैतदात्म्यमिदꣳसर्वं तत्सत्यꣳस आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति तद्धास्य विजज्ञाविति विजज्ञाविति॥३॥

॥ इति अष्टमः प्रपाठकः ॥



नवमः प्रपाठकः

प्रथमः खण्डः

ॐ अधीहि भगव इति होपससाद सनत्कुमारं नारदस्तꣳहोवाच यद्वेत्थ तेन नोपसीद ततस्त ऊर्ध्वं वक्ष्यामीति स होवाच॥१॥ ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदꣳसामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यꣳराशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्यां सर्पदेवजनविद्यामेतद्भगवोऽध्येमि॥२॥ सोऽहं भगवो मन्त्र विदेवास्मि नात्मविच्छ्रुतꣳह्येव मे भगवद्दृशेभ्यस्तरति शोकमात्मविदिति सोऽहं भगवः शोचामि तं मा भगवाञ्छोकस्य पारं तारयत्विति तꣳहोवाच यद्वै किञ्चैतदध्यगीष्ठा नामैवैतत्॥३॥ नाम वा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेद आथर्वणश्चतुर्थ इतिहासपुराणः पञ्चमो वेदानां वेदः पित्र्यो राशिर्दैवो निधिर्वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्या ब्रह्मविद्या भूतविद्या क्षत्रविद्या नक्षत्रविद्यया सर्पदेवजनविद्याया नामैवैतन्नामोपास्स्वेति॥४॥ स यो नाम ब्रह्मेत्युपास्ते यावन्नाम्नो गतं तत्रास्य यथा कामचारो भवति यो नाम ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो नाम्नो भूय इति नाम्नो वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति॥५॥

द्वितीयः खण्डः

वाग्वाव नाम्नो भूयसी वाग्वा ऋग्वेदं विज्ञापयति यजुर्वेदꣳ-सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यꣳ राशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्याꣳसर्पदेवजनविद्यां दिवं च पृथिवीं च वायुं चाकाशं चापश्च तेजश्च देवाँश्च मनुष्याँश्च पशूँश्च वयाꣳसि च

तृणवनस्पतीञ्श्वापदान्याकीटपतङ्गपिपीलिकं धर्मं चाधर्मं च सत्यं चानृतं च साधु चासाधु च हृदयज्ञं चाहृदयज्ञं च यद्वै वाङ्-नाभविष्यन्न धर्मो नाधर्मो व्यज्ञापयिष्यन्न सत्यं नानृतं न साधु नासाधु न हृदयज्ञो नाहृदयज्ञो वागेवैतत्सर्वं विज्ञापयति वाचमुपास्स्वेति॥१॥ स यो वाचं ब्रह्मेत्युपास्ते यावद्वाचो गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो वाचं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो वाचो भूय इति वाचो वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति॥२॥

तृतीयः खण्डः

मनो वाव वाचो भूयो यथा वै द्वे वामलके द्वे वा कोले द्वौ वाऽक्षौ मुष्टिरनुभवत्येवं वाचं च नाम च मनोऽनुभवति स यदा मनसा मनस्यति मन्त्रानधीयीयेत्यथाधीते कर्माणि कुर्वीयेत्यथ कुरुते पुत्राँश्च पशूँश्चेच्छेयेत्यथेच्छत इमं च लोकममुं चेच्छेयेत्यथेच्छते मनो ह्यात्मा मनो हि लोको मनो हि ब्रह्म मन उपास्स्वेति॥१॥ स यो मनो ब्रह्मेत्युपास्ते यावन्मनसो गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो मनो ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो मनसो भूय इति मनसो वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति॥२॥

चतुर्थः खण्डः

सङ्कल्पो वाव मनसो भूयान्यदा वै सङ्कल्पयतेऽथ मनस्यत्यथ वाचमीरयति तामु नाम्नीरयति नाम्नि मन्त्रा एकं भवन्ति मन्त्रेषु कर्माणि॥१॥ तानि ह वा एतानि सङ्कल्पैकायनानि सङ्कल्पात्मकानि सङ्कल्पे प्रतिष्ठितानि समक्लृपतां द्यावापृथिवी समकल्पेतां वायुश्चाकाशं च समकल्पन्तापश्च तेजश्च तेषाꣳ-संक्लृप्त्यै वर्षं सङ्कल्पते वर्षस्य संक्लृप्त्या अन्नꣳसङ्कल्पतेऽन्नस्य संक्लृप्त्यै प्राणाः सङ्कल्पन्ते प्राणानाꣳसंक्लृप्त्यै मन्त्राः सङ्कल्पन्ते

मन्त्राणाꣳसंक्लृप्त्यै कर्माणि सङ्कल्पन्ते कर्मणाꣳसंक्लृप्त्यै लोकः सङ्कल्पते लोकस्य संक्लृप्त्यै सर्वꣳसङ्कल्पते स एष सङ्कल्पः सङ्कल्पमुपास्स्वेति॥२॥ स यः सङ्कल्पं ब्रह्मेत्युपास्ते संक्लृप्तान् वै स लोकान् ध्रुवान्ध्रुवः प्रतिष्ठितान् प्रतिष्ठितोऽव्यथमाना-नव्यथमानोऽभिसिध्यति। यावत्सङ्कल्पस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यः सङ्कल्पं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवः सङ्कल्पाद्भूय इति सङ्कल्पाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति॥३॥

पञ्चमः खण्डः

चित्तं वाव सङ्कल्पाद्भूयो यदा वै चेतयतेऽथ सङ्कल्पयतेऽथ मनस्यत्यथ वाचमीरयति तामु नाम्नीरयति नाम्नि मन्त्रा एकं भवन्ति मन्त्रेषु कर्माणि॥१॥ तानि ह वा एतानि चित्तैकायनानि चित्तात्मानि चित्ते प्रतिष्ठितानि तस्माद्यद्यपि बहुविदचित्तो भवति नायमस्तीत्येवैनमाहुर्यदयं वेद यद्वा अयं विद्वान्नेत्थमचित्तः स्यादित्यथ यद्यल्पविच्चित्तवान्भवति तस्मा एवोत शुश्रूषन्ते चित्तꣳ-ह्येवैषामेकायनं चित्तमात्मा चित्तं प्रतिष्ठा चित्तमुपास्स्वेति॥२॥ स यश्चित्तं ब्रह्मेत्युपास्ते चित्तान् वै स लोकान् ध्रुवान्ध्रुवः प्रतिष्ठितान्प्रतिष्ठितोऽव्यथमानानव्यथमानोऽभिसिध्यति। याव-च्चित्तस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यश्चित्तं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवश्चित्ताद्भूय इति चित्ताद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति॥३॥

षष्ठः खण्डः

ध्यानं वाव चित्ताद्भूयो ध्यायतीव पृथिवी ध्यायतीवान्तरिक्षं ध्यायतीव द्यौर्ध्यायन्तीवापो ध्यायन्तीव पर्वता देवमनुष्यास्तस्माद्य इह मनुष्याणां महत्तां प्राप्नुवन्ति ध्यानापादाꣳशा इवैव ते भवन्त्यथ

येऽल्पाः कलहिनः पिशुना उपवादिनस्तेऽथ ये प्रभवो ध्यानापादांशा इवैव ते भवन्ति ध्यानमुपास्स्वेति॥१॥ स यो ध्यानं ब्रह्मेत्युपास्ते यावद्ध्यानस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो ध्यानं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो ध्यानाद्भूय इति ध्यानाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति॥२॥

सप्तमः खण्डः

विज्ञानं वाव ध्यानाद्भूयो विज्ञानेन वा ऋग्वेदं विजानाति यजुर्वेदंसामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यंराशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्यांसर्पदेवजनविद्यां दिवं च पृथिवीं च वायुं चाकाशं चापश्च तेजश्च देवाँश्च मनुष्याँश्च पशूँश्च वयाँसि च तृणवनस्पतीञ्छ्वापदान्या कीटपतङ्गपिपीलकं धर्मं चाधर्मं च सत्यं चानृतं च साधु चासाधु च हृदयज्ञं चाहृदयज्ञं चान्नं च रसं चेमं च लोकममुं च विज्ञानेनैव विजानाति विज्ञानमुपास्स्वेति॥१॥ स यो विज्ञानं ब्रह्मेत्युपास्ते विज्ञानवतो वै स लोकान् ज्ञानवतोऽभि-सिध्यति यावद्विज्ञानस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो विज्ञानं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो विज्ञानाद्भूय इति विज्ञानाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति॥२॥

अष्टमः खण्डः

बलं वाव विज्ञानाद्भूयोऽपि ह शतं विज्ञानवतामेको बलवानाकम्पयते। स यदा बली भवत्यथोत्थाता भवत्युत्तिष्ठन् परिचरिता भवति परिचरन्नुपसत्ता भवत्युपसीदन् द्रष्टा भवति श्रोता भवन्ति मन्ता भवति बोद्धा भवति कर्ता भवति विज्ञाता भवति। बलेन वै पृथिवी तिष्ठति बलेनान्तरिक्षं बलेन द्यौर्बलेन पर्वता बलेन देवमनुष्या बलेन पशवश्च वयांसि च तृणवनस्पतयः

श्वापदान्याकीटपतङ्गपिपीलिकं बलेन लोकस्तिष्ठति बलमुपास्स्वेति॥१॥ स यो बले ब्रह्मेत्युपास्ते यावद्बलस्य गतं तत्रास्य यथकामचारो भवति यो बलं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो बलाद्भूय इति बलाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति॥२॥

नवमः खण्डः

अन्नं वाव बलाद्भूयस्तस्माद्यद्यपि दशरात्रीर्नाश्नीयाद्यद्युह जीवेदथवाद्रष्टाश्रोतामन्ताबोद्धाकर्ताविज्ञाता भवत्यथान्नस्यायै द्रष्टा भवति श्रोता भवति मन्ता भवति बोद्धा भवति कर्ता भवति विज्ञाता भवत्यन्नमुपास्स्वेति॥१॥ स योऽन्नं ब्रह्मेत्युपास्तेऽन्नवतो वै स लोकान् पानवतोऽभिसिध्यति यावदन्नस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति योऽन्नं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवोऽन्नाद्भूय इत्यन्नाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति॥२॥

दशमः खण्डः

आपो वावान्नाद्भूयस्यस्तस्माद्यदा सुवृष्टिर्न भवति व्याधीयन्ते प्राणा अन्नं कनीयो भविष्यतीत्यथ यदा सुवृष्टिर्भवत्यानन्दिनः प्राणा भवन्त्यन्नं बहु भविष्यतीत्याप एवेमा मूर्ता येयं पृथिवी यदन्तरिक्षं यद्द्यौर्यत्पर्वता यद्देवमनुष्या यत्पशवश्च वयाꣳसि च तृणवनस्पतयः श्वापदान्याकीटपतङ्गपिपीलिकमाप एवेमा मूर्ता अप उपास्स्वेति॥१॥ स योऽपो ब्रह्मेत्युपास्त आप्नोति सर्वान्कामान् स्तृप्तिमान् भवति यावदपां गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति योऽपो ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवोऽद्भ्यो भूय इत्यद्भ्यो वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति॥२॥

एकादशः खण्डः

तेजो वावाद्भ्यो भूयस्तद्वा एतद्वायुमागृह्याकाशमभितपति तदाहुर्निशोचति नितपति वर्षिष्यति वा इति तेज एव तत्पूर्वं

दर्शयित्वाथापः सृजते तदेतदूर्ध्वाभिश्च तिरश्चीभिश्च विद्युद्भिरा-ह्रादाश्चरन्ति तस्मादाहुर्विद्योतते स्तनयति वर्षिष्यति वा इति तेज एव तत्पूर्वं दर्शयित्वाथापः सृजते तेज उपास्स्वेति॥१॥ स यस्तेजो ब्रह्मेत्युपास्ते तेजस्वी वै स तेजस्वतो लोकान् भास्वतोऽ-पहततमस्कानभिसिध्यति यावत्तेजसो गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति। यस्तेजो ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवस्तेजसो भूय इति तेजसो वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति॥२॥

द्वादशः खण्डः

आकाशो वाव तेजसो भूयानाकाशे वै सुर्याचन्द्रमसावुभौ विद्युन्नक्षत्राण्यग्निराकाशेनाह्वयत्याकाशेन शृणोत्याकाशेन प्रतिशृणोत्याकाशे रमत आकाशे न रमत आकाशे जायत आकाशमभिजायत आकाशमुपास्स्वेति॥१॥ स य आकाशं ब्रह्मेत्युपास्त आकाशवतो वै स लोकान् प्रकाशवतोऽ-सम्बाधानुरुगायवतोऽभिसिध्यति यावदाकाशस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति य आकाशं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगव आकाशाद्भूय इत्याकाशाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति॥२॥

त्रयोदशः खण्डः

स्मरो वावाकाशाद्भूयस्तस्माद्यद्यपि बहव आसीरन्न स्मरन्तो नैव ते कञ्चन शृणुयुर्न मन्वीरन्न विजानीरन्यदा वाव ते स्मरेयुरथ शृणुयुरथ मन्वीरन्नथ विजानीरन्स्मरेण वै पुत्रान्विजानाति स्मरेण पशून् स्मरमुपास्स्वेति॥१॥ सः य स्मरं ब्रह्मेत्युपास्ते यावत्स्मरस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यः स्मरं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवः स्मराद्भूयः इति स्मराद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति॥२॥

चतुर्दशः खण्डः

आशा वाव स्मराद्भूयस्याशेद्धो वै स्मरो मन्त्रानधीते कर्माणि कुरुते पुत्राँश्च पशूँश्चेच्छत इमं च लोकममुं चेच्छत आशामुपास्स्वेति॥१॥ स य आशां ब्रह्मेत्युपास्त आशयास्य सर्वे कामाः समृध्यन्त्यमोघा ह्यस्याशिषो भवन्ति यावदाशाया गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति य आशां ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगव आशाया भूय इत्याशाया वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति॥२॥

पञ्चदशः खण्डः

प्राणो वा आशाया भूयान्यथा वा अरा नाभौ समर्पिता एवमस्मिन्प्राणे सर्वं समर्पितम्। प्राणः प्राणेन याति प्राणः प्राणं ददाति प्राणाय ददाति। प्राणो ह पिता प्राणो माता प्राणो भ्राता प्राणः स्वसा प्राण आचार्यः प्राणो ब्राह्मणः॥१॥ स यदि पितरं वा मातरं वा भ्रातरं वा स्वसारं वाचार्यं वा ब्राह्मणं वा किञ्चिद्भृशमिव प्रत्याह धिक्त्वास्त्वित्येवैनमाहुः पितृहा वै त्वमसि मातृहा वै त्वमसि भ्रातृहा वै त्वमसि स्वसृहा वै त्वमस्याचार्यहा वै त्वमसि ब्राह्मणहा वै त्वमसीति॥२॥ अथ यद्यप्येनानुत्क्रान्तप्राणाञ्छूलेन समासं व्यतिषं दहेन्नैवैनं ब्रुयुः पितृहासीति न मातृहासीति न भ्रातृहासीति न स्वसृहासीति नाचार्यहासीति न ब्राह्मणहासीति॥३॥ प्राणो ह्येवैतानि सर्वाणि भवति स वा एष एवं पश्यन्नेवं मन्वान एवं विजानन्नतिवादी भवति तं चेद्ब्रूयुरतिवाद्यसीत्यतिवाद्यस्मीति ब्रूयान्नापह्नुवीत॥४॥

षोडशः खण्डः

एष तु वा अतिवदति यः सत्येनातिवदति सोऽहं भगवः सत्येनातिवदानीति सत्यं त्वेव विजिज्ञासितव्यमिति सत्यं भगवो विजिज्ञास इति॥१॥

सप्तदशः खण्डः

यदा वै विजानात्यथ सत्यं वदति नाविजानन्सत्यं वदति विजानन्नेव सत्यं वदति विज्ञानं त्वेव विजिज्ञासितव्यमिति विज्ञानं भगवो विजिज्ञास इति॥१॥

अष्टादशः खण्डः

यदा वै मनुतेऽथे विजानाति नामत्वा विजानाति मत्वैव विजानाति मतिस्त्वेव विजिज्ञासितव्येति। मतिं भगवो विजिज्ञास इति॥१॥

एकोनविंशः खण्डः

यदा वै श्रद्दधात्यथ मनुते नाश्रद्दधन्मनुते श्रद्दधदेव मनुते श्रद्धा त्वेव विजिज्ञासितव्येति। श्रद्धां भगवो विजिज्ञास इति॥१॥

विंशः खण्डः

यदा वै निस्तिष्ठत्यथ श्रद्धधाति नानिस्तिष्ठञ्छ्रद्दधाति निस्तिष्ठन्नेव श्रद्दधाति निष्ठा त्वेव विजिज्ञासितव्येति। निष्ठां भगवो विजिज्ञास इति॥१॥

एकविंशः खण्डः

यदा वै करोत्यथ निस्तिष्ठति नाकृत्वा निस्तिष्ठति कृत्वैव निस्तिष्ठति कृतिस्त्वेव विजिज्ञासितव्येति। कृतिं भगवो विजिज्ञास इति॥१॥

द्वाविंशः खण्डः

यदा वै सुखं लभतेऽथ करोति नासुखं लब्ध्वा करोति सुखमेव लब्ध्वा करोति सुखं त्वेव विजिज्ञासितव्यमिति। सुखं भगवो विजिज्ञास इति॥१॥

त्रयोविंशः खण्डः

यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति भूमैव सुखं भूमा त्वेव विजिज्ञासितव्य इति। भूमानं भगवो विजिज्ञास इति॥१॥

चतुर्विंशः खण्डः

यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति स भूमाथ यत्रान्यत्पश्यत्यन्यच्छृणोत्यन्यद्विजानाति तदल्पं यो वै भूमा तदमृतमथ यदल्पं तन्मर्त्यम्। स भगवः कस्मिन् प्रतिष्ठित इति। स्वे महिम्नि यदि वा न महिम्नीति॥१॥ गो-अश्वमिह महिमेत्याचक्षते हस्तिहिरण्यं दासभार्यं क्षेत्राण्यायतनानीति नाहमेवं ब्रवीमि ब्रवीमीति होवाचान्यो ह्यन्यस्मिन् प्रतिष्ठित इति॥२॥

पञ्चविंशः खण्डः

स एवाधस्तात्स उपरिष्टात्स पश्चात्स पुरस्तात्स दक्षिणतः स उत्तरतः स एवेदꣳसर्वमित्यथातोऽहङ्कारादेश एवाहमेवाधस्तादहमुपरिष्टादहं पश्चादहं पुरस्तादहं दक्षिणतोऽहमुत्तरतोऽहमेवेदꣳसर्वमिति॥१॥ अथात आत्मादेश एव आत्मैवाधस्तादात्मोपरिष्टादात्मा पश्चादात्मा पुरस्तादात्मा दक्षिणत आत्मोत्तरत आत्मैवेदꣳसर्वमिति। स वा एष एवं पश्यन्नेवं मन्वान एवं विजानन्नात्मरतिरात्मक्रीड आत्ममिथुन आत्मानन्दः स स्वराड्भवति तस्य सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति अथ येऽन्यथातो विदुरन्यराजानस्ते क्षय्यलोका भवन्ति तेषां सर्वेषु लोकेष्वकामचारो भवति॥२॥

षड्विंशः खण्डः

तस्य ह वा एतस्यैवं पश्यत एवं मन्वानस्यैवं विजानत आत्मतः प्राण आत्मत आशात्मतः स्मर आत्मत आकाश

आत्मतस्तेज आत्मत आप आत्मत आविर्भवतिरोभावा-वात्मतोऽन्नमात्मतो बलमात्मतो विज्ञानमात्मतो ध्यानमात्म-तश्चित्तमात्मतः सङ्कल्प आत्मतो मन आत्मतो वागात्मतो नामात्मतो मन्त्रा आत्मतः कर्माण्यात्मत एवेदꣳसर्वमिति॥१॥ तदेष श्लोको न पश्यो मृत्युं पश्यति न रोगं नोत दुखःताꣳसर्वꣳह पश्यः पश्यति सर्वमाप्नोति सर्वश इति। स एकधा भवति त्रिधा भवति पञ्चधा सप्तधा नवधा चैव पुनश्चैकादशः स्मृतः शतं च दश चैकश्च सहस्राणि च विंशतिराहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षस्तस्मै मृदितकषायाय तमसस्पारं दर्शयति भगवान्सनत्कुमारस्तꣳस्कन्द इत्याचक्षते तँ स्कन्द इत्याचक्षते॥२॥

॥ इति नवमः प्रपाठकः ॥



दशमः प्रपाठकः

प्रथमः खण्डः

ॐ अथ यदिदमस्मिन्ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म दहरोऽस्मिन्नन्तराकाशस्तस्मिन्यदन्तस्तदन्वेष्टव्यं तद्वाव विजिज्ञासितव्यमिति॥१॥ तं चेद्ब्रूयुर्यदिदमस्मिन्ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म दहरोऽस्मिन्नन्तराकाशः किं तदत्र विद्यते यदन्वेष्टव्यं यद्वाव विजिज्ञासितव्यमिति स ब्रूयात्॥२॥ यावान्वा अयमाकाशस्तावानेषोऽन्तर्हृदय आकाश उभे अस्मिन्द्यावापृथिवी अन्तरेव समाहिते उभावग्निश्च वायुश्च सूर्याचन्द्रमसावुभौ विद्युन्नक्षत्राणि यच्चस्येहास्ति यच्च नास्ति सर्वं तदस्मिन्समाहितमिति॥३॥ तं चेद्ब्रूयुरस्मिꣳश्चेदिदं ब्रह्मपुरे सर्वꣳसमाहितꣳसर्वाणि च भूतानि सर्वे च कामा यदैतज्जरा वाप्नोति प्रध्वꣳसते वा किं ततोऽतिशिष्यत इति॥४॥ स ब्रूयान्नास्य जरयैतज्जीर्यति न वधेनास्य हन्यत एतत्सत्यं ब्रह्मपुरमस्मिन्कामाः समाहिता एष आत्मापहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको विजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसङ्कल्पो यथा ह्येवेह प्रजा अन्वाविशन्ति यथानुशासनं यं यमन्तमभिकामा भवन्ति यं जनपदं यं क्षेत्रभागं तं तमेवोपजीवन्ति॥५॥ तद्यथेह कर्मजितो लोकः क्षीयत एवमेवामुत्र पुण्यजितो लोकः क्षीयते तद्य इहात्मानमनुविद्य व्रजन्त्येताँश्च सत्यान्कामाँस्तेषां सर्वेषु लोकेशष्वकामचारो भवत्यथ य इहात्मानमनुविद्य व्रजन्त्येताँश्च सत्यान् कामाँस्तेषां सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति॥६॥

द्वितीयः खण्डः

स यदि पितृलोककामो भवति सङ्कल्पादेवास्य पितरः समुत्तिष्ठन्ति तेन पितृलोकेन संपन्नो महीयते॥१॥

अथ यदि मातृलोककामो भवति सङ्कल्पादेवास्य मातरः समुत्तिष्ठन्ति तेन मातृलोकेन संपन्नो महीयते॥२॥ अथ यदि भ्रातृलोककामो भवति सङ्कल्पादेवास्य भ्रातरः समुत्तिष्ठन्ति तेन भ्रातृलोकेन संपन्नो महीयते॥३॥ अथ यदि स्वसृलोककामो भवति सङ्कल्पादेवास्य स्वसारः समुत्तिष्ठन्ति तेन स्वसृलोकेन संपन्नो महीयते॥४॥ अथ यदि सखिलोककामो भवति सङ्कल्पादेवास्य सखायः समुत्तिष्ठन्ति तेन सखिलोकेन संपन्नो महीयते॥५॥ अथ यदि गन्धमाल्यलोककामो भवति सङ्कल्पादेवास्य गन्धमाल्ये समुत्तिष्ठतस्तेन गन्धमाल्यलोकेन संपन्नो महीयते॥६॥ अथ यद्यन्नपानलोककामो भवति सङ्कल्पादेवास्यान्नपाने समुत्तिष्ठतस्तेनान्नपानलोकेन संपन्नो महीयते॥७॥ अथ यदि गीतवादित्रलोककामो भवति सङ्कल्पादेवास्य गीतवादित्रे समुत्तिष्ठतस्तेन गीतवादित्रलोकेन संपन्नो महीयते॥८॥ अथ यदि स्त्रीलोककामो भवति सङ्कल्पादेवास्य स्त्रियः समुत्तिष्ठन्ति तेन स्त्रीलोकेन संपन्नो महीयते॥९॥ यं यमन्तमभिकामो भवति यं कामं कामयते सोऽस्य सङ्कल्पादेव समुत्तिष्ठति तेन संपन्नो महीयते॥१०॥

तृतीयः खण्डः

त इमे सत्याः कामा अनृतापिधानास्तेषाꣳसत्यानाꣳ सतामनृतमपिधानं यो यो ह्यस्येतः प्रैति न तमिह दर्शनाय लभते॥१॥ अथ ये चास्येह जीवा ये च प्रेता यच्चान्यदिच्छन्न लभते सर्वं तदत्र गत्वा विन्दतेऽत्र ह्यस्यैते सत्याः कामा अनृतापिधानास्तद्यथापि हिरण्यनिधिं निहितमक्षेत्रज्ञा उपर्युपरि सञ्चरन्तो न विन्देयुरेवमेवेमाः सर्वाः प्रजा अहरहर्गच्छन्त्य एतं ब्रह्मलोकं न विन्दन्त्यनृतेन हि प्रत्यूढाः॥२॥

स वा एष आत्मा हृदि तस्यैतदेव निरुक्तꣳहृद्ययमिति तस्माद्धृदयमहरहर्वा एवं वित्स्वर्गं लोकमेति॥३॥ अथ य एष संप्रसादोऽस्माच्छरीरात्समुत्थाय परं ज्योतिरुपसंपद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यत एष आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद्ब्रह्मेति तस्य ह वा एतस्य ब्रह्मणो नाम सत्यमिति॥४॥ तानि ह वा एतानि त्रीण्यक्षराणि सतीयमिति तद्यत्सत्तदमृतमथ यत्ति तन्मर्त्यमथ यद्यं तेनोभे यच्छति यदनेनोभे यच्छति तस्माद्यमहरहर्वा एवं वित्स्वर्गं लोकमेति॥५॥

चतुर्थः खण्डः

अथ य आत्मा स सेतुर्विधृतिरेषां लोकानामसम्भेदाय नैतꣳसेतुमहोरात्रे तरतो न जरा न मृत्युर्न शोको न सुकृतं न दुष्कृतꣳसर्वे पाप्मानोऽतो निवर्तन्तेऽपहतपाप्मा ह्येष ब्रह्म-लोकः॥१॥ तस्माद्वा एतꣳसेतुं तीर्त्वाऽन्धः सन्ननन्धो भवति विद्धः सन्नविद्धो भवत्युपतापी सन्ननुपतापी भवति तस्माद्वा एतꣳसेतुं तीर्त्वापि नक्तमहरेवाभिनिष्पद्यते सकृद्विभातो ह्येवैष ब्रह्मलोकः॥२॥ तद्य एवैतं ब्रह्मलोकं ब्रह्मचर्येणानुविन्दन्ति तेषामेवैष ब्रह्मलोकस्तेषां सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति॥३॥

पञ्चमः खण्डः

अथ यद्यज्ञ इत्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तद् ब्रह्मचर्येण ह्येव यो ज्ञाता तं विन्दतेऽथ यदिष्टमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तद् ब्रह्मचर्येण ह्येवेष्ट्वात्मानमनुविन्दते॥१॥ अथ यत्सत्रायणमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेवतद्ब्रह्मचर्येण ह्येव सत आत्मनस्त्राणं विन्दतेऽथ यन्मौनमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तद्ब्रह्मचर्येण ह्येवात्मानमनुविद्य मनुते॥२॥

अथ यदनाशकायनमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तदेष ह्यात्मा न नश्यति यं ब्रह्मचर्येणानुविन्दतेऽथ यदरण्यायनमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तत्तदरश्च ह वै ण्यश्चार्णवौ ब्रह्मलोके तृतीयस्यामितोदिवि तदैरं मदीयं सरस्तदश्वत्थः सोमसवनस्तदपराजिता पूर्ब्रह्मणः प्रभुविमितꣳहिरण्मयम्॥३॥ तद्य एवैतावरं च ण्यं चार्णवौ ब्रह्मलोके ब्रह्मचर्येणानुविन्दन्ति तेषामेवैष ब्रह्मलोकस्तेषां सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति॥४॥

षष्ठः खण्डः

अथ या एता हृदयस्य नाड्यस्ताः पिङ्गलस्याणिम्नस्तिष्ठन्ति शुक्लस्य नीलस्य पीतस्य लोहितस्येत्यसौ वा आदित्यः पिङ्गल एष शुक्ल एष नील एष पीत एष लोहितः॥१॥ तद्यथा महापथ आतत उभौ ग्रामौ गच्छतीमं चामुं चैवमेवैता आदित्यस्य रश्मय उभौ लोकौ गच्छन्तीमं चामुं चामुष्मादादित्यात्प्रतायन्ते ता आसु नाडीषु सृप्ता आभ्यो नाडीभ्यः प्रतायन्ते तेऽमुष्मिन्नादित्ये सृप्ताः॥२॥ तद्यत्रैतत्सुप्तः समस्तः संप्रसन्नः स्वप्नं न विजानात्यासु तदा नाडीषु सृप्तो भवति तं न कश्चन पाप्मा स्पृशति तेजसा हि तदा संपन्नो भवति॥३॥ अथ यत्रैतदबलिमानं नीतो भवति तमभित आसीना आहुर्जानासि मां जानासि मामिति स यावदस्माच्छरीरादनुत्क्रान्तो भवति तावज्जानाति॥४॥ अथ यत्रैतदस्माच्छरीरादुत्क्रामत्यथैतैरेव रश्मिभिरूर्ध्वमाक्रमते स ओमिति वा होद्वा मीयते स यावत्क्षिप्येन्मनस्तावदादित्यं गच्छत्येतद्वै खलु लोकद्वारं विदुषां प्रपदनं निरोधोऽविदुषाम्॥५॥ शतं चैका च हृदयस्य नाड्यस्तासां मूर्धानमभिनिःसृतैका। तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति विष्वङ्ङन्या उत्क्रमणे भवन्त्युत्क्रमणे भवन्ति॥६॥

सप्तमः खण्डः

य आत्मापहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको विजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसङ्कल्पः सोऽन्वेष्टव्यः स विजिज्ञासितव्यः स सर्वांश्च लोकानाप्नोति सर्वांश्च कामान्यस्तमात्मानमनुविद्य विजानातीति ह प्रजापतिरुवाच॥१॥ तद्धोभये देवासुरा अनुबुबुधिरे ते होचुर्हन्त तमात्मानमन्विच्छामो यमात्मानमन्विष्य सर्वांश्च लोकानाप्नोति सर्वांश्च कामानितीन्द्रो हैव देवानामभिप्रवव्राज विरोचनोऽसुराणां तौ हासं विदानावेव समित्पाणी प्रजापति सकाशमाजग्मतुः॥२॥ तौ ह द्वात्रिंशतं वर्षाणि ब्रह्मचर्यमूषतुस्तौ ह प्रजापतिरुवाच किमिच्छन्ताववास्तमिति तौ होचतुर्य आत्मापहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको विजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसङ्कल्पः सोऽन्वेष्टव्यः स विजिज्ञासितव्यः स सर्वांश्च लोकानाप्नोति सर्वांꣳश्च कामान् यस्तमात्मानमनुविद्य विजिनातीति भगवतो वचो वेदयन्ते तमिच्छन्ताववास्तमिति॥३॥ तौ ह प्रजापतिरुवाच य एषोऽक्षिणि पुरुषो दृश्यत एष आत्मेति होवाचैतदमृतभयमेतद् ब्रह्मेत्यथ योऽयं भगवोऽप्सु परिख्यायते यश्चायमादर्शे कतम एष इत्येष उ एवैषु सर्वेष्वन्तेषु परिख्यायत इति होवाच॥४॥

अष्टमः खण्डः

उदशराव आत्मानमवेक्ष्य यदात्मनो न विजानीथस्तन्मे प्रब्रूतमिति तौ होदशरावेऽक्षाञ्चक्राते तौ ह प्रजापतिरुवाच किं पश्यथ इति तौ होचतुः सर्वमेवेदमावां भगव आत्मानं पश्याव आ लोमभ्य आ नखेभ्यः प्रतिरूपमिति॥१॥ तौ ह प्रजापतिरुवाच साध्वलङ्कृतौ सुवसनौ परिष्कृतौ भूत्वोदशरावेऽवेक्षेथामिति तौ ह साध्वलङ्कृतौ सुवसनौ परिष्कृतौ भूत्वोदशरावेऽवेक्षाञ्चक्राते

तौ ह प्रजापतिरुवाच किं पश्यथ इति॥२॥ तौ होचतुर्यथैवेदमावां भगवः साध्वलङ्कृतौ सुवसनौ परिष्कृतौ स्व एवमेवेमौ भगवः साध्वलङ्कृतौ सुवसनौ परिष्कृतावित्येष आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद् ब्रह्मेति तौ ह शान्तहृदयौ प्रवव्रजतुः॥३॥ तौ हान्वीक्ष्य प्रजापतिरुवाचानुपलभ्यात्मानमनुविद्य व्रजतो यतर एतदुपनिषदो भविष्यन्ति देवा वाऽसुरा वा ते पराभविष्यन्तीति स ह शान्तहृदय एव विरोचनोऽसुराञ्जगाम तेभ्यो हैतामुपनिषदं प्रोवाचात्मैवेह महय्य आत्मा परिचर्य आत्मानमेवेह महयन्नात्मानं परिचरन्नुभौ लोकाववाप्नोतीमं चामुं चेति॥४॥ तस्मादप्यद्येहाददा-नमश्रद्दधानमयजमानमाहुरासुरो बतेत्यसुराणाꣳह्येषोपनिषत्प्रेतस्य शरीरं भिक्षया वसनेनालङ्कारेणेति सꣳस्कुर्वन्त्येतेन ह्यमुं लोकं जेष्यन्तो मन्यन्ते॥५॥

नवमः खण्डः

अथ हेन्द्रोऽप्राप्यैव देवानेतद्भयं ददर्श यथैव खल्वयमस्मिञ्छरीरे साध्वलङ्कृते साध्वलङ्कृतो भवति सुवसने सुवसनः परिष्कृते परिष्कृत एवमेवायमस्मिन्नन्धेऽन्धो भवति स्रामे स्रामः परिवृक्णे परिवृक्णोऽस्यैव शरीरस्य नाशमन्वेष नश्यति॥१॥ नाहमत्र भोग्यं पश्यामीति स समित्पाणिः पुनरेयाय तꣳह प्रजापतिरुवाच मघवन्यच्छान्तहृदयः प्राव्राजीः सार्धं विरोचनेन किमिच्छन् पुनरागम इति स होवाच यथैव खल्वयं भगवोऽस्मिञ्छरीरे साध्वलङ्कृते साध्वलङ्कृतो भवति सुवसने सुवसनः परिष्कृते परिष्कृत एवमेवायमस्मिन्नन्धेऽन्धो भवति स्रामे स्रामः परिवृक्णे परिवृक्णोऽस्यैव शरीरस्य नाशमन्वेष नश्यति नाहमत्र भोग्यं पश्यामीति॥२॥ एवमेवैष मघवन्निति होवाचैतं त्वेव ते भूयोऽनुव्याख्यास्यामि वसापराणि द्वात्रिꣳशतं वर्षाणीति स हापराणि द्वात्रिꣳशतं वर्षाण्युवास तस्मै होवाच॥३॥

दशमः खण्डः

य एष स्वप्ने महीयमानश्चरत्येष आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद्ब्रह्मेति स ह शान्तहृदयः प्रवव्राज स हाप्राप्यैव देवानेतद्भयं ददर्श तद्यद्यपीदꣳशरीरमन्धं भवत्यनन्धः स भवति यदि स्राममस्रामो नैवैषोऽस्य दोषेण दुष्यति॥१॥ न वधेनास्य हन्यते नास्य स्राम्येण स्रामो घ्नन्ति त्वेवैनं विच्छादयन्तीवाप्रियवेत्तेव भवत्यपि रोदितीव नाहमत्र भोग्यं पश्यामीति॥२॥ स समित्पाणिः पुनरेयाय तꣳह प्रजापतिरुवाच मघवन्यच्छान्तहृदयः प्राव्राजीः किमिच्छन् पुनरागम इति स होवाच तद्यद्यपीदं भगवः शरीरमन्धं भवत्यनन्धः स भवति यदि स्राममस्रामो नैवैषोऽस्य दोषण दुष्यति॥३॥ न वधेनास्य हन्यते नास्य स्राम्येण स्रामो घ्नन्ति त्वेवैनं विच्छादयन्तीवाप्रियवेत्तेव भवत्यपि रोदितीव नाहमत्र भोग्यं पश्यामीत्येवमेवैष मघवन्निति होवाचैतं त्वेव ते भूयोऽनुव्याख्यास्यामि वसापराणि द्वात्रिꣳशतं वर्षाणीति स हापराणि द्वात्रिꣳशतं वर्षाण्युवास तस्मै होवाच॥४॥

एकादशः खण्डः

तद्यत्रैतत् सुप्तः समस्तः संप्रसन्नः स्वप्नं न विजानात्येष आत्मेति होवाचैतदमृतमभयमेतद्ब्रह्मेति स ह शान्तहृदयः प्रवव्राज स हाप्राप्यैव देवानेतद्भयं ददर्श नाह खल्वयमेवꣳसंप्रत्यात्मानं जानात्ययमहमस्मीति नो एवेमानि भूतानि विनाशमेवापीतो भवति नाहमत्र भोग्यं पश्यामीति॥१॥ स समित्पाणिः पुनरेयाय तꣳह प्रजापतिरुवाच मघवन्यच्छान्तहृदयः प्राव्राजीः किमिच्छन् पुनरागम इति स होवाच नाह खल्वयं भगव एवꣳसंप्रत्यात्मानं जानात्ययमहमस्मीति नो एवेमानि भूतानि विनाशमेवापीतो भवति नाहमत्र भोग्यं पश्यामीति॥२॥

एवमेवैष मघवन्निति होवाचैतं त्वेव ते भूयोऽनुव्याख्यास्यामि नो एवान्यत्रैतस्माद्वसापराणि पञ्च वर्षाणीति स हापराणि पञ्च वर्षाण्युवास तान्येकशतꣳसंपेदुरेतत्तद्यदाहुरेकशतꣳह वै वर्षाणि मघवान् प्रजापतौ ब्रह्मचर्यमुवास तस्मै होवाच॥३॥

द्वादशः खण्डः

मघवन्मर्त्यं वा इदं शरीरमात्तं मृत्युना तदस्यामृतस्याशरीरस्यात्मनोऽधिष्ठानमात्तो वै सशरीरः प्रियाप्रियाभ्यां न ह वै सशरीरस्य सतः प्रियाप्रिययोरपहतिरस्त्यशरीरं वाव सन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशतः॥१॥ अशरीरो वायुरभ्रं विद्युत् स्तनयित्नुरशरीराण्येतानि तद्यथैतान्यमुष्मादाकाशात्समुत्थाय परं ज्योतिरुपसंपद्य स्वेन रुपेणाभिनिष्पद्यन्ते॥२॥ एवमेवैष संप्रसादोऽस्माच्छरीरात्समुत्थाय परं ज्योतिरुपसंपद्य स्वेन रुपेणाभिनिष्पद्यते स उत्तमपुरुषः स तत्र पर्यैति जक्षत्क्रीडन्नममाणः स्त्रीभिर्वा यानैर्वा ज्ञातिभिर्वा नोपजनꣳस्मरन्निदꣳशरीरꣳस यथा प्रयोग्य आचरणे युक्त एवमेवायमस्मिञ्छरीरे प्राणो युक्तः॥३॥ अथ यत्रैतदाकाशमनुविषण्णं चक्षुः स चाक्षुषः पुरुषो दर्शनाय चक्षुरथ यो वेदेदं जिघ्राणीति स आत्मा गन्धाय घ्राणमथ यो वेदेदमभिव्याहराणीति स आत्माभिव्याहाराय वागथ यो वेदेदꣳ शृणवानीति स आत्मा श्रवणाय श्रोत्रम्॥४॥ अथ यो वेदेदं मन्वानीति स आत्मा मनोऽस्य दैवं चक्षुः सवा एष एतेन दैवेन चक्षुषा मनसैतान्कामान्पश्यन्रमते॥५॥ य एते ब्रह्मलोके तं वा एतं देवा आत्मानमुपासते तस्मात्तेषाꣳसर्वे च लोका आत्ताः सर्वे च कामाः स सर्वाꣳश्च लोकानाप्नोति सर्वाꣳश्च कामान्यस्तमात्मानमनुविद्य विजानातीति ह प्रजापतिरुवाच प्रजापतिरुवाच॥६॥

त्रयोदशः खण्डः

श्यामाच्छबलं प्रपद्ये शबलाच्छ्यामं प्रपद्येऽश्व इव रोमाणि विधूय पापं चन्द्र इव राहोर्मुखात्प्रमुच्य धूत्वा शरीरमकृतं कृतात्मा ब्रह्मलोकमभिसंभवामीत्यभिसंभवामीति॥१॥

चतुर्दशः खण्डः

आकाशो वै नाम नामरूपयोर्निर्वहिता ते यदन्तरा तद्ब्रह्म तदमृतꣳस आत्मा प्रजापतेः सभां वेश्म प्रपद्ये यशोऽहं भवामि ब्राह्मणानां यशो राज्ञां यशो विशां यशोऽहमनुप्रापत्सि स हाहं यशसां यशः श्येतमदत्कमदत्कꣳश्येतं लिन्दु माभिगां लिन्दु माभिगाम्॥१॥ तद्धैतद्ब्रह्मा प्रजापतय उवाच प्रजापतिर्मनवे मनुः प्रजाभ्य आचार्यकुलाद्वेदमधीत्य यथाविधानं गुरोः कर्मातिशेषेणाभिसमावृत्य कुटुम्बे शुचौ देशे स्वाध्यायमधीयानो धार्मिकान्विदधदात्मनि सर्वेन्द्रियाणि सम्प्रतिष्ठायाहिꣳसन्सर्वभूतान्यन्यत्र तीर्थेभ्यः स खल्वेवं वर्तयन्यावदायुषं ब्रह्मलोकमभिसम्पद्यते न च पुनरावर्तते न च पुनरावर्तते॥३॥

॥ इति दशमः प्रपाठकः ॥

आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक्प्राणश्चक्षुः श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि।
सर्वं ब्रह्मौपनिषदं माहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्म निराकरोदनिराकरणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु। तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु
धर्मास्ते मयि सन्तु ते मयि सन्तु।

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥



ब्राह्मणश्रुत्यनुक्रमणिका

प्रथमं परिशिष्टम्

ताण्ड्यमहाब्राह्मणश्रुत्यनुक्रमणिका

॥ इति प्रथमं परिशिष्टम् ॥

●

द्वितीयं परिशिष्टम्

देवताध्यायब्राह्मणश्रुत्यनुक्रमणिका

॥ इति द्वितीयं परिशिष्टम् ॥

तृतीयं परिशिष्टम्

छान्दोग्यमन्त्रब्राह्मणश्रुत्यनुक्रमणिका

॥ इति तृतीयं परिशिष्टम् ॥

चतुर्थं परिशिष्टम्
छान्दोग्योपनिषच्छ्रुत्यनुक्रमणिका

॥ इति चतुर्थं परिशिष्टम् ॥



